श्रीरामकृष्ण परमहंस

लेखक

स्वामी चिदात्मानन्द

श्रीरामकृष्ण परमहंस

(सचित्र)

लेखक—

स्वामी श्रीचिदात्मानन्दजी

श्रीहरिः

विषय-सूची

परिशिष्ट

चित्र-सूची

श्रीहरिः

पहले संस्करणकी भूमिका

महापुरुषोंकी महिमा कौन गा सकता है? वे वस्तुतः भगवद्रूप ही होते हैं, बल्कि संसार-ताप-तप्त जीवोंके लिये तो भगवान्से भी बढ़कर उनको समझना चाहिये। संसारके जीव भगवान्को नहीं देख पाते, उनके चरणोंमें उपस्थित होकर उनकी सेवा नहीं कर सकते, उनसे साक्षात् उपदेश ग्रहण नहीं कर सकते, उनके प्रत्यक्ष आचरणों और व्यवहारोंको अपनी आँखों-से देखकर उनका अनुसरण नहीं कर सकते, परन्तु महापुरुष उन्हीं-जैसे शरीरधारी और उन्हींके जगत्में उनके सामने प्रत्यक्ष रहते हैं, इससे सभी लोग चाहें तो उनसे पूरा लाभ उठा सकते हैं। भगवान् हमारी आँखोंसे छिपे रहते हैं, परन्तु महापुरुष तो प्रत्यक्ष मूर्त्तिमान् भगवान् हैं। भगवान्ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि मुझमें और मेरे प्रेमी भक्तोंमें वास्तवमें कोई अन्तर नहीं है, जो मैं हूँ सो वे हैं और जो वे हैं सो मैं हूँ। देवर्षि नारद घोषणा करते हैं 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्' भगवान्में और उनके जनोंमें कोई भेद नहीं है। वे भगवान्के मूर्तस्वरूप हैं। उनके दर्शन, स्पर्श, भाषणकी बात तो दूर रही, उनके स्वरूप और आचरणोंके स्मरणमात्रसे ही हृदयमें पवित्रताका सञ्चार होता है और मन बरबस भगवान्की ओर दौड़ने लगता है। ऐसे महापुरुषोंके प्रकट होनेसे ही भगवान्की लीलाका जगत्में विस्तार हो रहा है, यही लोग प्रभुके सच्चे सन्देशवाहक और

प्रतिनिधि होते हैं । जिस भूमिपर ऐसे लोग प्रकट होते हैं, वह भूमि पवित्र हो जाती है, जहाँ ये विचरते हैं, वह स्थल शुद्ध हो जाता है, जहाँ ये निवास करते हैं, वहाँका वातावरण पवित्र हो जाता है, जिन स्थानोंमें ये भगवदाराधन करते हैं वे स्थान पातकियोंको पावन करनेवाले तीर्थ बन जाते हैं, जिस ग्रन्थको ये पढ़ते हैं, वह जगत्का आदर्श धर्म-ग्रन्थ बन जाता है, ये जो कुछ उपदेश करते हैं वही शास्त्र बन जाता है, ये जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही वहाँके लोगोंका आचार बन जाता है । इनका प्रकाश इतना प्रखर होता है कि दूर-दूरतक पाप-तापरूपी अन्धकार नहीं रह सकता । आनन्द और शान्तिकी शीतल प्रफुल्लतामयी चाँदनी सर्वत्र छिटकी रहती है । जो इनके चरणों-का आश्रय ले लेते हैं, वही तर जाते हैं और जगत्को तारने-वाले बन जाते हैं । श्रीमद्भागवतमें भगवान् कहते हैं—

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम् ।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥
निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् ।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥
अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् ।
धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ॥
सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः ।
देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥

(११ । २६ । ३१—३४)

जिस प्रकार अग्निका आश्रय लेनेपर शीत, भय और अन्धकार तीनोंका नाश हो जाता है, उसी प्रकार साधु महापुरुषोंके सेवनसे पाप, संसृतिका भय और अज्ञान आदि नष्ट हो जाते हैं। जलमें डूबते हुए लोगोंको जैसे नौका उबार लेती है, वैसे ही इस भयानक संसार-सागरमें गोते खाते हुए मनुष्योंके लिये ब्रह्मवेत्ता और शान्तचित्त महापुरुष परम अवलम्ब हैं। जैसे प्राणियोंका अन्न ही प्राण है, मैं भगवान् ही आर्त-दुखियोंका आश्रय हूँ और परलोकमें जैसे धर्म ही मनुष्यका धन होता है, उसी प्रकार संसार-भयसे व्याकुल मनुष्योंके लिये सन्त महापुरुष ही परम आश्रय होते हैं। आकाशमें उदय हुआ सूर्य मनुष्यको केवल बाह्य नेत्र ही देता है परन्तु सन्त महापुरुष तो उसे ज्ञानरूपी आन्तरिक नेत्र प्रदान करते हैं। ऐसे महापुरुष सन्तजन ही देवता, बन्धु सबके आत्मा और साक्षात् मेरे (भगवान्के) स्वरूप हैं।

ये महापुरुष ही जगत्के आधार होते हैं और यही जगत्-रूपी आकाशकी परम प्रकाशमयी उज्ज्वल ज्योति होते हैं, इनकी त्यागमयी प्रतिभा सर्वथा वन्दनीय होती है।

श्रीपरमहंसदेव वर्तमान समयके एक आदर्श महापुरुष थे, उनके पवित्र जीवनपर जितना ही अधिक मनन किया जाता है, उतनी ही अधिक उनपर श्रद्धा-भक्ति बढ़ती है। आज भारत और विदेशोंके लाखों नर-नारी उनके आदर्श चरित्रकी पूजा करते हैं और उनकी महान् शिक्षासे लाभ उठा रहे हैं। श्री-परमहंसदेवने जो कुछ किया और कहा, उसमें कहीं भी किसी-

को कोई दिखावटकी बात नहीं दीख पड़ी। उनकी शिक्षा इतनी सरल और स्वाभाविक है, मानो उनका हृदय ही वाणी बनकर सबके सामने आ जाता है। उसमें पाण्डित्य नहीं, पर अनुभवकी वह अनोखी छटा है जिसके सामने बड़े-बड़े पण्डित सिर झुकानेको बाध्य होते हैं। ऐसे महापुरुषका जीवन-चरित्र हिन्दीमें लिखकर स्वामी श्रीचिदात्मानन्दजीने बड़ा उपकार किया है। मेरी पाठकोंसे करबद्ध प्रार्थना है कि वे इस चरित्र-को ध्यान देकर पढ़ें और महापुरुषकी वाणी और उनके चरित्रका यथाधिकार अनुकरणकर सच्ची शान्ति और परम आनन्दके पथपर उत्तरोत्तर आगे बढ़ते रहें।

गोरखपुर, ज्येष्ठ शुक्ल ६
सं० १९८९ वि०

हनुमानप्रसाद पोद्दार
कल्याण-सम्पादक

प्रकाशकका निवेदन

जिस समय सर्वत्र परमहंसदेवकी जयन्ती मनायी जा रही है, ठीक उसी समय यह दूसरा संस्करण निकल रहा है। बड़ी ही प्रसन्नताकी बात है कि जगत्के लोग परमहंसदेवके प्रभावको जान रहे हैं। आशा है पहले संस्करणसे भी अधिक इस दूसरे संस्करणका शीघ्र प्रचार होगा। और हिन्दीभाषा-भाषी जनसमुदाय इससे विशेष लाभ उठावेंगे, क्योंकि इस समय परमहंसदेवकी ओर जनताकी दृष्टि विशेषरूपसे आकर्षित है।

—प्रकाशक

श्रीरामकृष्ण परमहंस

श्रीहरिः

(१)

विषय-प्रवेश

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ।

भगवान् श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवके चरणकमलोंमें विनय और प्रेमसहित साष्टांग प्रणाम कर उन महापुरुषकी अनुपम जीवन-लीलाके सम्बन्धमें कुछ कहनेका साहस कर रहा हूँ । यद्यपि उनके चरित्रोंको भलीभाँति समझना मुझ-जैसे मनुष्यकी शक्तिसे परे है और यद्यपि महापुरुष ही महापुरुषकी महिमाको भलीभाँति समझ सकते है, तथापि अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार महान् आत्माओंकी जीवनयात्राका बारंबार स्मरण करना सबके लिये परमोपयोगी हुआ करता है । ऐसा करते रहनेसे उनके अद्भुत

चरित्रोकी छाप आत्मापर अंकित हुए बिना नही रह सकती। इसीलिये मै अपने एवं पाठकोके कल्याणके निमित्त इस परम सारगर्भित लीलाके वर्णन करनेका किञ्चित् प्रयास करता हूँ।

महान् पुरुषोका जगत्मे अवतीर्ण होना नौकारूढ़ दिग्-भ्रम-विमूढ और प्रचण्ड वायुपीडित यात्रियोके लिये ज्योतिः-स्तम्भ (Light house) रूपसे सहायक हुआ करता है। इनके सहारेसे और इनके पथप्रदर्शनसे अनेक पथभ्रष्ट जीवोका उद्धार होता है। इनकी सहज सरल अमृतवाणी सुननेवालोके मुरझाये हुए हृदयोको प्रफुल्लित कर हरा-भरा कर देती है, ज्ञानभक्तिरूपी पुष्प-फलोसे सुसज्जित हो हृदय अद्भुत शान्ति और सुखका अनुभव करता है। विद्याबुद्धिविहीन मनुष्य, जिसे न तो तपका बल और न त्यागका ही सहारा होता है, यदि इस विकट संसार-महार्णवको इन महात्माओके सहारे 'गोपद इव' पार कर जाय तो क्या आश्चर्य है? इनके चरित्रोके स्मरणसे अनेक जीव पार हो गये है और अनेक जीव और भी भवसागरसे तर जायँगे—यह निश्चित है।

यह जगत् ऐसा विकट और अगाध महासागर है कि इसका थाह पाना साधारण जीवोके लिये कठिन ही नहीं, असम्भव है। फिर कामादि प्रचण्ड वायुके थपेड़े प्राणीका होश बिगाड़ देते है। विपय-तृष्णा और अज्ञानके घोर अन्धकारमे मनुष्यको अपना-पराया, शुभ-अशुभ कुछ नही सूझता, उसपर मोह-मदिराका नशा तो रहे-सहे होशको और भी चौपट कर देता है। ऐसी अवस्थामे यदि परमहंसदेव-जैसे अहैतुक कृपासिन्धु इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर इस प्रकारकी दुरवस्थामे पड़े हुए मनुष्योका कर्णधार बनकर उद्धार न करे तो और कौन कर सकता है? जब-जब

धर्मकी ग्लानि होती है, मनुष्य राग, द्वेष, हिंसादि दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते है, सत्यपरायणता लुप्त हो जाती है और मनुष्योंका जीवन केवल पशुवत् विषयभोगोंमे ही लिप्त होने लगता है, तब भगवान् सच्चिदानन्द पृथ्वीतलपर अवतीर्ण होकर मनुष्योंको सत्य-मार्ग दिखलाकर धर्मकी स्थापना करते है, जगत्में शान्तिका पुनरुत्थान होता है, विषय-वासनाके गंदे कुण्डमें पड़े हुए दुखी जीव स्वात्मानन्दकी पवित्र गंगामें विहार करने लगते है । सृष्टिका कुछ ऐसा ही नियम है । धर्म-अधर्मके ज्वार-भाटे आते ही रहते है और श्रीभगवान् भी जीवोपर करुणा कर समय-समयपर धर्मका पुनरुद्धार कर शान्ति स्थापन करते रहते है । भगवान्की अचिन्त्य मायासे मोहित जीव विचारशून्य हो, किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाया करता है, उसका धर्माधर्मविवेक नष्ट हो जाता है, नाना शास्त्रोंके गोरखधन्धेमे फँसा हुआ मनुष्य उसीको ध्येय समझ बैठता है, वाद-विवादसे ही सन्तुष्ट हो उसीको ज्ञानोपलब्धि मान लेता है, परन्तु इस उपायसे वास्तविक ज्ञान और शान्तिकी प्राप्ति नही हो सकती, अनेक शास्त्रोके विचारसे प्रायः भ्रम उत्पन्न हो जाया करता है । सत्यकी खोज केवल ग्रन्थोंके बलसे कभी नही हो सकती, वह तो आत्मनिष्ठ, अनुभवपूर्ण गुरुद्वारा ही हुआ करती है, दूसरा कोई उपाय नही है ।

श्रीरामकृष्ण-जैसे महापुरुष जगद्गुरुरूपसे संसारमें प्रकट होते है । इनके वाक्योका प्रभाव किसी विशेष जाति वा देशमे ही सीमाबद्ध नही रहता, वह तो समस्त जगत्में अपना प्रभाव डालता है ।

ऐसे ही महापुरुषोंसे धर्मकी स्थापना हुआ करती है ।

साधारण मनुष्य केवल बुद्धि-बल और वाक्पटुतासे धर्मका प्रचार करते हैं, परन्तु फल कुछ नही होता। यह वक्ता और श्रोता दोनोके लिये केवल दो घडीका विलासमात्र होता है परन्तु आत्म-निष्ठ महात्माके साधारण सरल वाक्य हृदयमे प्रवेश कर जाते हैं और तत्काल जीवनको पलट देते है। ऐसे महानुभाव जो कहते हैं उसे अपने जीवनमें चरितार्थ करके भी दिखाते है, जिससे मनुष्योपर उसका अटल प्रभाव पड़ता है। धर्मराज युधिष्ठिरने यक्षके प्रश्नका उत्तर देते हुए धर्ममार्गका इस प्रकार वर्णन किया था—

वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

अर्थात् वेद भिन्न-भिन्न हैं, स्मृतियाँ भी अनेक है, मुनियोके भी मत अनेक है, धर्मका तत्त्व बडा गूढ है, इसलिये महापुरुष जिस मार्गसे जाते है वही मार्ग भला है। लक्ष्य-स्थानपर पहुँचनेके लिये जैसे गहन वनमे मार्ग खोजना अनभिज्ञ मनुष्यके लिये असम्भव-सा होता है, परन्तु वही मार्ग जाननेवालेके पथप्रदर्शनसे सुगम हो जाता है, वैसे ही नाना शास्त्रोके विकट वनमे प्रवेश कर अपने ध्येयको पा लेना महापुरुषकी सहायताके बिना असम्भव है। केवल शास्त्रपाण्डित्यसे ही वास्तविक ज्ञान नही हुआ करता, वह तो बुद्धिविलासमात्र है। बिना तत्त्वज्ञ गुरुकी कृपाके वास्तविक ज्ञान होना कठिन है। अनेक मत-मतान्तरोके परस्पर वाद-विवाद और लडाई-झगड़े इसीलिये होते है कि मनुष्योको तत्त्व-वस्तुका ज्ञान नही होता, केवल कुछ बुद्धिगम्य जानकारी होती है। जो मनुष्य सत्य पदार्थका अनुभव कर लेता है उसे वृथा विवाद

करना अच्छा नही लगता। परमहंसदेव कहा करते थे कि 'जबतक लोग भोजन करना आरम्भ नही करते तभीतक आपसमें बातचीत करते हैं, जहाँ भोजन करना आरम्भ हुआ कि सारा शोरगुल आप-से-आप बन्द हो जाता है।' ऐसे ही आत्मानुभवी महात्मा शब्दजालमें वृथा समय नहीं खोते, उन्हें भगवत्-स्मरणके अमृतपानमे ही आनन्द मिलता है। नाना मतावलम्बियोंके आपसके झगड़े अज्ञान और अहंकारके कारण ही होते है। दूसरे मतोंको सहानुभूतिके साथ भलीभाँति समझे बिना झगड़ोका मिटना असम्भव है। सभी धर्ममार्ग अपने-अपने स्थानपर सत्य हैं। यह आग्रह करना कि केवल अमुक धर्म ही सत्य है, सत्यका गला घोटना है। परमात्मासे मिलनेके अनेक मार्ग है, जो जिसे प्रिय और सुलभ. प्रतीत हो उसके लिये वही हितकर है। यदि यह भाव लोगोंमें दृढ़ हो जाय तो आज ही परस्परकी कलह मिट जाय और जगत्में शान्ति स्थापित हो जाय। परमहंसदेवका संसारके कल्याणके हेतु यह परम हितकर आविष्कार था कि 'सब धर्म सत्य हैं।' यह उनका अपना अनुभव था, क्योंकि उन्होने कई मतोकी सत्यताकी उन्हीके उपायोंका अवलम्बन करके परीक्षा की थी, जिससे उनको दृढ़ विश्वास हो गया था कि प्रत्येक धर्म सत्यकी नींवपर खड़ा है। जो जिस मार्गसे अनन्यचित्त होकर और उदारभावसे दृढ़तापूर्वक चलेगा वह सत्य वस्तुकी उपलब्धि अवश्य कर लेगा। हिन्दूको सच्चा हिन्दू बनकर अपने धर्मपर अविचलित रूपसे दृढ़ रहना चाहिये। मुसलमानके लिये निष्कपटभावसे पक्का मुसलमान बने रहना ही श्रेयस्कर है। ऐसे ही ईसाई आदि अन्य मतावलम्बियोके लिये अपने-अपने धर्मके

गनगौर की कथा

एक समय श्रीमहादेवजी ने गौरा पार्वती से कहा—"हम देश-पर्यटन को जाना चाहते हैं।" पार्वती ने कहा—"हम भी आपके साथ चलेंगी।" तब शिवजी बोले कि परदेश मे प्रथम तो तुमको ही विशेष कष्ट होगा और तुम्हारे कारण हमे भी अनेक असुविधा होनी सम्भव है। इसलिये तुम घर मे रहो। हम नारदजी के साथ कुछ दिनों घूम कर जल्दी ही वापस आ जायँगे। नारदजी ने भी पार्वतीजी को बहुत समझाया। शिवजी की बातों को पुष्ट करने के सिवाय उन्हो ने विदेश-यात्रा के कष्टों को वर्णन करते हुए अनेक उपदेशपूर्ण बाते भी कहीं। परन्तु पार्वतीजी ने एक न मानी। तब शिवजी ने लाचार होकर कहा—"अच्छा चलो।"

शिव, पार्वती और नारदजी, तीनों एक साथ देशाटन को निकले। वे चलते हुए एक गाँव में पहुँचे। उस दिन चैत्र शुक्ला तीज थी। लोगों ने सुना कि साक्षात् शिव-पार्वती पधारे हैं। गाँव की सब स्त्रियाँ शिव-पार्वती का पूजन करने के लिये रुचिकर भोग बनाने लगी। इसी मे उनको देर हो गई। परन्तु नीच कुल की स्त्रियाँ जो जहाँ जैसे बैठी थीं, वैसी ही हल्दी चावल थालियों मे रख कर दौड़ी हुई शिव-पार्वती के समीप जा पहुँचीं। उनकी पत्र-पुष्प-पूजा अङ्गीकार कर के श्रीपार्वतीजी ने उनके ऊपर सम्पूर्ण सुहाग-रस (सौभाग्य का टीका लगाने की हल्दी) छिड़क दिया। वे अटल सौभाग्य पाकर चली गईं।

पीछे उच्च कुल की महिलाएँ आईं। वे सोलहो शृङ्गार, बारहो आभूषणों से सजी हुई नाना प्रकार के पकवान और पूजा की सामग्रियाँ चाँदी-सोने के थालों मे लगाकर ले आईं। उनको देख कर शिवजी ने कहा—"गौरी, तुमने सम्पूर्ण सुहाग-रस तो साधारण स्त्रियों में वितरण कर दिया। अब इनको क्या देती हो?" इस पर पार्वती जी ने कहा—"आप इसकी चिन्ता न करें। उनको ऊपरी पदार्थों से बना हुआ रस दिया गया है इस कारण उनका सुहाग धोतो से रहेगा परन्तु मैं इन लोगों को अपनी उँगली चीर कर आधे रक्त का सुहाग-रस देती हूँ। अस्तु, जिस किसी के भाग में मेरा दिया यह सुहाग-रस पड़ेगा हव मेरी तरह तन-मन से सौभाग्य-वती होगी।" निदान जब स्त्रियाँ पास आईं और पूजा कर चुकीं तब पार्वतीजी ने अपनी उँगली चीर कर उन पर छिड़की। उँगली में से जो किञ्चित रक्त निकला उसी का एक-एक दो-दो छींटा किसी-किसी पर पड़ा। मतलब यह कि जिस पर जैसे छींटे पड़े उसने वैसा ही सुहाग पाया।

इस काम से निवृत्त होकर पार्वतीजी ने कहा कि अब मुझे भी अपना पूजन करने की आज्ञा दी जाय। शिवजी ने उत्तर दिया—"तुमको पूजा करने के लिये क्या मैं मना करता हूँ? करो।" तब पार्वती जी ने कहा कि मैं यहाँ पूजा नहीं करूँगी। आज्ञा हो तो नदी-तट पर जाकर वहीं पूजा करूँ। शिव जी ने आज्ञा दे दी। तब पार्वती जी ने नदी के किनारे जाकर स्नान किया। फिर बालू का महादेव बना कर वह पूजन करने लगीं। पूजन के बाद बालू के

ही पकवान बनाकर उन्होंने शिवजी को भोग लगाया, परिक्रमा की, और नदी-किनारे की मिट्टी का टीका माथे मे लगाकर दो कण बालू का प्रसाद पाया। तब वे शिवजी के पास चली गई।

विधिवत् षोड़शोपचार-पूजन करने में पार्वती जी को नदी-किनारे बहुत देर लग गई। जब शिवजी के समीप गई तो उन्होंने कहा—"ये जो स्त्रियाँ पूजा करने आई थीं, उनको तो इतनी देर नहीं लगी थी। तुमने इतनी देर कैसे लगाई?" इस पर पार्वतीजी ने उत्तर दिया कि वहाँ मेरे भाई-भावजें आदि मायके के परिवार के सभी आ गये थे, इसी कारण देर लग गई। फिर शिवजी ने पूछा—"तुमने पूजन के बाद क्या प्रसाद चढ़ाया, और क्या ख़ुद पाया? इस पर पार्वतीजी ने कहा—"हमारी भावजों ने हमको दूध-भात खिलाया। उसे खाकर चली आ रही हूँ।"

तब शिवजी बोले—"पर तुमको ऐसा न चाहिये कि हमको छोड़कर अकेली ही भाई-भौजाई के यहाँ भोजन कर आओ। हम भी दूध-भात भोजन करेंगे।" पार्वती ने कहा—"आज तो दूध-भात का समय निकल गया है।" परन्तु शिवजी ने एक न मानी। उन्हों ने कहा—"भोजन नहीं मिलेगा तो न सही। अपने साले-सरहजो से तो मिल आयेंगे।"

जब शिवजी उठकर चलने ही लगे तब तो पार्वती जी बड़े असमञ्जस मे पड़ीं कि यहाँ गाँव या बस्ती कहाँ है जहाँ इनको लिवा जाऊँगी। उन्होंने फिर शिवजी का ध्यान धरकर प्रार्थना की कि यदि मैं तुम्हारी अनन्य दासी हूँ तो हे प्रभु! तुम्हीं इस

समय मेरी लज्जा रक्खो। ऐसा सङ्कल्प करके वह शिवजी के पीछे-पीछे चलने लगीं। थोड़ी ही दूर चले होंगे कि नदी-किनारे सुन्दर माया के महल दिखाई देने लगे। महलों के अन्दर गये तो वहाँ शिवजी के साले और सरहज और सभी परिवार के लोग मौजूद थे। उन्हो ने बहन-बहनोई का बड़े प्रेम से स्वागत किया। दो दिन तक अच्छी तरह से मेहमानदारी होती रही। तीसरे दिन सवेरे पार्वतीजी ने कहा—"बस मेहमानदारी की अवधि हो चुकी। अब यहाँ से चलना चाहिए।" परन्तु शिवजी ने कहा—"अभी मेरा जी तो यहाँ से जाने को नहीं चाहता।" बहुत कुछ प्रेम-वाद होने के पश्चात् पार्वतीजी रूठ कर चलीं। तब तो शिवजी को भी उनका साथ देना पड़ा। आगे शिवजी, उनके पीछे पार्वतीजी, और उनके पीछे नारदजी। तीनों यात्री चलते-चलते बहुत दूर निकल गये। सन्ध्या होने का समय आया तब शिवजी बोले—"पार्वती! मैं तुम्हारे मायके में अपनी माला भूल आया हूँ। उसके लाने का क्या उपाय है?"

पार्वतीजी ने कहा—"मै ख़ुद जाकर माला उठा लाती हूँ।" उस पर शिवजी ने कहा—"तुम इतनी दूर अकेली कहाँ जाओगी; हम सब तुम्हारे साथ चलते हैं।" पार्वतीजी ने इस बात पर आपत्ति की। तब नारदजी बोले—"आप लोग इसी जगह पर रहिये मै माला उठा लाता हूँ।" इसपर पार्वतीजी को भी सङ्कोच हुआ और उन्होंने सोचा कि नारद एक मसखरा है। वह हमारी और भी फ़ज़ीहत करेगा। परन्तु करें तो क्या करें। शिवजी के

डर से कुछ बोल न सकीं। नारद माया के महलों की तरफ़ चल दिये।

नारद ने उक्त स्थान पर जाकर देखा तो वहाँ न तो कोई महल या मकान था, न मनुष्य के रहने का निशान था। घोर सघन जङ्गल मे असंख्य हिंसक पशु फिर रहे थे। महान् अन्धकार छाया हुआ था। बादल उमड़े हुए थे और बिजली चमक रही थी। नारद अन्धकार मे भूलते-भटकते फिर रहे थे। इतने मे बिजली चमकी और शिवजी की माला उनको एक वट-वृक्ष की शाखा से टँगी दिखाई दी। नारदजी माला को लेकर वहाँ से भागे और शिवजी के पास आकर बोले–"धन्य हैं प्रभु आप, और धन्य हैं आप की गौरा रानी! आज आपने तो मेरे प्राण ही ले लिये होते। वहाँ न कोई महल है, न मनुष्य। घोर वन में यह माला एक वट-वृक्ष से टँगी थी। अब मेरी समझ में आया, वह सब इन्ही की माया थी।

तब शिवजी ने हँसते हुए पार्वतीजी को सम्बोधन करके कहा—"क्यों? अब भी तुम नहीं मानती। स्त्री-चरित्र की माया का विस्तार किये बिना तुम्हारा जी नहीं मानता। तुमने वृथा बिचारे ब्रह्म-ऋषि को परेशान किया? इन्हीं सब कारणों से हम तुमको साथ नहीं लाते थे।"

गौरा पार्वती ने विनती की—"हे प्रभु, यह सब आपकी कृपा का प्रभाव है। मै किस योग्य हूँ जो नारद जी को भुला भटका सकूँ।" तब नारदजी ने शिव-पार्वती दोनों को साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा—"माता! आप पतिव्रताओं मे अग्रगण्य,

सदैव सौभाग्यवती, आदि-शक्ति हैं। यह सब आपके पातिव्रत का प्रभाव है। जब स्त्रियाँ तुम्हारे नाम-मात्र के स्मरण से अटल सौभाग्य प्राप्तकर पातिव्रत में लीन हो, संसार की सम्पूर्ण सिद्धियों को बना और मिटा सकती हैं, तब आपके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है।"

पजूनो-पूनो

चैत्र-शुक्ला पूर्णिमा को पजूनो-पूनो भी कहते हैं। इस तिथि में व्रत नहीं होता, केवल पजन कुमार का पूजन होता है—यह पूजन उसी घर में होता है जिसमे कोई लड़का होता है। यदि लड़का नहीं होता, लड़कियाँ होती हैं तो यह पूजा नहीं होती।

किसी के यहाँ पाँच मटकियाँ पुजती हैं, किसी के यहाँ सात पुजती हैं। जहाँ पाँच मटकियाँ पुजती हैं वहाँ चार मटकियाँ और एक करवा होता है। इसी तरह सात मे एक करवा होता है। मटकियाँ चूना या खड़िया मिट्टी से रँगी जाती हैं। करवा पर हल्दी से पजन कुमार और उसकी दोनों माताओं की प्रतिमाएँ लिखी जाती है। शुद्ध जगह मे लीप कर और चौक पूर कर बीच मे पजन-कुमार का करवा और उसके चारों ओर अन्य मटकियाँ रक्खी जाती हैं। ये सब मटकियाँ विविध प्रकार के पकवान से भरी जाती हैं। परन्तु बीच वाली मटकियों मे लड्डू ही अधिकांश रक्खे जाते हैं। चन्दन, अक्षत, धूप-दीप, नैवेद्यादि से मटकियों की पूजा करके कथा कही जाती है। एक स्त्री कथा कहती है। बाकी अन्यान्य स्त्रियाँ अक्षत हाथ में लेकर बैठ जाती हैं। कथा समाप्त होते ही सब मटकियों पर अक्षत छोड़ती है। मटकियों को दण्डवत् करती हैं। तब लड़का सब मटकियों को हिला-हिलाकर यथा-स्थान रख देता है। पजन कुमार की मटकी में से लड़का लड्डू निकालकर

माँ की झोली में डालता है। तब माँ लड़के को लड्डू या और पकवान देती है, और फिर सब घर के लोगों में वह मटकियों का पकवान प्रसाद की तरह वितरण किया जाता है। प्रसाद बाँटते समय कहा जाता है—

"पजन के लड़ुवा पजनै खायँ।
दौर-दौर वही कोठरी में जायँ॥

पजूनो-पूनो की कथा

बासुक देव नाम का एक राजा था। उसकी दो रानियाँ थीं। जेष्ठा रानी का नाम था रूपवता (रूपा) और कनिष्ठा का नाम था शिक्षामती (सिकौली)। दोनों रानियों में सन्तान एक को भी न थी। जेष्ठा रानी रूपा राजा को अत्यन्त प्रिय थी और कनिष्ठा सिकौली पर सास-ननद का अधिक प्रेम था। जेष्ठा रानी पति की प्यारी होने से सास-ननद की नाराज़ी को कुछ परवा भी नहीं करती थी। परन्तु उसको पुत्र की बड़ी लालसा थी। इस कारण उसने एक दिन वयोवृद्धा स्त्रियों से पूछा—"आप लोग कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मेरी कोख चले।" उन स्त्रियों ने कहा—"सन्तान तो सास-ननद के आशीर्वाद से हो सकती है।" रानी ने कहा—"वे तो मुझ से नाराज़ हैं। यह सम्भव नहीं कि वे मुझको आशीर्वाद दें।" इस पर स्त्रियों ने सिखाया कि तुम ग्वालिन का भेष धारण कर अपनी सास-ननद के पास जाओ और उनके पैर पड़ो। उस वक़्त वे आशीर्वाद देंगी तो अवश्य तुम्हारे सन्तान होगी।

एक दिन रूपा रानी ग्वालिन के भेष मे सास-ननद के महलों में गई। उसने दही-दूध की मटकियाँ सर पर से उतार कर सास-ननद के पैर पड़े। तब उन्होंने आशीर्वाद दिया—"बेटा ख़ुश रहो, तुम्हारा सौभाग्य अटल रहे। दूधों अन्हाओं पूतों फलों। भगवान तुमको बेटा-बेटी दें।" इस प्रकार सास-ननद का आशीर्वाद लेकर वह चली आई। भगवान् की कृपा से उसको गर्भ रह गया। अब उसको इस बात की चिन्ता हुई कि सास-ननद मुझसे नाराज़ है। मेरे पास आती भी नही। यदि मेरे लड़का-लड़की कुछ हुआ तो क्या करूँगी। उसने एक दिन अपने जी की बात राजा से कही। राजा ने जवाब दिया कि इस बात की तुम कोई चिन्ता न करो। सास-ननद तुमको नहीं चाहतीं तो क्या हुआ! मै तो तुमको चाहता हूँ। मै आज ही तुम्हारे महल मे एक घण्टी बँधवाए देता हूँ। जब तुम्हारे लड़का होने लगे अथवा तुमको और कोई संकट हो तो तुम डोरी खींचना। मेरे महलों की घण्टी बजेगी, तब मै तुरन्त दौड़ा आऊँगा, चाहे मुझे कितना ही ज़रूरी काम क्यों न हो। यह कहकर राजा चला गया और उसने घण्टियों का प्रबन्ध करा दिया। रानी ने सोचा—आख़िर घण्टी को खींच कर देखूँ तो राजा आते हैं या नहीं? उसने परीक्षा के लिये घण्टी की डोरी खींच दी। उस समय राजा दरबार में बैठे थे। घण्टी बजने की ख़बर पाते ही वह रनिवास में दौड़ गये और रानी से पूछा—"क्या बात है?" उसने कहा—"कुछ नहीं महाराज, मैंने परीक्षा ली थी कि देखें राजा आते हैं या नहीं?" यह सुनकर राजा

को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कहा—"अच्छा तो अब कभी घण्टी के द्वारा मेरे बुलाने की आशा न करना। तुमने मेरी परीक्षा ली। यह अच्छा नहीं किया।" यह कहकर राजा चले गये।

जब राजा ने इस प्रकार उदासीनता धारण कर ली। तब तो रूपा रानी को विवश होकर सास-ननद की शरण मे जाना पड़ा। उसने उनसे कहा—"मेरे प्रसव के दिन क़रीब आ गये हैं।" ऐसा उपाय बताइये जिसमें यह सब काम सुख से हो जाय। ननद ने कहा—"ज़रा सी बात के लिये इतना क्या सोचती हो ? जिस वक्त तुम्हारे पेट में दर्द हो, तुम कोने में सिर डाल कर ओखली पर बैठ जाना। रूपा रानी कुछ सीधी-सादी भी थी। उसने ननद की बात को सच मान कर अक्षरशः उसका पालन किया। वह बैठ रही। बालक पैदा होकर ओखली मे गिर गया और रोने लगा। उसका रोदन सुनकर सास-ननद दौड़ी आई। उन्हीं के साथ रूपा की सौत सिकौली रानी भी आई। उसने नवजात बालक को उठाकर घूरे पर फिकवा दिया, और सौत के नीचे ओखली मे कंकड़-पत्थर डाल दिये। सास-ननद ने आकर रूपा से कहा—"चल, उठकर सीधी बैठ जा, तूने तो कंकड़-पत्थर जाये हैं।" राजा को समाचार मिला तो वह भी दौड़े आये। परन्तु कंकड़-पत्थरों को देखकर सहमकर रह गये। माता से या बहिन से कुछ न कह सके, न पूछ सके। परन्तु अपने मन में समझ गये कि यह एक असम्भव-सी बात है। स्त्री के गर्भ से कंकड़-पत्थर पैदा नहीं हो सकते। पर अब किया

क्या जाय? अपनी ही भूल थी। यह सब सोच-विचार कर राजा चुपचाप बाहर चले आये।

जिस दिन रूपा रानी के गर्भ से लड़का जन्मा उस दिन चैत्र सुदी पूर्णिमा थी। जिस घूरे पर लड़का डाला गया था, उसी घूरे पर एक कुम्हारिनी कूड़ा डालने आई। उसने देखा कि एक सुन्दर बालक घूरे की राख मे पड़ा खेल रहा है। वह उसे उठा कर अपने घर ले गई। उसको ख़ुद कोई सन्तान न थी। इस कारण वह बड़े लाड़-प्यार से निज-प्रसूत सन्तान की तरह उसका लालन-पालन करने लगी। वह लड़का जब कुछ बड़ा हुआ तो कुम्हार ने उसे खेलने के लिये एक मिट्टी का घोड़ा बना दिया। वह लड़का उस घोड़े को लेकर नदी के किनारे जाता और उसका मुँह पानी मे लगाकर कहा करता था—"मिट्टी के घोड़े पानी पी, चें चें चें।" उसी जगह रनिवास की स्त्रियाँ नहाने आती थी। लड़के का चरित देखकर एक दिन एक स्त्री ने कहा—"अरे कुम्हार के छोकड़े तू पागल है क्या?" इस पर लड़के ने जवाब दिया—"मै पागल नही, दुनिया बावली है। क्या यह भी सम्भव है कि रानियों के गर्भ से कंकड़-पत्थर पैदा हों?"

लड़के की बात सुनते ही स्त्रियों ने समझ लिया कि हो न हो, यही वह लड़का है। उन्होंने महलों मे जाकर अपनी मालकिन रानी सिकौली को समाचार सुनाया कि तुम्हारी सौत का प्रसूत बालक अमुक कुम्हार के घर मे है। रानी ने वहाँ भी उस बालक के नाश करने का निश्चय करके मान ठान दिया। वह कोप-

भवन में मलिन वसन पहनकर लेट रही। जब राजा ने उसके पास जाकर मान का कारण पूछा तो उसने कहा कि जब तक अमुक कुम्हार का बालक जान से न मार डाला जायगा तब तक मैं अन्न-पानी नहीं करूँगी। राजा ने पूछा—"उसका ऐसा अपराध क्या है?" रानी ने कहा—"वह हमारी दासियों को चिढ़ाता है।" राजा ने कहा—"यह अपराध जीव-हत्या के योग्य तो नहीं है। हाँ, यदि चाहो तो वह इस गाँव से, या देश से निकालकर बाहर किया जा सकता है।" रानी ने कहा—"तो यही सही।" राजा ने कुम्हार के बालक को गाँव से निकलवा दिया।

कुछ दिनों में कुम्हार का बालक और भी बड़ा हो गया। तब वह अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर सदा राजा के दरबार में आने लगा। राजा समझता था कि यह कोई राजकर्मचारी का लड़का है। और राजमंत्री समझते थे कि यह कोई राजा का सगा-सम्बन्धी राज-कुमार है। इसी कारण उससे कोई कुछ नहीं पूछता था। वह नित्य दरबार में बैठकर राज-काज की सब बातें ध्यान में रखता जाता था। राज-दरबार के सभी लोग उस के आचरण से प्रसन्न थे।

एक साल राजा वासुकदेव के राज मे जल नहीं बरसा। तब पण्डितों ने सलाह दी कि एक ऐसा रथ चलाया जाय, जिसमें राजा-रानी कन्धा देकर बैल की तरह चलें और कोई चैत्र सुदी पूर्णिमा का उत्पन्न हुआ द्विजातीय बालक रथ को हाँके, तो जल बरसेगा। उस समय अवसर पाकर राजकुमार ने प्रकट किया

कि मैं पूर्णिमा का उत्पन्न हुआ हूँ। मैं रथ भी चला सकता हूँ। तब रथ चलने की सब तैयारियाँ की गईं। इस बीच में राजकुमार ने अपनी माँ के पास जाकर कहा—"जब तुम से रथ के सम्बन्ध मे कोई काम करने को कहा जाय, तब तुम कहना कि पहले हमारी जेठानी करे, तब हम करें।" इस तरह हर काम मे तुम उसी को आगे रखना। उसने कहा—"बहुत अच्छा।"

रथ चलने का समय आया तो पजून कुमार की माँ रूपा रानी से कहा गया कि जगह लीपो। वह बोली—"पहले जेठानी लीपें, तब मैं लीपूँ।" राजा के हुक्म से पहले सिकौली रानी ने लीपा, तब पीछे से रूपा ने भी लीप दिया। रथ में कन्धा देने का समय आया, तब भी रूपा रानी ने कह दिया कि पहले जेठानी कन्धा दें, तब मैं दूँगी। लाचार सिकौली रानी ने रथ मे कन्धा दिया। उस समय खूब धूप निकली हुई थी। राजकुमार ने जमीन में गोखरू के काँटे बिखरा दिये थे। ऊपर से राजकुमार उसकी पीठ में छड़ियाँ मारता था। जब रथ सीमा तक पहुँच गया और वह रथ से अलग हुई तो बोली—"मैं समझ गई हूँ कि तू और कोई नहीं; मेरी सौत का बेटा है। इसी कारण तू ने मुझे जान-बूझकर दुःख दिया है। अब देखती हूँ, अपनी माँ के साथ तू कैसा व्यवहार करता है?"

रथ लौटती समय जब रूपा रानी ने कन्धा दिया तो आसमान मे बादल हो आये। रास्ते के गोखरू झाड़कर साफ कर दिये गये थे। इस कारण रूपा रानी को कुछ कष्ट नहीं हुआ।

रथ चलने का काम पूरा होते ही जल बरसने लगा। सबको बड़ी ख़ुशी हुई। उसी समय पजन कुमार ने अपनी माता के पास जाकर उसके चरण छुए। तब सबने जान लिया कि यही पजन कुमार है। राजा ने भी अपने पुत्र को पहचानकर गले से लगा लिया।

बाहर सब से मिल-मिलाकर राजकुमार रनिवास में गया। उसने अपनी आजी (दादी) से कहा—"दादी! हम आये, क्या तुम्हारे मन भाये?" इस पर बुढ़िया ने जवाब दिया—"बेटा! नाती पोते, क्यों बुरे लगेंगे।" पजन कुमार ने कहा—"तुम ने मेरे मन की बात न कही। तुम्हारी बात निरर्थक और अधूरी है। इस कारण मैं शाप देता हूँ कि तुम अगले जन्म में देहली होगी।" फिर वह फुआ के पास गया और बोला—"फुआ री फुआ! हम आये, तुम्हारे मन भाये या न भाये?" उसने कहा—"भतीजे किसे बुरे लगते हैं?" उसने कहा—"तुमने भी मेरे मन की बात न कही। तुमने ऊपर से सफाई दिखाई। पर तुम्हारा दिल मेरी ओर से साफ़ नहीं है। इस कारण तुम पुताड़ी (चौका लगाने की मिट्टी का बर्तन) होगी।" तदनन्तर वह सौतेली माँ के पास गया और कहा—"माता! हम आये, क्या तुम्हारे मन भाये?" उसने जवाब दिया—"आये सो अच्छे आये, जेठी के हो या लहुरी के, आख़िर हो तो लड़के ही।" तब राजकुमार ने कहा—"तुमने भी मेरे मन की बात न कही। तुमने दो-रुखी बात कही। इस कारण तुम घुँघची (गुञ्जा) होगी,

जो आधी काली आधी लाल होती है।" आखिर में राजकुमार अपनी माँ के पास गया और बोला—"माता हम आये। तुम्हारे मन भाये कि नहीं भाये?" उसने जवाब दिया—"बेटा! भले आये। हमने न पाले न पोसे, न खिलाये न पिलाये, हम क्या जानें कैसे आये?" उसी समय वह किशोर-वय राजकुमार नवजात शिशु के रूप में होकर 'कहाँ-कहाँ' रुदन करने लगा। माँ उसको गोद में रखकर दूध पिलाने लगी। राजा को समाचार मिला तो उसने शिशु को देखकर प्रसन्नता प्रगट की। आप से आप तोपें दगने लगीं और शुभ-समाचार पाकर सारे राज में आनन्द-बधाई बजने लगी।

पजूनों-पूनों की पूजा का रिवाज लोक में उसी दिन से चला है, ऐसी लोकोक्ति है।

अक्षय तृतीया

वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तीज को अक्षय तृतीया कहते हैं।

कथा

एक समय राजा युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी से पूछा—"हे भगवन्! कृपा कर आप अक्षय तृतीया का माहात्म्य वर्णन कीजिये।" श्रीकृष्ण भगवान् बोले—"हे राजन्! सुनो। इस पुण्य तिथि में पूर्वाह्न में स्नान, जप, तप, होम, स्वाध्याय, पितृ-तर्पण और दान आदि जो कुछ भी किया जाता है, वह अक्षय पुण्य-फल का दाता होता है। इस तृतीया को 'युगादि तृतीया' भी कहते हैं। क्योंकि इस दिन से सत्ययुग का आरम्भ होता है।

"हे युधिष्ठिर! पूर्वकाल में अत्यन्त निर्धन, प्रियवादी, सत्यव्रत और देव ब्राह्मणों का पूजन करने वाला तथा श्रद्धालु एक वैश्य था। वह बहु-कुटम्बी होने के कारण सदैव व्याकुल-चित्त रहा करता था। उसने वैशाख शुक्ल पक्ष की अक्षय तृतीया के माहात्म्य में सुना कि इस तिथि में दान, जप, हवन और स्नानादि से महत्फल प्राप्त होता है। उस वैश्य ने अक्षय तृतीया के दिन प्रातःकाल गङ्गा जी में स्नान करके विधिपूर्वक देवताओं और पितरों का पूजन किया। पुनः घर आकर उसने ओले के लड्डू, पंखा, जल भरे हुए

घट, जौ, गेहूँ और लवण आदि तथा सत्तू, दही, चावल और गुड़ आदि खाद्य पदार्थों का और स्वर्ण, वस्त्रादि, दिव्य पदार्थों का श्रद्धानुसार भक्तिपूर्वक दान किया। स्त्री के निषेध करने पर, कुटुम्ब-चिन्ता से चिन्तित होने पर और वृद्धावस्था के कारण अनेक रोगों से ग्रसित होने पर भी वह धर्म-कर्म से पराङ्मुख न हुआ। इस कारण हे राजन्! समय पाकर उस ब्राह्मण का आगामी जन्म कुशावती नगरी मे एक क्षत्रिय के घर मे हुआ। पूर्व-संचित पुण्य के प्रभाव से वह बड़ा धनाढ्य और प्रतापी हुआ। सब प्रकार का वैभव पाकर भी उसकी बुद्धि धर्म से विचलित न हुई। प्रत्युत उसने और भी अधिक धर्म-संचय किया। यह सब अक्षय तृतीया ही का प्रभाव था।"

आसमाई का पूजन

वैशाख, आषाढ़ और माघ, इन्हीं तीनों महीनें को किसो तिथि में रविवार के दिन आसमाई की पूजा होती है। जो किसो कार्य की सिद्धि के लिये आसमाई को पूजा बोलता है और उस का कार्य सिद्ध होता है, वही यह पूजा करता है। किसी-किसी के यहाँ साल में एक बार या दो या तोन बार भो पूजा होती है। बाराजीत (बारह आदित्य) और आसमाई (आशापूर्ण करने वाली शक्ति) की पूजा एक साथ होती है। प्रायः लड़के की माँ यह व्रत करती है। वह व्रत के दिन अलोना भोजन करती है।

एक पान पर सफेद चन्दन से एक पुतली लिखी जाती है। उसी पर चार गँठीली कौड़ियाँ रखकर उनकी पूजा की जाती है। चौक पर कलश की स्थापना की जाती है। उसी के समीप एक पटा पर ऊपर कहे अनुसार आसमाई की स्थापना की जाती है। पण्डित पंचाग-पूजन कराकर कलश का तथा आसमाई का विधिवत् पूजन कराता है। पूजन के अन्त में पंडित एक बारह गाँठ वाला गंडा व्रतवाली को देता है। उसी गंडे को हाथ में पहनकर आस-माई और बाराजीत को भोग लगाया जाता है। पूजा के अन्त में जब पूजा की सब सामग्री जल में सिराई जाती है, तब उक्त गंडा भी सिरा दिया जाता है। लेकिन पूजा वात्सेब बड़ी हैं। तुम जाती हैं। वे ही फिर पूजा के काम में तब राजकुमार ने कहा

कोई कौड़ी खो जाय तो उसके बजाय नई कौड़ी पूजा मे रख दी जा सकती है। इस पूजन के सम्बन्ध में जो कथा कही जाती है, वह इस प्रकार है :—

आसमाई की कथा

एक राजा था। उसके एक ही राजकुमार था। माता-पिता का बहुत लाड़ला होने के कारण वह बहुत ऊधम किया करता था। वह प्रायः कुवों या पनघटों पर बैठ जाता और जब स्त्रियाँ जल भरकर घर को चलने लगतीं तो गुलेल का गुल्ला मारकर उनके घड़े फोड़ डालता था। लोगों ने राजा के पास जाकर राजकुमार के आचरण की शिकायत की और कहा कि यदि यही हाल रहा तो हमारा निबाह किस तरह होगा? राजा ने कहा—"अब से कोई मिट्टी का घड़ा लेकर पानी भरने न जाया करे। जिनके यहाँ ताँबे-पीतल के घड़े न हों, वे हमारे यहाँ से घड़े ले लें।"

जब स्त्रियाँ ताँबे-पीतल के घड़े से पानी ले जाने लगीं, तब राजकुमार मिट्टी के बजाय लोहा और शीशे के गुल्ले मार-मारकर उनके घड़े फोड़ने लगा। लोगों ने एकत्र होकर राजा से फिर कहा कि अब तो हम आप के राज से भाग जायँगे।

—— ..., यदि रैयत भाग जायगी, तो मैं राज किस पर

... यगा तो और हो जायगा। इसलिये

रैयत को रखकर कुँवर को निकाल देना उचित रों जा इच्छा।
रैयत को समझा-बुझाकर शान्त किया। शा करोगे,

राजकुमार उस समय शिकार खेलने गया हु
राजा ने अपने हस्ताक्षर-सहित एक आज्ञापत्र ड्यो ना के
सिपाहियों को देकर कहा कि जब राजकुमार शिकार से वा इस
आकर महलों में आने लगे, उसी वक्त यह पर्चा तुम उसके
दिखा देना। जब राजकुमार वापस आया और सिपाहियों
ने उसे देश-निकाले की आज्ञा का परवाना दिखाया
तो वह उन्हीं पैरों राजद्वार से लौटकर जंगल की तरफ़
चला गया।

राजकुमार घोड़ा बढ़ाता हुआ चला जाता था कि उसे चार बुढ़ियाँ सामने रास्ते में बैठी हुई दिखाई दीं। उसी समय अनायास राजकुमार का चाबुक गिर गया। उसे उठाने के लिए वह घोड़े पर से उतरा और फिर सवार होकर आगे बढ़ा। बुढ़ियों ने समझा कि इस पथिक ने घोड़े से उतरकर हम लोगों को अभिवादन किया है। अस्तु जब वह उन लोगों के पास पहुँचा, तो उन्होंने उससे पूछा—"मुसाफिर! तुम बतलाओ कि तुमने हम लोगों में से किसको घोड़े से उतरकर प्रणाम किया था?" वह बोला—"तुम सब में जो बड़ी हो, मैंने उसी को प्रणाम किया है।" उन्हों ने कहा—तुम्हारा यह उत्तर ठीक नहीं। हम कोई एक दूसरो से कम नहीं हैं। अपने-अपने स्थान पर सब बड़ी हैं। तुम को किसो एक को बतलाना चाहिए। तब राजकुमार ने कहा

कोई कौड़ी स्ता-अपना नाम बतलाओ। तब मैं बतलाऊँगा कि
दी जा सत्ने प्रणाम किया था।
जाती है, बुढ़िया ने कहा—"मेरा नाम भूखमाई है।" राजकुमार
।—"तुम्हारी एक स्थिति नहीं। तुम्हारा कोई मुख्य उद्देश्य
लक्ष्य भी नहीं है। किसी की भूख जैसे अच्छे भोजनों से
शान्त होती है, वैसे ही रूखे-सूखे टुकड़े से भी शान्त हो जाती है।
इसलिए मैंने तुमको प्रणाम नहीं किया।" दूसरी ने कहा—"मेरा
नाम प्यासमाई है।" राजकुमार ने जवाब दिया—"जो हाल भूख-
माई का है, वही तुम्हारा है। तुम्हारी शान्ति जैसे गंगाजल
से हो सकती है, वैसे ही पोखरी के गन्दे जल से भी हो
सकती है। इसलिए मैंने तुम को भी प्रणाम नहीं किया।"
तीसरी बोली—"मेरा नाम नींदमाई है।" राजकुमार ने कहा—
"तुम्हारा प्रभाव या स्वभाव भी उक्त दोनों की तरह लक्ष्यहीन है।
पुष्पो की शैया पर जैसे नींद आती है, वैसे ही खेत के ढेलों मे
भी आती है। इसलिए मैंने तुमको भी प्रणाम नहीं किया।"
अन्त मे चौथी बुढ़िया ने कहा—"मेरा नाम आसमाई है।" तब
राजकुमार बोला—"जैसे ये तीनों मनुष्य को विकल कर देने वाली
हैं; वैसे ही तुम उसकी विकलता को नाशकर उसे शान्ति देने
वाली हो। इसलिए मैंने तुम्हीं को प्रणाम किया है।" इससे प्रसन्न
होकर आसमाई ने राजकुमार को चार कौड़ियाँ देकर आशी
र्वाद दिया कि जब तक ये कौड़ियाँ तुम्हारे पास रहेंगी, कोई भी
तुम से युद्ध मे या जुवा मे न जीत सकेगा। तुम जिस काम मे

हाथ लगाओगे उसी में तुमको सिद्धि होगी। तुम्हारी जो इच्छा होगी या यत्न करते हुए तुम जिस वस्तु की प्राप्ति की आशा करोगे, वही तुम को प्राप्त होगी।

राजकुमार चलता-चलता कुछ दिनों के बाद एक राजा के शहर में पहुँचा। उस राजा को जुआ खेलने का व्यसन था। इस कारण उस के नौकर-चाकर, प्रजा-परिजन सभी को जुआ खेलने का अभ्यास पड़ गया था। राजा के कपड़े धोने वाला धोबी भी जुवारी था। वह नदी के जिस घाट पर कपड़े धो रहा था, उसी घाट पर राजकुमार अपने घोड़े को नहलाने ले गया। धोबी उससे बोला—"मुसाफिर! पहले मेरे साथ दो हाथ खेल लो। जीत जाओ तो घोड़े को पानी पिलाकर चले जाना और राजा के सब कपड़े जोत में ले जाना और जो हार जाओ तो घोड़ा देकर चले जाना। फिर मै इसे पानी पिलाता रहूँगा।" राजकुमार को तो आसमाई के वरदान का बल था। वह घोड़े की बाग थामकर खेलने बैठ गया। थोड़ी ही देर मे राजकुमार ने राजा के सब कपड़े जीत लिए। उसने कपड़े तो न लिए। पर घोड़े को पानी पिलाकर वह चला गया।

धोबी शाम को जब महलों में गया, तब उसने राजा पर प्रकट किया कि एक ऐसा खेलने वाला मुसाफिर इस शहर मे आया है जैसा आज तक मैंने देखा न सुना। कोई उससे जुए में जीत हो नहीं सकता। यह सुनकर राजा बोला—"तब मै उस मुसाफिर से

ज़रूर मिलूँगा और दो-दो हाथ उसके साथ खेलूँगा।" दूसरे दिन धोबी राजकुमार को राजा के पास लिवा ले गया। राजा ने उसका उचित आगत-स्वागत करके जुआ खेलने की इच्छा प्रगट की। राजकुमार ने कहा—"मुझे हुक्म की तामील करने से कोई इन्कार नहीं है। परन्तु अधिक देर तक खेलने का मेरा अभ्यास नहीं है। दो-चार दाँव में ही वारा-न्यारा हो जाना चाहिए।" राजा ने कहा—"बहुत अच्छा।" दोनों खेलने लगे। थोड़ी ही देर मे राजकुमार ने राजा का राजपाट सब जीत लिया। राजा ने हार स्वीकार कर लिया। तब अपने मंत्री, मित्र, मुसाहब सबको इकट्ठा करके सलाह ली कि अब क्या करना चाहिए? किसी ने कहा—"इसे मार देना उचित है। अकेला तो है ही, क्या कर सकता है?" किसी ने कहा—"राज का एक अंश देकर उसे राज़ी कर लेना चाहिए।"

राजा के पिता के समय का एक पुराना मंत्री था। वह प्रायः घर ही में रहता था। उसने जब यह समाचार सुना तो वह बिना बुलाये ही दरबार मे गया। उसने राजा से कहा—"महाराज! राजाओं के सामने बिना बुलाये न जाना चाहिये। और न बिना पूछे कुछ कहना चाहिये। किन्तु जब कोई संकट आ पड़े तो अवश्य ही उचित सलाह देना स्वामी-सेवी नौकर का धर्म है। इसलिए मैं हाज़िर हुआ हूँ। मेरी बात सुन ली जाय।" राजा ने एकान्त में बैठकर उसका मत लिया तो वह बोला—"इस विजयी मुसाफिर को अपनी बेटी ब्याह दीजिए। वह आपका लड़का हो जायगा। तब आप हो राज पर दावा न करेगा और यों ही यदि

वह रह जायगा और योग्य होगा तो उसे प्रजा के लोग आप का उत्तराधिकारी मानने लगेंगे। यदि अयोग्य होगा। तो जैसा होगा वैसा व्यवहार किया जायगा।

राजा ने वृद्ध की बात मानकर राजकुमार को अपनी बेटी ब्याह दी। राजकुमार कोई साधारण मनुष्य तो था नहीं। वह भी तो राजा का लड़का था। उसके आचरण से राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने सलाह देने वाले वृद्ध को बहुत इनाम दिया। विवाह हो जाने के बाद राजकुमार को अलग महलों में डेरा दिया गया। राजा की कन्या भी अपने पति के साथ उन्हीं महलों में रहती थी। वह बड़ी ही सदाचारिणी और विनयशीला स्त्री थी। उस घर में सास-ननदें तो कोई थीं नहीं, जिनकी आज्ञा का वह पालन करती। इस कारण उसने कपड़े की गुड़ियाँ बनाकर रख लीं। जब वह शृंगार करके निश्चिन्त होती, तब उन गुड़ियों को सास-ननद मानकर उनके पैर पड़ती और अंचल पसारकर उनका आशीर्वाद लेने के बाद पति के समीप जाती थी।

एक दिन राजकुमार ने उसे गुड़ियों के पैर पड़ते देख लिया। उसने पूछा—"यह तुम क्या किया करती हो?" राजकुमारी ने जवाब दिया—"मैं यह स्त्री-धर्म का निर्वाह करती हूँ। यदि मैं आप के घर में होती तो नित्य सास-ननद के पैर पड़ती और उनसे आशीर्वाद-लाभ करती। किन्तु यहाँ सास ननद कोई नहीं है, तब इन गुड़ियों को सास-ननद मानकर अपना धर्म-निर्वाह करती हूँ।" यह सुनकर राजकुमार बोला—"यदि ऐसी बात है

तो गुड़ियों के पैर पड़ने की क्या जरूरत है ? तुम्हारे परिवार मे तो सभी कोई हैं। यदि तुम्हारी इच्छा है तो अपने घर चलो। वह बोली—"इस से अच्छा क्या है कि मैं अपने घर चलकर अपने परिवार मे हिल-मिलकर रहूँ। विवाह हो जाने के बाद लड़की का माता-पिता के घर में रहना किसी हालत में अच्छा नहीं है। वह विवाह होने पर भी बिन-ब्याही के समान होती है। आप घर को चलिये, मै खुशी से आप के साथ चलूँगी।

तब राजकुमार ने अपने सास-ससुर से कहा—"मै अपने घर को जाना चाहता हूँ। आप मुझे आज्ञा दीजिये।" राजा ने उनकी यात्रा का सब प्रबन्ध करके बेटी को विदा भी कर दी। राजकुमार नई दुलहिन को लिवाये, भीड़-भाड़ के साथ चलता हुआ कुछ दिनों में अपने पिता की राजधानी के पास पहुँचा। इधर जिस दिन से राजकुमार चला गया था, उसी दिन से राजा-रानी दोनों उसके बिछोह मे दिन-दिन दुबले होने लगे थे। जब राजकुमार! वापस आया, उन दिनों उसके माता-पिता दोनों अन्धे हो गये थे। राजकुमार की सेना देखकर लोगों ने राजा को सूचना दी कि कोई बड़ा सूबा चढ़ आया है। राजा गले मे अंगौछी डालकर उससे मिलने के लिये तैयार हो गया। इसी समय राजकुमार ने महलों के दरवाजे पर आकर खबर कराई कि मै अपने अपराध की पूरी सज़ा पा चुका। अब आज्ञा हो तो चरणों मे हाज़िर होऊँ। यह सुनते ही राजा को बड़ी ख़ुशी हुई। उसने कहा—"मैं बाप हूँ, वह बेटा है। उसका घर है, ख़ुशी से आवे।"

तब राजकुमार ने पुनः अर्ज कराई कि मैं विवाह कर लाया हूँ। पहिले कुलाचार के अनुसार अपनी बहू को महलों मे बुलाइये। तब पीछे मै आऊँगा। इस पर राजा ने सवारी लगवाई। खुद बाहर गाँव तक बहू को लिवाने गया। महलों में आकर बहू ने सास के पैर पड़े। सास ने आशीर्वाद दिया। कुछ दिनों के बाद उस राज-कन्या को भी एक अति सुन्दर बालक हुआ। इसी बीच में राजा-रानी की नजर फिर ठीक हो गई। जिस परिवार में अँधेरा पड़ा था, उसी परिवार में आसमाई की कृपा से आनन्द की बरसा होने लगी।

उसी समय से लोक में आसमाई की पूजा का रिवाज चला है।

वट-सावित्री

ज्येष्ठ बदी तेरस को प्रातःकाल स्वच्छ दातून से दन्तधावन कर उसी दिन दोपहर के बाद नदी या तालाब के विमल जल में तिल और आमले के कल्क से केशों को शुद्ध करके स्नान करे और जल से वट के मूल का सेचन करे।

सूत-रोगिणी और ऋतु-मती स्त्री ब्राह्मण के द्वारा भी समग्र व्रत को यथा-विधि कराने से उसी फल को प्राप्त होती है। यह व्रत त्रयोदशी से पूर्णिमा अथवा अमावस्या तक करना चाहिये।

वट के समीप में जाकर जल का आचमन लेकर कहे—"ज्येष्ठ मास कृष्ण पक्ष त्रयोदशी अमुक बार में मेरे पुत्र और पति की आरोग्यता के लिये एवं जन्म-जन्मान्तर में भी विधवा न होऊँ इसलिये सावित्री का व्रत करती हूँ। वट के मूल में ब्रह्मा, मध्य मे जनार्दन, अग्र-भाग मे शिव और समग्र मे सावित्री हैं। हे वट! अमृत के समान जल से मैं तुमको सींचती हूँ।" ऐसा कहकर भक्ति-पूर्वक एक सूत के डोरे से वट को बाँधे और गन्ध, पुष्प तथा अक्षतों से पूजन करके वट एवं सावित्री को नमस्कारकर प्रदक्षिणा करे और घर पर आकर हल्दी तथा चन्दन से घर की भीत पर वट का वृक्ष लिखे। हस्तलिखित वट को सन्निध में बैठकर पूजन करे और संकल्पपूर्वक प्रार्थना करे—

"तीन रात्रि तक में लङ्घन करके चौथे दिन चन्द्रमा को अर्घ देकर तथा सावित्री का पूजनकर, यथाशक्ति मिष्टान्न से ब्राह्मणों को भोजन कराकर पुनः भोजन करूँगी। अतः हे सावित्री! तू मेरे इस नियम को निर्विघ्न समाप्त करना।"

वट तथा सावित्री का पूजन करने के बाद सिन्दूर, कुमकुम और ताम्बूल आदि से प्रतिदिन सुवासिनी स्त्री का भी पूजन करे। पूजा के समाप्त हो जाने पर व्रत की सिद्धि के लिये ब्राह्मण को फल, वस्त्र और सौभाग्यप्रद द्रव्यों को बाँस के पात्र मे रखकर दे और प्रार्थना करे।

कथा

मद्रदेश मे परम धार्मिक वेद-वेदाङ्ग का पारगामी और ज्ञानी एक अश्वपति नामक राजा था। समग्र वैभव होने पर भी राजा को पुत्र नहीं था। इस कारण दम्पति ने पुत्र के लिये सरस्वती का जप किया। उस जप-यज्ञ के प्रभाव से स्वयं सरस्वती ने शरीर धारणकर राजा और रानी को दर्शन दिया और कहा—"राजन्, वर माँगो।"

राजा ने प्रार्थना की—"आपकी कृपा से मुझको सब प्रकार का आनन्द है। केवल एक पुत्र ही की कमी है। आशा है, कि अब वह पूर्ण हो जायगी।" सावित्री ने कहा—"राजन्! तुम्हारे भाग्य मे पुत्र तो नहीं है। पर दोनों कुलों की कीर्ति-पताका फहराने वाली एक कन्या अवश्य होगी। उसका नाम मेरे नाम पर रखना।"

यह कहकर सावित्री अन्तर्द्धान हो गई।

कुछ काल के उपरान्त रानी के गर्भ से साक्षात् सावित्री का जन्म हुआ और नाम भी उसका सावित्री ही रक्खा गया।

जब सावित्री युवती हुई, तब राजा ने सावित्री से कहा—"बेटी! अब तुम विवाह के योग्य हो गई हो। अपने योग्य वर तुम स्वयं खोज लो। मैं तुम्हारे साथ अपने वृद्ध सचिव को भेजता हूँ।" जब सावित्री वृद्ध सचिव के साथ वर खोजने गई हुई थी, तब एक दिन मद्राधिपतिके स्थान पर अकस्मात् नारदजी आये। इतने ही में वर पसन्द कर के सावित्री भी आ गई और नारदजी को देखकर प्रणाम करने लगी। कन्या को देखकर नारदजी कहने लगे–"राजन्! सावित्री के लिये अभी तक वर ढूँढ़ा या नहीं?" राजा बोला—"वर के लिये मैंने स्वयं सावित्री ही को भेजा था और वह वर को पसन्द करके इसी समय आई है।" तब तो नारदजी ने सावित्री ही से पूछा—"बेटी! तुमने किस वर को विवाहने का निश्चय किया है?" सावित्री हाथ जोड़कर अति नम्रता से बोली—"द्युमत्सेन का राज्य रुक्मी ने हरण कर लिया है। और वह अन्धा होकर रानी के सहित वन मे रहता है। उसके इकलौते पुत्र सत्यवान् ही को मैंने अपना पति स्वीकार किया है।" सावित्री के वचन सुनकर अश्वपति से नारदजी बोले—"राजन्! आपकी कन्या ने बड़ा परिश्रम किया है। सत्यवान् वास्तव मे बड़ा गुणवान् और धर्मात्मा है। वह स्वयं सत्य बोलने वाला है और उसके माता-पिता भी सत्य ही बोलते हैं। इसी कारण उसका नाम सत्यवान् रखा गया है। सत्यवान्

रूपवान्, धनवान्, गुणवान् और सब शास्त्रों में विशारद है। विशेष क्या कहूँ, उसके तुल्य संसार में दूसरा कोई मनुष्य नहीं है। जिस प्रकार रत्नाकर रत्नों का कोश है, उसी प्रकार सत्यवान् सद्-गुणों का कोश है। परन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि उसमें एक दोष भी बड़ा भारी है। अर्थात्, वह एक वर्ष की समाप्ति पर मर जायगा।"

सत्यवान् अल्पायु है, यह सुनते ही अश्वपति के सब विचार बालू की भीत की तरह नष्ट हो गये। उसने सावित्री से कहा—"बेटी! तुमको और वर ढूँढ़ना चाहिए। क्षीणायु के साथ विवाह करना कदापि श्रेयस्कर नहीं।"

पिता के इस कथन को सुनकर सावित्री बोली—"अब मै शारीरिक सम्बन्ध के लिये तो क्या, मन से भी अन्य पति की अभिलाषा नहीं करती। जिसको मैंने मन से स्वीकार कर लिया है, मेरा पति वही होगा, अन्य नहीं। कोई भी संकल्प प्रथम मनमें आता है और फिर वाणी में। वाणी के पश्चात् करना ही शेष रहता है—चाहे वह शुभ हो या अशुभ। इसलिये अब मै दूसरे को कैसे वरण कर सकती हूँ? यह आप ही कहे। राजा एक ही बार कहता है। पण्डितजन एक ही बार प्रतिज्ञा करते है, जिसको आजीवन निबाहते हैं। और यह कन्या तुमको दी, यह भी एक ही बार कहा जाता है,—अर्थात् यह तीनों बाते एक ही बार कही जाती हैं। सगुण हो या निर्गुण, मूर्ख हो या पण्डित, जिसको मै ने एकबार भर्त्ता कह दिया, फिर मेरी बुद्धि विचलित न हो, यही

परमात्मा से प्रार्थना है। चाहे वह दीर्घायु हो, चाहे अल्पायु, वही मेरा पति है। अब मैं अन्य पुरुष को तो क्या, तेतीस कोटि देवताओं के अधिपति इन्द्र को भी अंगीकार न करूँगी।"

सावित्री के इस निश्चय को देखकर नारदजी ने अश्वपति से कहा—"अब तुमको सावित्री का विवाह सत्यवान् ही के साथ कर देना चाहिये।"

नारदजी अपने स्थान को चले गये और राजा अश्वपति विवाह का समस्त सामान तथा कन्या को लेकर वृद्ध सचिव समेत उसी वन मे गया, जहाँ राजश्री से नष्ट, अपनी रानी और राजकुमार समेत एक वृक्ष के नीचे राजा द्युमत्सेन निवास करते थे। सावित्री-सहित अश्वपति ने राजा द्युमत्सेन के चरणों के छूकर अपना नाम बताया। द्युमत्सेन ने आगमन का कारण पूछा। तब अश्वपति बोले—"मेरी पुत्री सावित्री का आपके राजकुमार सत्यवान् के साथ विवाह करने का विचार है। इसमे मेरी भी सम्मति है। इस कारण विवाहोचित सम्पूर्ण सामग्री लेकर आप की सेवा मे आया हूँ।"

इस पर द्युमत्सेन कुछ उदास होकर बोले—आप तो "राज्यासीन राजा है और मै राज्यभ्रष्ट हूँ—तिसपर भी रानी और हम दोनो अन्धे हैं। वन मे रहते है। और सर्वथा निर्धन भी है। तुम्हारी कन्या वन-वास के दुःखों को न जानकर ही ऐसा कहती है।"

अश्वपति बोले—"मेरी कन्या सावित्री ने इन सब बातो पर प्रथम हो विचार कर लिया है। वह स्पष्ट कहती है कि जहाँ मेरे श्वसुर और पतिदेव निवास करते है, वही मेरे लिये बैकुण्ठ है।"

सावित्री का इस प्रकार दृढ़ प्रण सुनकर द्युमत्सेन ने भी उस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया। शास्त्र-विहित विधि से सावित्री का विवाह करके अश्वपति तो अपनी राजधानी को चले गये और उधर सावित्री सत्यवान् को पाकर सुखपूर्वक श्वसुर-गृह में रहने लगी।

नारदजी ने जो भविष्य कहा था, सावित्री उससे बेख़बर नहीं थी। उनके कथनानुसार एक-एक दिन गिनती जाती थी। उसने जब पति का मरण-काल समीप आते देखा तब तीन दिन प्रथम ही से वह उपवास करने लगी। तीसरे ही दिन उसने पितृ-देवों का पूजन किया। वही दिन नारदजी का बतलाया हुआ दिन था। जब सत्यवान् नित्य-नियमानुसार कुल्हाड़ी और टोकरी हाथ में लेकर वन को जाने के लिए तैयार हुआ, तब सावित्री ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"भगवन्! आपकी सेवा मे रहते हुए मुझको एक वर्ष हो गया। परन्तु मैंने इस समीपवर्ती वन को कभी नहीं देखा। आज तो मैं भी आपके साथ अवश्य चलूँगी।"

यह सुनकर सत्यवान् बोला—"प्रिये! तुम जानती ही हो कि मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। यदि मेरे साथ चलना है तो अपने सास-श्वसुर से आज्ञा ले आओ।"

इस पर सावित्री ने सास के पास जाकर आज्ञा ली और वह पति के साथ वन को चली गई।

वन मे जाकर प्रथम तो सत्यवान् ने फल तोड़े। पुनः वह लकड़ी काटने के लिये एक वृक्ष पर चढ़ गया। वृक्ष के ऊपर

ही सत्यवान के मस्तक मे पीड़ा होने लगी। वह वृक्ष से उतरकर और सावित्री की जाँघ पर सिर रखकर लेट गया। थोड़ी देर के बाद सावित्री ने देखा कि अनेक दूतों के साथ हाथ मे पाश लिये हुए यमराज सामने खड़े है। प्रथम तो यमराज ने सावित्री को ईश्वरीय नियम यथावत् कहकर सुनाया। तदनन्तर वह सत्यवान् के अंगुष्ठ-प्रमाण जीव को लेकर दक्षिण दिशा की ओर चले गये। यमराज के पीछे-पीछे जब सावित्री बहुत दूर तक चली गई, तब यमराज ने उससे कहा—"हे पति-परायणे! जहाँ तक मनुष्य मनुष्य का साथ दे सकता है, वहाँ तक तुमने पति का साथ दिया। अब मनुष्य के कर्त्तव्य से आगे की बात है। अतः तुम को पीछे लौट जाना चाहिए।"

यह सुनकर सावित्री बोली—"यमराज! जहाँ मेरा पति ले जाया जायगा, वही मुझे जाना चाहिए। यही सनातन धर्म है। पातिव्रत के प्रभाव के कारण आप के अनुग्रह से कोई भी मेरी गति को रोक नहीं सकता।"

सावित्री की धर्म और उपदेशमयी वाणी सुनकर यमराज बोले—"हे सावित्री! स्वर और व्यंजन आदि से ठीक तथा हेतु-युक्त तेरी इस वाणी से मै बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। इस कारण तू यही ठहर और सत्यवान के जीवन को छोड़कर अन्य चाहे सो वर माँग ले। तू जो माँगेगी, वही दूँगा।"

यमराज के वाक्यो को सुनकर सावित्री ने विचार किया—"संसार मे धर्म-परायणा स्त्री का यही कर्त्तव्य हो सकता है कि पहले

तो वह अपने श्वसुर-कुल का, फिर पितृ-कुल का कल्याण करे। तदनन्तर आत्म-हित-साधन में तत्पर हो। इसी भाव को हृदय में रखकर सावित्री बोली—"मेरे श्वसुर वन में रहते हैं और वे दोनों आँखों से अन्धे हैं। अतः आपकी कृपा से उनको दिखाई देने लगे, यह वरदान चाहती हूँ।"

इस पर यमराज ने सावित्री से कहा—"हे अनिन्दिते! जो कुछ तूने माँगा, वह सब तुझको दिया गया। परन्तु तुझको जो मार्ग का कष्ट हो रहा है, उसे देखकर मुझको ग्लानि होती है। अतः तू यहीं ठहर जा।"

यमराज के इस कृपापूर्ण आशय को समझकर सावित्री बोली—"भगवान्! जहाँ मेरे पतिदेव जाते हों, वहाँ उनके पीछे-पीछे चलने में मुझको कोई कष्ट या श्रम नहीं हो सकता। एक तो पति-परायणा होना मेरा कर्त्तव्य है। दूसरे आप धर्मराज हैं, परम सज्जन हैं। अतः सत्पुरुषों का समागम भी थोड़े पुण्य का फल नहीं है।"

सावित्री के ऐसे धर्म तथा श्रद्धा-युक्त वचन सुनकर यमराज ने पुनः कहा—"सावित्री! तुम्हारे वचनों को सुनकर मुझको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसलिए तुम चाहो तो एक वरदान मुझ से और भी माँग सकती हो।"

यह सुनकर सावित्री बोली—"बुद्धिमान् द्युमत्सेन (मेरे श्वसुर) का राज चला गया है। वह उनको पुनः मिल जाय और उनको सदैव धर्म में प्रीति रहे। यही मेरी प्रार्थना है।"

यमराज ने कहा—"तुमने जो कुछ कहा है, वह अवश्य होगा। परन्तु अब तुम आगे न चलकर यहीं ठहर जाओ।"

यह सुनकर सावित्री ने दीन-स्वर से कहा—"प्राणिमात्र मे अद्रोह तथा मन, वाणी और कर्म से सब पर अनुग्रह, यही सज्जन पुरुषों का मुख्य धर्म है। फिर न जाने क्यो आप अद्रोह, अनुग्रह को भूल मुझे पीछे लौटने को कहते है। मेरी समझ मे यह सज्जनों के योग्य कर्त्तव्य नहीं है।"

सावित्री के इस पाण्डित्यपूर्ण भाषण को सुनकर और अत्यन्त प्रसन्न होकर यम ने उसे तीसरा वर देने की इच्छा प्रगट की। उस समय सावित्री ने पितृ-कुल की भलाई को लक्ष्य मे रखते हुए कहा—"मेरी यही कामना है कि मेरे पिता को सौ पुत्र मिले।"

यमराज ने इस पर भी 'तथास्तु' कहकर सावित्री को समझाया—"तुम जो इस कंटकमय मार्ग मे बहुत दूर तक आ गई हो, इसका मुझको बहुत दुःख है। तुमने जो तीसरा वर माँगा है, वह भी मैने तुमको दिया। किन्तु अब तुम पीछे लौट जाओ।"

सावित्री ने कहा—"प्रभो! निकट और दूर ये दोनों बातें अपेक्षाकृत है। मेरा तो वही घर है, जहाँ मेरे पतिदेव है। फिर मै दूर किससे हूँ? यह मेरी समझ मे नही आया। आप सन्त हैं। अतः सन्त न कभी दुःखी होते है, न सुखी। वे तो अपने सत्य के बल से सूर्य को भी जीतते हैं, तपोबल से पृथ्वी को धारण करते है और शरीर को क्षण-भंगुर समझकर प्राणियों पर दयाभाव रखते है।

सावित्री की ऐसी युक्ति-प्रत्युक्तियों ने यमराज के अंतःकरण में एक अद्भुत भाव उत्पन्न कर दिया। वे द्रवीभूत होकर बोले—"हे पतिव्रते! तुम ज्यों-ज्यों मनोऽनुकूल धर्मयुक्त अच्छे पदों से अलंकृत और गम्भीर-युक्तिपूर्ण भाषण करती हो, त्यों-त्यों तुम मे मेरी उत्तम प्रीति बढ़ती जाती है। अतः तुम सत्यवान् के जीवन को छोड़कर एक वर और भी मुझसे माँग सकती हो।

श्वसुर-कुल और पितृ-कुल का कल्याण हो चुकने के बाद अब अपनी भलाई का प्रश्न शेष था। परन्तु पति-परायणा स्त्री को अपने पति की आयु-वृद्धि के अतिरिक्त और क्या माँगने की इच्छा हो सकती है। यह सोचकर सावित्री ने चौथे वरदान को इस प्रकार से माँगा—"मुझको पति के बिना न तो सुख की इच्छा है, न स्वर्ग की। न गत वैभव को और न बिना पति के इस तुच्छ जीवन की। तथापि आपकी आज्ञा की अवहेलना करना एक अपराध समझकर एक प्रार्थना करती हूँ, सो पूर्ण कीजिए। वह यह कि सत्यवान् से मुझको सौ सन्तान प्राप्त हों। इस अन्तिम वरदान को देते हुए यमराज ने सत्यवान् को अपने पाश से मुक्त करके सावित्री से कहा—"सत्यवान् से तुमको अवश्य सौ पुत्र होंगे।"

यह कहकर यमराज अदृश्य हो गये। इधर वटवृक्ष के नीचे जो सत्यवान् का शरीर पड़ा था, उसमें जीव का संचार होते ही वह उठकर बैठ गया। सावित्री ने उसे सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया और वे दोनों आश्रम को चले गये। उधर सत्यवान् के माता-पिता

पुत्र और पुत्रवधू के वियोग से विह्वल हो रहे थे कि दैवयोग से उन दोनों की आखें खुल गईं। इतने मे सावित्री और सत्यवान् भी आ पहुँचे। समस्त देश में सावित्री के अनुपम व्रत की बात फैल गई। राज के लोगों ने महाराज द्युमत्सेन को ले-जाकर राज-सिंहासन पर बिठाया। सावित्री के पिता राजा अश्वपति को भी यमराज के वरदान के अनुसार सौ पुत्र प्राप्त हुए। सावित्री और सत्यवान् ने शत पुत्र-युक्त होकर वर्षों तक राज किया और तब वे बैकुण्ठ-वासी हुए।

प्रत्येक सौभाग्यवती स्त्री को यह व्रत अवश्य करना चाहिए।

गङ्गा-दशहरा

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को गङ्गा-दशहरा कहते हैं। इस व्रत का विधान स्कन्द-पुराण मे और गङ्गावतरण की कथा वाल्मीकि रामायण में लिखी है।

ज्येष्ठ शुक्ला दशमी सम्वत्सर का मुख है। इसमें स्नान और विशेष करके दान करना चाहिये। प्रथम तो गङ्गा-स्नान ही का माहात्म्य विशेष है। यह न हो सके तो किसी भी नदी मे तिलोदक देने का विधान है; जिससे मनुष्य दश महा पापों से मुक्त होकर विष्णु-लोक को जाता है। ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को यदि सोमवार हो और हस्ति नक्षत्र हो तो यह तिथि सब पापों को हरण करने वाली होती है। ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को बुधवार के दिन हस्ति नक्षत्र में गङ्गा-जी भूतल पर अवतीर्ण हुई थीं। इसी कारण यह तिथि महान् पुण्य-पर्व मानी गई है। इसमे स्नान, दान और तर्पण करने से दश पापों का हरण होता है। इसी कारण इसको दशहरा कहते हैं।

गङ्गावतरण की कथा

अयोध्या के महाराज सगर के दो रानियाँ थीं। एक का नाम था केशिनी और दूसरी का सुमति। केशिनी के असमञ्जस नामक एक पुत्र और अंशुमान नामक एक पौत्र था। परन्तु सुमति के साठ हजार पुत्र थे। ये साठ हजार भाई राजा सगर के अश्वमेध

यज्ञ के घोड़े को ढूँढ़ने गये थे और कपिलदेवजी की शक्ति से वे सब भस्म हो गये। जब अंशुमान कपिलदेवजी के आश्रम पर गया, तब महात्मा गरुड़जी ने कहा—"अंशुमान्! तुम्हारे साठ हजार चचा अपने पापाचरण के कारण कपिलदेवजी के शाप से भस्म हो गये हैं। यदि तुम उनकी मुक्ति चाहते हो तो स्वर्ग से गङ्गाजी को यहाँ पर लाओ। इनको लौकिक जल तरण-तारण नहीं कर सकता। अतः हिमवान पर्वत की बड़ी कन्या गङ्गा के जल ही से इनकी क्रिया करनी चाहिये। इस समय तो घोड़े को ले जाकर पितामह के यज्ञ को समाप्त करो। तदनन्तर गङ्गाजी को इस लोक में लाने का प्रयत्न करो। अंशुमान् घोड़े को लेकर सगर के यज्ञ-स्थान में पहुँचा और उसने पितामह से सारा समाचार कह सुनाया।

महाराज सगर का देहावसान होने पर मन्त्रियों ने अंशुमान् को अयोध्या की गद्दी पर बिठाया। राज पाकर अंशुमान् ने अच्छा यश प्राप्त किया और ईश्वर की कृपा से इनका पुत्र दिलीप भी बड़ा प्रतापी हुआ। राजा अंशुमान् पर्वत पर दारुण तप करने लगा। वह उसी स्थान पर पञ्चत्व को प्राप्त हुआ; परन्तु गङ्गा को न ला सका। कालान्तर में दिलीप भी अपने पुत्र को राज देकर स्वयं गङ्गाजी को लाने के उद्योग में तत्पर हुआ। किन्तु वह भी अपने उद्योग में विफल-मनोरथ हुआ।

दिलीप का पुत्र भगीरथ बड़ा ही प्रतापी और धर्मात्मा राजा था। वह चाहता था कि एक सन्तान हो जाय, तो मैं भी गङ्गाजी

को लाने का प्रयत्न करूँ। किन्तु जब प्रौढ़ावस्था प्राप्त होने तक कोई सन्तान न हुई, तब मन्त्रियों को राज का भार सौंपकर वह गङ्गाजी को लाने के लिये गोकर्ण-तीर्थ में तपस्या करने लगा—इन्द्रियों को जीत कर पञ्चाग्नि ताप से तपना, उर्ध्वबाहु रहना और मास में एक बार आहार करना। इस प्रकार की घोर तपस्या करते हुए जब बहुत वर्ष बीत गये, तब सब देवताओं को साथ लेकर प्रजाओं के स्वामी ब्रह्माजी राजा भगीरथ के पास जाकर बोले—"हे राजन्! तुम ने अभूतपूर्व तप किया है। इसलिये प्रसन्न होकर मैं तुमको वरदान देने आया हूँ। तुम इच्छानुकूल वर माँग सकते हो।"

राजा भगीरथ हाथ जोड़कर बोला—"हे नाथ! यदि आप प्रसन्न हैं तो महाराज सगर के साठ हजार पुत्रों के उद्धार के लिये गङ्गाजी को दीजिये। बिना गङ्गाजी के उनकी मुक्ति होनी असम्भव है। इसके अतिरिक्त इक्ष्वाकुवंश में आजतक कोई राजा अपुत्रक नहीं रहा। इसलिये मुझको एक सन्तान का भी वरदान दीजिये।

राजा के इस विनय को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—"राजन्! तुम्हारे कुल को उज्ज्वल करने वाला एक पुत्र तुमको प्राप्त होगा और सगरात्मजों का उद्धार करने वाली गङ्गाजी भी निस्सन्देह पृथ्वी पर आयेंगी। परन्तु महान् वेगवती गङ्गा को धारण करने की शक्ति श्रीशिवजी के सिवा और किसी में नहीं है। इसलिये तुम शिवजी को प्रसन्न करो।"

इतना कहकर देवताओं-समेत ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये और जाते समय गङ्गाजी को आज्ञा कर गये कि सगर की सन्तान को मुक्ति प्रदान करने के लिये तुमको भूलोक में जाना होगा।

इधर राजा भगीरथ पैर के एक अँगूठे पर खड़े होकर श्रीमहादेवजी का आराधन करने लगा। एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर श्रीमहादेवजी ने वरदान दिया कि मै अवश्य ही गंगा को शीश पर धारण करूँगा।

अस्तु; ज्यों ही गंगा की धारा ब्रह्मलोक से भूतल पर आई, त्योंही वह महादेव जी को जटाओं मे विलीन हो गई। पुराणों का मत है कि जब भगवान् ने वामन-रूप धरकर राजा बलि के यहाँ भिक्षा माँगी और तीन पग से सारी पृथ्वी को माप लिया था, उस समय ब्रह्माजी ने भगवान् का चरणोदक अपने कमण्डल मे भर लिया था। उसीका नाम गंगा था। इसी कारण गंगा को विष्णुपादोद्भव भी कहते हैं।

ब्रह्मलोक से आते समय गंगा ने मन मे अहंकार किया कि मै महादेवजी को जटाओं को भेदन करके पाताल लोक मे चली जाऊँगी। इससे महादेवजी ने अपने जटा-जूट को ऐसा फैलाया कि कितने हो वर्ष बीत जाने पर भी गंगा को जटाओ से बाहर निकलने का मार्ग न मिला। जब राजा भगीरथ ने पुनः शिवजी की आराधना की। तब शिवजी ने प्रसन्न होकर हिमालय मे ब्रह्मा के बनाये बिंदुसर तालाब मे गंगा को छोड़ दिया। उस समय गंगा

को सात धाराएँ हो गईं। उनमे से ह्लादिनी, पावनी और नलिनी ये तीन धाराएँ तो विंदुसर से पूर्व दिशा की ओर बहीं और सुचक्षु, सीता तथा सिंधु ये तीन नदियाँ पश्चिम दिशा को बही। सातवीं धारा राजा भगीरथ के पीछे-पीछे चली। महाराज भगीरथ दिव्य रथ पर चढ़कर आगे-आगे चले जाते थे और गंगा उनके रथ के पीछे-पीछे। पुराणों में यह भी लिखा है कि गंगा ने राजा भगीरथ से कहा कि तुम रथ पर बैठकर जिस ओर को चलोगे, उसी ओर मै तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगी। इस प्रकार जब गंगा पृथ्वी-तल पर आईं तो बड़ा कोलाहल हुआ। जहाँ-जहाँ से गंगाजी निकलती जाती थीं, वहाँ-वहाँ की भूमि अपूर्व शोभामयी होती जाती थी। कहीं ऊँची, कहीं नीची और कहीं समतल भूमि पर बहने से गंगाजी की अपूर्व शोभा हो रही थी। आगे भगीरथ, उनके पीछे गंगा और गंगा के पीछे देवता, ऋषि, दैत्य, दानव, राक्षस, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, नाग, सर्प और अप्सराओं को भीड़ चली जाती थी। महात्मा जन्हु गंगा के मार्ग में तपस्या कर रहे थे। जब गंगा उनके पास से निकलीं तो वह समूची गंगा को पान कर गये। देवताओं ने यह दृश्य देखकर जन्हु की बड़ी प्रशंसा की और उनसे कहा—"कृपा करके लोक के कल्याण के लिये आप गंगा को छोड़ दीजिये। आज से यह आपकी कन्या कहलायेंगी।"

जन्हु ने गंगा को धारा को अपने कान से निकाल दिया। तभी से गंगा का नाम जान्हवी पड़ गया। गंगा इस प्रकार

अनेक स्थानो को पवित्र करती हुई उस स्थान पर पहुँचीं, जहाँ सगर के साठ हजार पुत्रो के भस्म का ढेर लगा हुआ था। गगा के जल का स्पर्श होते ही वे सब मुक्ति को प्राप्त हो गये। उसी समय स्वर्ग लोक के अधिपति श्रीब्रह्माजी भी वहाँ प्रकट हुये। ब्रह्माजी अति प्रसन्न होकर भगीरथ से बोले—"हे राजन्, तुमने अपूर्व तप किया है, इस कारण तुम्हारा नाम अमर हो गया। गंगा का एक नाम भागीरथी होगा, जो सदैव तुम्हारा स्मरण कराता रहेगा। सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार हो गया। अब तुम अयोध्या मे जाकर धर्म और नीति-पूर्वक प्रजा का पालन करो।

यह कहकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोक को सिधारे और राजा भगीरथ अयोध्या को चले गये।

श्रावणी और रक्षा-बन्धन

श्रावण को पूर्णिमा के दिन दो त्योहार इकट्ठे हुआ करते है–श्रावणी और रक्षा-बन्धन। अनेक धर्म-ग्रन्थों का मत है कि श्रावणी को ब्रह्मचारी और द्विजों को चाहिये कि ग्राम के समीप अच्छे तालाब या नदी के किनारे पर जाकर उपाध्याय (गुरु) की आज्ञानुसार शास्त्रोक्त-विधि से श्रावणी-कर्म अवश्य करे। प्रारम्भ मे शरीर की शुद्धि के लिये दूध, दही, घी, गोबर, और गोमूत्र इन पाँचों चीज़ों का पञ्च-गव्य बनाकर पान करना चाहिये। पुनः शास्त्र-विधि से तैयार की हुई वेदी मे हविषान्न (खीर, घी, शक्कर, जौ आदि) का विधिवत् हवन करना चाहिये। इसी को उपाकर्म कहते हैं। तदनन्तर जल-प्रवाह के सामने जल मे खड़े होकर तथा हाथ जोड़-कर सूर्य भगवान् का ध्यान और स्तुति करे।

फिर अरुन्धती-समेत सप्त ऋषियों का पूजन करके दधि तथा सत्तू की आहुतियाँ दे। इसको उत्सर्जन करते है।

रक्षा-बन्धन की कथा

एक समय देवता और दैत्यों मे लगातार बारह वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा, जिसमे दैत्यों ने सम्पूर्ण देवताओं-समेत इन्द्र को विजय कर लिया। दैत्यों से पराजित इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति से कहा—"इस समय न तो मै यहाँ ठहरने मे समर्थ हूँ और

न मुझको भागने का अवसर है। अतः मुझे लड़कर प्राण देना अनिवार्य हो गया है।" ऐसी बाते सुनकर इन्द्राणी बीच ही में बोल उठीं—"पतिदेव! आप निर्भय रहे। मैं एक ऐसा उपाय करती हूँ, जिससे अवश्य ही आपकी विजय होगी।" प्रातःकाल ही श्रावणी पूर्णिमा थी। इन्द्राणी ने ब्राह्मणो के द्वारा स्वस्ति-वाचन कराकर इन्द्र के दाहिने हाथ मे रक्षा की पोटली बाँध दी। रक्षा-बन्धन से सुरक्षित इन्द्र ने जब दैत्यों पर चढ़ाई की, तो दैत्यो को वह काल के समान देख पड़ा, जिससे भयभीत होकर वे आप ही भाग गये।

बुद्धिमान् मनुष्य श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन प्रथम तो स्नान करे; पुनः देवता, पितर और सप्तर्षियो का तर्पण करे। दोपहर के बाद सूती वा ऊनी वस्त्र लेकर उसमे चावल रखकर गाँठ लगावे और स्वर्ण के रङ्ग के समान हल्दी या केशर मे रँगकर उसे एक पात्र मे रख दे। पुनः घर को गोबर से लिपवाकर और चावलों का चौक पुरवाकर उस पर घट की स्थापना करे। घट मे अन्न भरा होना चाहिए। पीले वस्त्र मे सूत के लच्छे से लिपटी हुई एक या अनेक चावल की पोटलियाँ रख दे। यजमान स्वयं पटा अथवा चौकी पर बैठे और शास्त्रोक्त विधि से पुरोहित-द्वारा घट का पूजन कराये। पूजन के पश्चात् उस पोटली को यजमान के हाथ मे बाँधे तथा परिवार के और लोगों के हाथ मे भी बाँधे। इस प्रकार के रक्षा-बन्धन को वेदपाठी ब्राह्मण द्वारा ही कराना चाहिए। रक्षा-बन्धन के समय ब्राह्मण मंत्र बोले।

नाग-पञ्चमी

श्रावण शुक्ला पञ्चमी को नाग-पूजा होती है। इसीलिये इस तिथि को नागपञ्चमी कहते हैं।

श्रावण शुक्ला पञ्चमी को घर के दरवाजे के दोनों ओर गोबर से नाग की मूर्ति लिखे। इस व्रत के करनेवाले को चतुर्थी को केवल एक बार भोजन करके, पंचमी को दिन भर उपवास रहकर शाम को भोजन करना चाहिये। चाँदी, सोना, काठ अथवा मिट्टी की कलम से हल्दी तथा चन्दन से पाँच फन वाले पाँच नाग लिखे। पञ्चमी के दिन खीर, पञ्चामृत और कमल के पुष्प से तथा धूप, दीप, नैवेद्य आदि से विधिवत् नागों का पूजन करे। पूजन के पश्चात् ब्राह्मणों को लड्डू या खीर के भोजन करावे। नागों में बारह नाग प्रसिद्ध हैं। यथा—अनन्त, वासुकी, शेष, पद्म, कँवल, कर्कोटक, अस्वतर, धृतराष्ट्र, शङ्खपाल, कालिया, तक्षक और पिंगल। इनमे से एक-एक नाग की एक-एक मास में पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मणों को खीर के भोजन कराने चाहिये और पूजा करानेवाले व्यास (पंडित) को नागपञ्चमी के दिन स्वर्ण और गौ का दान देना चाहिये। कहीं-कहीं चाँदी या सोने के नाग पान के पत्ते पर रखकर दक्षिणा दान करने की विधि लिखी है। पंचमी के दिन नाग की पूजा करने वाले को उस दिन पृथ्वी न खोदनी चाहिये।

कथा

एक किसान परिवार-समेत मणिपुर नामक नगर में रहता था। उसके दो लड़के और एक कन्या थी। एक समय जबकि वह अपने खेत में हल जोत रहा था, उसके हल की फाल में बिंधकर साँप के तीन बच्चे मर गये। बच्चों की माता नागिन ने प्रथम तो बहुत विलाप किया। फिर अपने बच्चों को मारनेवाले से बदला लेने का संकल्प किया। रात्रि के समय नागिन ने उक्त किसान, उसकी स्त्री और दोनों बच्चों को डस लिया, जिससे वे चारों मर गये। दूसरे दिन वह नागिन जब कन्या को डसने के लिये गई, तब कन्या ने डरकर उसके सामने दूध का कटोरा रख दिया और वह क्षमा-प्रार्थना करने लगी। यद्यपि लड़की को मालूम नहीं था, परन्तु वह दिन नागपञ्चमी का था। इस कारण नागिन ने प्रसन्न होकर लड़की से वर माँगने को कहा। लड़की ने यह वर माँगा कि मेरे माता-पिता और दोनों भाई पुनः जीवित हो जायँ और जो आज के दिन नागों की पूजा करे, उसको कभी नाग के डसने की बाधा न हो। नागिन लड़की को वरदान देकर चली गई। कहते हैं, उसी दिन से लोक में नागपंचमी के पूजन का प्रचार हुआ।

कजरी की नवमी

कजरी का त्यौहार हिन्दूमात्र में एक प्रसिद्ध त्योहार है। श्रावण सुदी पूर्णिमा को कजरी पूर्णिमा कहते हैं। इसी को श्रावणी पूर्णिमा भी कहते हैं। इसी दिन श्रावणी-कर्म होता है और रक्षा-बन्धन भी होता है। किन्तु बुन्देलखण्ड की श्रावणी पूर्णिमा में कुछ विशेषता है। वह यह कि, वहाँ श्रावणी पूर्णिमा को संध्या के समय कजरी का जुलूस निकलता है। पूर्णिमा से एक सप्ताह पूर्व यानी श्रावण शुक्ला नवमी को कजरी बोई जाती है। सात दिन तक बराबर सन्ध्या को धूप और आरती हुआ करती है। गेहूँ या जौ पानी मे फुलाकर दोने से बो देते है और उनको ऐसी जगह रखते हैं जहाँ हवा न लगने पाये। हवा न लगने से कजरी का रङ्ग पीला रहता है। कजरी के रङ्ग का सगुन-असगुन भी माना जाता है। जिस नवमी को कजरी बोई जाती है, उसे कजरी की नवमी कहते हैं।

कजरी की नवमी को जिनके यहाँ कजरी बोई जाती है, लड़के वाली स्त्री व्रत रहती है। उसी दिन गाँव की स्त्रियाँ किसी नियत स्थान पर कजरी बोने की मिट्टी लेने जाती हैं। वहाँ भी एक छोटा सा मेला जैसा हो जाता है। मिट्टी को घर में लाकर दोनों या खप्परों में भरती है। पुनः जिस कोठे मे कजरी को रखना होता है, उस कोठे मे दीवार पर नवमी लिखी जाती है। भगवती

को प्रतिमा-सूचक एक पुतली लिखी जाती है। उसी के समीप एक मढ़ी या मकान, लड़के समेत एक पलना, एक नेवले का बच्चा और एक स्त्री की आकृति हल्दी से लिखी जाती है। इसी अनगढ़ चित्रकारी को नवमी कहते हैं। इसी नवमी की पूजा करके स्त्रियाँ कजरी बोती हैं। तब फिर नवमी के व्रत के सम्बन्ध की कथा कहती हैं। कथा के बाद कजरी बोने का गीत गाया जाता है।

कथा

एक स्त्री जन्म-बन्ध्या थी। उसने एक ऐसे नेवले के बच्चे को पाला, जिसकी माँ मर गई थी। स्त्री के बाल-बच्चा कुछ तो था ही नहीं, इस कारण वह नेवले का लड़के की तरह पालन-पोषण करती थी। दैवयोग से उस स्त्री को गर्भ रह गया और नौ महीने बाद एक सुन्दर बालक पैदा हुआ। स्त्री नेवले को अपने पुत्र का बड़ा भाई करके मानती थी।

श्रावण सुदी ९ की बात है। स्त्री लड़के को पलने में लिटाकर आप जल भरने चली। चलते समय उसने नेवले से कहा—"जब तक मैं न आऊँ, तू भाई की रक्षा करना।" स्त्री चली गई। नेवला लड़के के पलने के चारों ओर फेरा लगाता हुआ पहरा देने लगा। उसी समय एक सर्प पलने की तरफ झपटा। नेवले ने उसे काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया।

सर्प को मारकर नेवला माता को अपनी कृतज्ञता या बहादुरी दिखलाने के लिये बाहर दौड़ा गया। उधर से माँ सिर पर भरे हुए

घड़े रक्खे चली आ रही थी। उसने नेवले के मुख में रक्त लगा देखकर समझा कि यह लड़के को मारकर अब भागा जा रहा है। इसी कारण क्रोध में आकर उसने नेवले के ऊपर घड़ा पटक दिया। नेवला तत्क्षण मर गया।

स्त्री दौड़ी हुई घरके भीतर गई, तो देखती क्या है कि लड़का पालने में पड़ा खेल रहा है। उसी के समीप एक बड़ा भयानक सर्प टुकड़े-टुकड़े हुआ पड़ा है। अब उसने जाना कि नेवला सर्प को मारकर मेरे पास दौड़ा गया था। वह अपनी मूर्खता पर पछताने लगी कि मैंने सहसा क्रोध करके बड़ा अनर्थ किया है। बड़े लोगों का यह मत है कि आँखो देखी बात सहसा न मान लेनी चाहिये। हर बात का निर्णय कर लेना चाहिये। हाय! "मैंने न मानी, तो कौन सुने मेरी विपति कहानी।"

वह स्त्री सारे दिन रोती रही। दोपहर बाद पड़ोस की स्त्रियाँ उसे नवमी की मिट्टी लाने के लिये बुलाने आईं। परन्तु उसको रोते देखकर और उसका कार्य-कारण समझकर उन्हो ने कहा—"बीती बात पर पश्चात्ताप करने से क्या होता है? तू ने अबतक खाना नहीं खाया। यह तेरा नवमी का व्रत हो गया। अब चलकर मिट्टी लाओ और जहाँ नवमी लिखी जाय उसी जगह इस घटना का चित्र लिखकर पूजा करो। हम लोग भी इस नेवले की कृतज्ञता को चिर-स्मरण रखने के लिये प्रति नवमी को इसकी पूजा किया करेंगी।"

निदान उस स्त्री ने सब पड़ोसिनों के साथ-साथ नवमी का पूजन किया।

कहा जाता है, उसी दिन से नवमी के व्रत की परिपाटी चली है। क्योंकि अब भी सिर्फ लड़के वाली स्त्रियाँ नवमी का व्रत करती हैं। नवमी को भगवती की आराधना और पूजा भी होता है।

दूसरी कथा

एक स्त्री का नाम बारीबहू था। कजरियों की नवमी को उसने पड़ोसियों से पूछा—"आज क्या करना चाहिये।" उन्होंने कहा कि आज व्रत रहना चाहिये, शामको।नवमी की पूजा करनी चाहिये और जो मन आवे सो दान-पुण्य करना चाहिये। तब वह घर मे आकर चादर ओढ़कर लेट रही। दोपहर को जब उसका आदमी आया और उसने पूछा कि आज रसोई क्यों नहीं बनाई ? वह बोली कि आज तो मैंने व्रत रखा है। तब पति ने कहा—"खैर, तूने व्रत रखा है, मैंने तो व्रत नहीं रखा। क्या मै योंही भूखो मरूँ?" स्त्री ने जवाब दिया—"चाहे जो हो, मैं तो नवमी का पूजन किये बिना कोई भी काम नही करूँगी।"

तब पुरुष बोला—"अच्छा, तो जो तेरी मरजीआावे, सो कर। मै तो दूसरे गाँव को जाता हूँ। मुझे जरूरी काम है।" यह कहकर वह स्त्री के देखते तो बाहर चला गया। परन्तु इधर-उधर करके स्त्री की नजर बचाकर वह कोठिला के भीतर छिप रहा। अब पति को गया हुआ जानकर स्त्री उठी और बाजार से दो गन्ने लाकर उनको चूस गई। फिर उसने रोटियाँ बनाईं और खूब घी लगाकर खाईं। थोड़ी देर बाद उसने सिमई बनाई और घी

शक्कर के साथ उसे खागई। इतने पर भी उसे सन्तोष न हुआ। तब उसने खिचड़ी पकाई और घी डालकर इसे भी खा लिया।

इस प्रकार की पूजा से निवृत्ति लेकर अब उसने नवमी की पूजा की तैयारी की। वह फूहड़ तो थी ही, नवमी लिखना जानती नहीं थी। इसलिये गोबर घोलकर दीवार पर पोत दिया। इसके बाद स्नान करके उसने नवमी की बिढ़ई बनाई और तब पूजा करने बैठी। जैसी नवमी बनाई थी वैसी ही मनमानी पूजा करके वह बोली—"नवमी बाई बिढ़ई खायगी?" पुरुष ने कोठिला में से उत्तर दिया—"हूँ।" उसे इस पर आश्चर्य हुआ कि मेरी नवमी बोलती क्यों है? फिर उसने कहा—"नौ बासी नौ ताती नौ के चूरे खायगी?" उसने कहा "हूँ।" तब तो उसने गाँव मे जाकर स्त्रियों से कहा—"मेरी पूजा से प्रसन्न होकर मेरी नवमी तो बोलती है।" यह सुनकर सब स्त्रियों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—"तुमने ऐसी कैसी नवमी लिखी है जो बोलती है?" उसने उत्तर दिया—"मै नवमी लिखना तो जानती ही नहीं थी—इस कारण मैंने गोबर से पोत दिया था।"

गाँव की स्त्रियाँ फूहड़ की नवमी की बोली सुनने दौड़ आईं। उन्होंने फूहड़ के कहे अनुसार वही सवाल किया—"नवमी बाई नौ बिढ़ईं खायगी?" पुरुष ने फिर भी पहले जैसा कह दिया। इसपर स्त्रियों को बड़ी ईर्ष्या हुई कि हम लोग जो इतनी श्रद्धा-भक्ति से व्रत और पूजन करती है, हमारी नवमी कभी बोलती ही नहीं। इस फूहड़ की नवमी बोलती है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। परन्तु देवताओं की गति देवता ही जानें।

स्त्रियों के चले जाने पर फूहड़ ने बिढ़ई भी खाई। फिर वह चारपाई पर बिछौना बिछाकर लेट रही। सन्ध्या को पुरुष कोठिला से निकलकर खाँसता-खेखारता बाहर से घरमे आया। उसने स्त्री को पुकारकर कहा—"अरी! किवाड़ तो खोल दे।" उसने करवट बदलते हुए कहा—"मेरा तो जी अच्छा नहीं है। उठे तो कौन उठे।" करवट बदलने मे चारपाई चरचराई, तो वह बोली—"देखो मेरी पसलियाँ चरचरा रही हैं, मै उठ नही सकती।" तब पुरुष किसी तरह किवाड़ खोलकर भीतर आया। स्त्री ने पूछा—"तुम जिस गाँव को जाने कहते थे, वहाँ तक गये ही नहीं क्या?" उसने कहा—"हाँ, ऐसी ही बात है। रास्ते मे एक बड़ा सर्प मिल गया, इसी से लौट आया हूँ।" स्त्री ने पूछा—"सर्प कितना बड़ा था?" पुरुष ने कहा—"जितना बड़ा गन्ना होता है।" "वह सरकता कैसे था?" "जैसे खिचड़ी मे घी सरकता है"—यह कहकर उसने झोंटा पकड़कर पीटना शुरू किया। यहाँ तक ठोका कि वह बदहोश हो गई। उसकी पुकार सुनकर पड़ोस की स्त्रियाँ दौड़ आईं। पुरुष निकल कर बाहर चला गया। स्त्रियों ने पूछा—"अरी! हुआ क्या?" वह बोली—"क्या बताऊँ, क्या हुआ? नवमी की पूजा हुई और क्या हुआ?"

हरचट या हरछट

भाद्र कृष्णा षष्ठी को यह व्रत और पूजन होता है। व्रत रहने वाली स्त्रियाँ उस दिन महुआ की दातौन करती हैं। ज्यादातर लड़के वाली स्त्री ही यह व्रत करती है। हरछट के उपवास में हल द्वारा जोता-बोया हुआ अन्न या कोई फल नहीं खाया जाता। गाय का दूध-दही भी मना है। सिर्फ भैंस के दूध-दही या घी स्त्रियाँ काम में लाती हैं। शाम के समय पूजा के लिए मालिन हरछट बनाकर लाती है। उसमें झरबेरी, कास और पलास तीनों की एक-एक डालियाँ एकत्र बँधी होती हैं। ज़मीन लीपकर और चौक पूरकर स्त्रियाँ हरछट वाले गुलदस्ते को गाड़ देती हैं। कच्चे सूत का जनेऊ पहनाकर तब उसकी चन्दन, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्यादि से पूजा करती हैं। पूजा में सतनजा (गेहूँ, चना, जुआर, अरहर, धान, मूँग, मक्का) चढ़ाकर सूखी धूलि, हरी कजरियाँ, होली की राख या चने का होरहा, और होली की भुनी गेहूँ की बाल भी चढ़ाती हैं। इसके अलावा कुछ गहना, हल्दी से रंगा हुआ कपड़ा आदि चीज़ों को भी हरछट के आसपास रख देती हैं। पूजा के अन्त में भैंस के मक्खन का होम किया जाता है। तब कथा कही जाती है।

हरछट को श्रावण के त्योहारों की अन्तिम अवधि समझनी चाहिए।

हरछट की कथा

एक ग्वालिन गर्भ से थी। एक तरफ तो उसका पेट दर्द कर रहा था, दूसरी तरफ उसका दही-दूध बेचने को रक्खा था। उसने अपने मन मे सोचा कि यदि बच्चा हो जायगा तो फिर दही-दूध न बिक सकेगा। इस कारण जल्द जाकर बेच आना चाहिए। वह दही-दूध की मटकियाँ सर पर रखकर घर से चली।

वह चलती हुई एक खेत के पास पहुँची। खेत मे किसान हल जोत रहा था। उसी जगह स्त्री के पेट में अधिक पीड़ा होने लगी। वह झरबेरी के झाड़ो की आड़ मे उसी जगह बैठ गई और लड़का पैदा हो गया। उसने लड़के को कपड़े मे लपेटकर उसी जगह रख दिया और स्वयं दही-दूध बेचने चली गई।

उस दिन हरछट थी। उसका दूध गाय-भैंस का मिला हुआ था, परन्तु ग्वालिन ने अपने दही-दूध को केवल भैंस का बतलाकर गाँव मे बेच दिया।

इधर हलवाले के बैल विदककर खेत की मेड़ पर चढ़ गये। हलवाले को क्या मालूम था कि यहाँ बच्चा रक्खा है। दैवात् हल की नोक लड़के के पेट मे लग गई, उसका पेट फट गया और वह मर भी गया। हलवाले को इस घटना पर बहुत दुःख हुआ, पर लाचारी थी। उसने झरबेरी के काँटों से लड़के के पेट मे टाँके लगा दिए और उसे यथास्थान पड़ा रहने दिया।

इतने मे ग्वालिन दूध-दही बेचकर आई। उसने जो देखा तो बालक मरा पड़ा था। वह समझ गई कि यह मेरे पाप का परि-

णाम है। मैंने अपना दूध-दही बेचने के लिए झूठी बात कहकर सब व्रतवालियों का धर्म नष्ट किया। यह उसी की सज़ा है। अब मुझे जाकर अपना पाप प्रकट कर देना चाहिये। आगे भगवान् की जो मरजी होगी सो होगा। यह निश्चय करके यह उसी गाँव को फिर वापस चली गई, जहाँ दूध बेचकर आई थी। उसने वहाँ गली-गली घूमकर कहना शुरू किया—"मेरा दही-दूध गाय-भैंस का मिला हुआ था।"

यह सुनकर स्त्रियों ने उसे आशीर्वाद देने शुरू किये। उन्होंने कहा—"तू ने बहुत अच्छा किया जो सच-सच कह दिया। तू ने हमारा धर्म रक्खा। ईश्वर तेरी लज्जा रक्खे। तू बढ़े, तेरा पूत बढ़े।" अनेक स्त्रियों के ऐसे आशीर्वाद लेकर वह फिर उसी खेत पर गई, तो उसने देखा कि लड़का पलास की छाया में पड़ा खेल रहा है। उसी समय से उसने प्रण किया कि अब अपना पाप छिपाने के लिए झूठ कभी न बोलूँगी। क्योंकि पाप का परिणाम बुरा होता है। जिस पाप को छिपाने के लिए झूठ बोला जाता है, वह भी उग्र हो जाता है और झूठ बोलने का दूसरा पाप सिर चढ़ता है।

दूसरी कथा

देवरानी-जेठानी दो स्त्रियाँ थी। देवरानी का नाम था सलोनी और जेठानी का नाम तारा। सलोनी जैसी सुन्दरी थी, वैसी ही सदाचारिणी, सुशीला और दयावान थी। परन्तु तारा ठीक उसके प्रतिकूल, पूर्ण दुष्टा और दयाहीन थी।

एक बार दोनों ने हरछट का व्रत किया। संध्या को दोनों भोजन बनाकर ठंडा होने के लिए थालियाँ परोस आईं और आँगन मे बैठकर एक दूसरी के सिर के जूँ देखने लगीं। उस दिन देवरानी ने खीर बनाई थी और जिठानी ने महेरी बनाई थी। दैवात् दोनों के घरों मे कुत्ते घुस पड़े और परोसी हुई थालियाँ खाने लगे। घरों के भीतर 'चप चप' शब्द सुनकर वे अपने-अपने घरों मे दौड़ी गईं। सलोनी ने देखा कि कुत्ता खीर खा रहा है। वह कुछ न बोली; बल्कि जो कुछ खीर बची-बचाई बनाने के बरतन मे लगी थी, उसे भी उसने थाली मे परोसकर कहा—"यह सब भोजन तेरे हिस्से का है अच्छी तरह खा ले। मुझे जो कुछ ईश्वर देगा सो देखा जायगा।

उधर तारा ने घर में कुत्ते को देखकर हाथ मे मूसल उठाया, और कुत्ते को घर के भीतर छेंककर इतना मारा कि उसकी कमर टूट गई। कुत्ता अधमरा हो किसी तरह जान लेकर भागा। कुछ देर के बाद दोनों कुत्ते आपस मे मिले। तब एक ने दूसरे से पूछा—"कहो, क्या हाल है?" दूसरे ने कहा—"पहले तुम्हीं कहो। मेरा तो जो हाल है, सो देखते हो।" तब पहला बोला—"भाई! बड़ी नेक स्त्री थी। मुझे उसने खीर खाते देखकर उफ भी नहीं किया। मैंने भर पेट भोजन किया और आराम से चला आया। मेरी आत्मा उसे आशीर्वाद देती है। मै तो भगवान् से बार-बार यही मनाता हूँ कि अब जो मरूँ, तो उसी का पुत्र होकर आजन्म उसी की सेवा करूँ और जैसो उसने आज मेरी आत्मा तृप्त की है, वैसा मैं जन्म भर

उसकी आत्मा को सन्तोष देता रहूँ।" तब दूसरा बोला—"मेरी तो बुरी दशा हुई। पहले तो थाली मे मुँह डालते दाँत गोठले हो गये। परन्तु भूख के मारे फिर दो-चार निवाले चाटकर मैं भागने ही वाला था, तब तक वह आ गई। उसने तो मार-मारकर मेरी कमर ही तोड़ दी। अब मैं ईश्वर से यह मनाता हूँ कि अब की बार मर-कर मैं उसका पुत्र होऊँ तो उससे अपना पूरा बदला लूँ। उसने मूसलों से मेरी कमर तोड़ी है, परन्तु मैं भीतरी मार से उसका दिल और कमर दोनों तोड़ दूँगा।"

दैवात् दूसरा कुत्ता उसी दुःख मे मर गया और उसी स्त्री का पुत्र होकर जन्मा। दूसरी हरछट को जब कि घर-घर पूजा होती थी, वह लड़का मर गया। तारा को इससे बहुत दुःख हुआ। परन्तु मरने-जीने पर किसी का कुछ वश नहीं चलता, यह सोचकर उसने सन्तोष कर लिया। किन्तु अब तो यह एक नित-नियम सा हो गया कि हर साल उसके लड़का होता और हर साल ठीक हरछट को मर जाता था। तब उसे शङ्का हुई कि इसका कोई विशेष कारण है। वह रात्रि में पड़ी-पड़ी भगवान् से प्रार्थना करने लगी—"हे प्रभो! मेरा जाने-अनजाने का पाप क्षमा करो! मुझे समझ में नहीं आता कि मैंने कौन सा ऐसा पाप किया है जिसके कारण मेरा हर त्योहार को अनिष्ट होता है।" इसी विचार में वह सो गई।

स्वप्न मे उसी कुत्ते ने सामने आकर उससे कहा—"मै ही तेरा पुत्र होकर मर-मर जाता हूँ। तू ने जो मेरे प्रति दुष्टता की थी, अब मै उसी का बदला तुमसे ले रहा हूँ।" स्त्री ने पूछा—"अब

जिससे तू राजी हो, सो कह। मैं वही करूँगी।" उसने जवाब दिया– "अब से हरछट के व्रत मे हल का जोता-बोया अन्न या फल नहीं खाना। गाय का दूध-मठा नही खाना। होलो की भूनी बाल, होलो की धूलि इत्यादि चीजें हरछट की पूजा मे चढ़ायेगो तो मैं तेरे यहाँ रहूँगा अन्यथा नहीं। तेरी पूजा के समय तारागण छिटकें, तब तू समझना कि अब रहूँगा।" उसने कहा— "तारागण छिटकाना तो मेरे वश का नहीं। उसके स्थान मे धान या ज्वार के लावा बखेर दूँगी।"

कुत्ते ने कहा—"यह भी हो सकता है। परन्तु इस बात का मन मे निश्चय संकल्प कर ले कि अब ऐसी दुष्टता और निर्दयता का व्यवहार किसी के साथ न करेगी।" तारा ने अपनी आदत बदलने की कसम खाई। तभी से उसके लड़के जीने लगे।

———

जन्माष्टमी

भाद्र कृष्ण ८ को श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी कहते हैं, क्योंकि यह दिन श्रीकृष्ण भगवान् का जन्म-दिवस माना जाता है। इस तिथि की रात्रि मे रोहिणी नक्षत्र हो, तो कृष्ण-जयन्ती होती है। यदि रोहिणी नक्षत्र का अभाव हो, तो केवल जन्माष्टमी व्रत का हो योग होता है।

अष्टमी को व्रत रखने का नियम है। रात्रि में गीत तथा बाजों के निर्घोष से जागरण करे और भगवान् श्रीकृष्ण की जन्म-सम्बन्धिनी कथा सुने तथा सुनावे। तदनन्तर नवमी को पारण करने से प्रथम ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा से संतुष्ट करे।

यहाँ श्रीकृष्ण जन्म की वह कथा दी जाती है जो लोक मे प्रसिद्ध है:—

कथा

सत्ययुग मे केदार नाम का एक राजा बड़ा तेजस्वी हो गया है। वह आयु के तीसरे भाग मे अपने पुत्र को राज देकर तपोवन में चला गया। इसी राजा को वृन्दा नाम की एक कन्या थी, जिसने आजन्म अविवाहिता रहकर यमुना के पवित्र घाट पर घोर तपश्चर्या करनी आरम्भ की। जब उसकी तपश्चर्या

पराकाष्ठा को पहुँची, तो भगवान् ने प्रगट होकर कहा—"वर माँग।" कन्या ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"यदि आप मेरी सेवा से प्रसन्न हुए हैं तो कृपया मेरा पति होना स्वीकार करें।"

भगवान् ने उसकी प्रार्थना स्वीकार की।और उसे वे अपने साथ ही ले गये। व्रज के जिस वन में राजकुमारी ने तप किया था, उस का नाम वृन्दावन पड़ गया।

मधु नामक एक दैत्य ने यमुना के दक्षिण तट पर एक नगर बसाया था, जिसका नाम मधुपुरी था। इसी मधुपुरी को आज-कल मथुरा कहते हैं। श्रीरामावतार के समय शत्रुघ्नजी ने इसी मधु दैत्य को परास्त करके मधुपुरी (मथुरा) पर अधिकार प्राप्त किया था। यह मधुपुरी द्वापर युग में शूरसेन देश की राज-धानी हो गई और इसमें क्रमशः यादव, अन्धक, भोज आदि अनेक वंशों ने राज किया।

द्वापर युग के अन्त में मथुरापुरी में भोजवंशी राजा उग्रसेन राज करता था। उसके पुत्र कंस ने उसे गद्दी से उतार दिया और आप मथुरा का राज्य करने लगा। कंस की एक बहन थी, जिसका नाम देवकी था। देवकी का विवाह वसुदेव नामक एक यादववंशी सरदार के साथ हुआ था।

एक समय जब कि कंस अपनी बहन देवकी को श्वसुरगृह पहुँचाने के लिये लिवाये जा रहा था, अनायास ही मार्ग में आकाशवाणी हुई—"हे कंस! जिस देवकी को तू बड़े प्रेम से

लिवाये जा रहा है, उसी में तेरा काल बसता है। इसीके गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक तुझ को मारेगा।"

यह सुनते ही कंस म्यान से तलवार निकालकर वसुदेव को मारने पर उद्यत हुआ। तब देवकी ने उस से विनीत भाव से प्रार्थना की कि "मेरे गर्भ से जो सन्तान होगी, उसे मैं तुम्हारे सामने ला रक्खूँगी। उसको तुम चाहे जैसा कर सकते हो। बहनोई के मारने से क्या लाभ है?" कंस देवकी की बात मानकर मथुरा को वापस चला आया और उसने वसुदेव-देवकी दोनों को कठिन कारागार में कैद कर दिया।

जब देवकी के गर्भ से प्रथम बालक जन्मा और वह कंस के सामने लाकर रक्खा गया, तो उसने आठवें गर्भ की बात विचार कर उस बालक को क्षमा कर दिया। किन्तु उसी समय नारदजी ने कंस के पास आकर कहा—"राजन्! यह तुम बड़ी भूल कर रहे हो। क्या जाने यही वह आठवाँ गर्भ तुम्हारा नाश करनेवाला हो।" नारदजी ने पृथ्वी पर आठ लकीरें खींचकर उनको पहले एक सिरे से दूसरे सिरे तक गिना और फिर उस सिरे से पहले सिरे तक गिनकर प्रमाणित किया कि प्रथम या अष्टम कोई भी अष्टम संख्या का वाचक हो सकता है। अतः शत्रु के अंकुर को होते ही खोंट देना चाहिये। ऐसा न हो कि वह बड़ा होकर प्रबल हो जाय।

नारदजी की बात मानकर कंस ने फौरन् उस बालक को मरवा डाला। उसके बाद देवकी के गर्भ से जितने बालक हुए,

कंस सबको मरवाता गया। देवकी की सात सन्तान मारे जाने के बाद जब आठवें गर्भ की बात मालूम हुई, तो कंस ने देवकी-वसुदेव दोनों को ऐसे कठिन कारागार में कैद किया कि ये लोग अन्य किसी तीसरे मनुष्य का मुख भी न देख सकें। पहरे भी विकट लगाये गये।

जिस दिन श्रीकृष्ण भगवान् का जन्म हुआ, उस दिन भादों के कृष्ण पक्ष की अष्टमी थी। रोहिणी नक्षत्र था। पृथ्वी-मण्डल पर सर्वत्र घोर अन्धकार छाया हुआ था और मूसलाधार पानी बरस रहा था। जिस कोठरी में देवकी-वसुदेव दोनों कैद थे, उसमें सहसा एक बड़ा भारी प्रकाश हुआ। उसी प्रकाश में देवकी-वसुदेव दोनों ने देखा कि शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म युक्त चतुर्भुज भगवान् उनके सामने खड़े हैं। प्रभु की ऐसी कृपा देखकर देवकी-वसुदेव उनके चरणों पर गिर पड़े। तब श्रीकृष्ण भगवान् ने उनसे कहा—"अब मैं नवजात बालक का स्वरूप धारण कर लेता हूँ; परन्तु हे वसुदेव! तुम इसी समय मुझे अपने मित्र नन्दजी के घर वृन्दावन में भेज आओ और उनके यहाँ एक कन्या जन्मी है, उसे लाकर कंस को समर्पण कर दो। यद्यपि इस समय प्रकृति ने बड़ा भयानक रूप धारण कर रक्खा है, परन्तु तुम किसी की चिन्ता न करो। मेरी कृपा से जागते हुए पहरेवाले सब सो जायँगे। बन्दीखाने के फाटक आप ही आप खुल जायँगे और मार्ग में पड़नेवाली अथाह यमुना नदी भी तुमको मार्ग दे देगी।"

नवजात शिशु-रूप श्रीकृष्ण भगवान् को सूप में रखकर वसुदेव उसी समय बन्दीगृह से निकल पड़े और अथाह यमुना को पार करके वह अपने मित्र नन्द के घर जा पहुँचे। मित्र ने भी मित्र का कर्तव्य पालन किया। उन्होंने श्रीकृष्ण को अपनी स्त्री यशोदा के साथ सुला दिया और यशोदा के गर्भ से जन्मी हुई पुत्री चण्डिका को वसुदेव के सूप में रख दिया। उसे लेकर वसुदेव उसी पैरों मथुरा को वापस चले आये और बन्दीगृह में अपने स्थान पर दाखिल हो गये। बन्दीखाने के सब किवाड़ जहाँ के तहाँ बन्द हो गये और उनमें ताले भी पड़ गये। पहरेवाले मोह-निद्रा से जागकर सावधानी से चौकसी करने लगे।

सबेरे जब कंस ने सुना कि मेरी बहिन के गर्भ से अबकी बार कन्या जन्मी है, तो उसने उसी समय कन्या को मँगाकर एक धोबी को हुक्म दिया कि यह नवजात कन्या पत्थर पर पटक दी जाय। अतः धोबी ज्यों ही चण्डिका के पैर पकड़कर उसे पछाड़ने लगा, त्यों ही वह धोबी के दोनों हाथ लेती हुई आकाश में उड़ गई। वहाँ से उसने कहा—"रे मूर्ख कंस, मुझको मारने से क्या होगा? तेरा मारनेवाला तो वृन्दावन मे जा पहुँचा है।"

यह कौतुक देखकर कंस अवाक् रह गया।

कंस कृष्ण को वृन्दवन मे सुरक्षित जानकर बड़ा ही उद्विग्न हुआ और वह उनके मारने के लिये अनेक उपाय करने लगा। उसने उन का नाश करने के लिये समय-समय पर अनेक दैत्य और दानवियों को भेजा। उन सब ने आसुरी माया

विस्तारकर कृष्ण भगवान् को मारना चाहा; परन्तु परिणाम उलटा हुआ। वे सभी मारे गये और कृष्णजी सकुशल गोकुल मे रहकर रास-विलास करते रहे।

बड़े होने पर श्रीकृष्ण भगवान् ने मथुरा जाकर कस को मारा; वसुदेव और देवकी को कैद से छुड़ाया और फिर गोपी ग्वालों को विरह-विह्वल छोड़कर वह गोकुल तज द्वारका मे जा बसे।

भगवान् ने भाद्र कृष्ण अष्टमी को जन्म धारण करके दुष्टो का संहार किया और भक्तो की रक्षा की थी। इसीसे उस दिन श्रीकृष्ण-जन्म का उत्सव मनाया जाता है।

महालक्ष्मी-पूजन

महालक्ष्मी के पूजन का अनुष्ठान भादों सुदी अष्टमी से आरम्भ होकर आश्विन कृष्णा अष्टमी को पूर्ण होता है। कोई-कोई स्त्री पण्डित को कच्चा सूत देती हैं। पण्डित गण्डा बनाता है। कोई अपना गण्डा आप बना लेती हैं। गण्डा के सूत के सोलह तागे होते है और उसमें सोलह गाँठें लगाई जाती हैं। भादों की अष्टमी को जिस दिन लक्ष्मी-पूजन का अनुष्ठान आरम्भ होता है, स्त्रियाँ नदी या तालाब में स्नान करने जाती हैं। वहाँ सधवा स्त्रियाँ चालीस लोटे जल अपने सिर पर डालती हैं और उतनी ही अँजुली जल सूर्य को अर्घ देती हैं। परन्तु विधवा स्त्रियाँ केवल सोलह लोटा जल सिर पर डालती हैं, और दूब सहित अँजुली से सोलह अँजुली जल सूर्य्य को अर्घ देती हैं। इस प्रकार स्नान के बाद घर आकर शुद्ध जगह में पटा रख उस पर गण्डा रख-कर लक्ष्मीजी का आह्वान करती हैं, गण्डे का पूजन करती है, होम करती हैं और सोलह दिन तक नित्य सोलह बोल की कहानी कहा करती हैं। कहानी इस प्रकार है:—

"अमोती दमोती रानी, पोला परपाटन गाँव, मगरसेन राजा, बंभन बरुआ, कहे कहानी, सुनो हो महालक्ष्मीदेवी रानी, हमसे कहते तुमसे सुनते सोलह बोल की कहानी।" इस कहानी को सोलह बार कहकर अक्षत छोड़े जाते हैं।

कुवार बदी अष्टमी को जब महालक्ष्मी का पूजन होता है, तब सोलह प्रकार का पकवान बनाया जाता है। मिट्टी का हाथी पूजा जाता है। उसीके पास वह गण्डा भी रख दिया जाता है। अधिकांश पण्डित विधिवत् इस पूजन को करवाते है और लक्ष्मीजी की पौराणिक कथा कही जाती है। जहाँ कही पण्डित नहीं पहुँच सकते, वहाँ स्त्रियाँ नीचे लिखी कथा पूजन के अन्त मे कहती हैं—

हाथी की कथा

एक राजा के दो रानियाँ थीं। एक के सिर्फ एक ही लड़का था और दूसरी के बहुत से लड़के थे। महालक्ष्मी-पूजन की तिथि आई। छोटी रानी के बहुत से लड़कों ने एक-एक लोंदा मिट्टी का हाथी बनाया तो बड़ा भारी हाथी बन गया। रानी ने उस हाथी की विधिवत् पूजा की। परन्तु दूसरी रानी जिसका एक ही लड़का था, चुपचाप सिर नीचा किये बैठी थी। लड़के ने आकर पूछा—"माँ! क्यों उदास बैठी है?" माँ ने कहा—"तुम थोड़ी सी मिट्टी लाओ, तो मै एक हाथी बनाकर पूजा कर लूँ। देखो तुम्हारे भाइयों ने कितना बड़ा हाथी बनाया है।" इस पर इकलौते बेटे ने कहा—"तुम पूजन की सामग्री इकट्ठी करो, मै तुम्हारी पूजा के लिये सजीव हाथी ले आता हूँ।"

निदान वह राजा इन्द्र के यहाँ गया और उसने कहा—"मेरी माता को पूजन के लिये थोड़ी देर के लिये आप अपना हाथी दे

दीजिये।" इन्द्र ने कहा—"ले जाओ।" लड़के ने कहा—"ऐसा नहीं। हाथी को दलबल समेत जाना चाहिये।" इन्द्र ने आज्ञा दी कि दलबल समेत ऐरावत जाकर इस लड़के की माँ की पूजा करा आये।"

इस प्रकार इकलौता लड़का अपनी माता के पूजन के लिये इन्द्र का हाथी ले आया। माता ने बड़े प्रेम से पूजन किया और कहा—"क्या करे किसी के सौ साठ। मेरा एक पुत्र पुजावे आस।"

गाजबीज की पूजा

भाद्र शुक्ला द्वितोया को अधिकांश गृहस्थो के घर बापू को पूजा होती है। यह बापू को पूजा असल मे कुल-देवता को पूजा है। इस पूजा मे कच्ची रसोई बनाकर बापू देव को भोग लगाया जाता है। फिर सब उसी प्रसाद को पाते है। यह प्रसाद प्रायः उन्हीं लोगों को दिया जाता है, जो एक कुल गोत्र के होते है।

दोपहर को बापू की पूजा के बाद (ख़ासकर कायस्थ लोगों मे) लड़के की माँ दीवार मे गाजबीज की रचना करती है। एक मढ़ी बनाकर उसमे एक बालक बिठाया जाता है और एक दूसरा बालक वृक्ष के नीचे खड़ा दिखलाया जाता है। मढ़ी के ऊपर गाज का गिरना और वृक्ष का गाज से बचना भी दिखाया जाता है। इसको गाजबीज की पूजा कहते है। पूजा के बाद कथा होती है। वह इस प्रकार होती है :—

गाजबीज की कथा

एक समय बरसात के दिनो मे भादों सुदी द्वितीया को एक राजा का लड़का शिकार खेलने जङ्गल को गया। उसी जङ्गल मे एक गरीब ग्वालिन का लड़का गाये चराता था। दैवात् बड़े जोर से पानी बरसने लगा। तब राजा का लड़का हाथी से उतरकर जङ्गल मे एक मढ़ी बनी थी, उसमे चला गया। उसी समय मढ़ी

पर गाज गिरी, जिससे मढ़ी तो फट गई, परन्तु राजा का लड़का बिलकुल लापता हो गया।

गरीब लड़का जो गायें चराता था, उसकी माता नित्य एक रोटी गाय या बछिया को खिलाती थी या किसी भूखी-दूखी क्वारी कन्या को दिया करती थी। वह लड़का जिस पेड़ के नीचे खड़ा था, उसपर गाज गिरने आती, परन्तु माता की दी हुई रोटी उसपर इस तरह छा जाती थी कि गाज वृक्ष तक पहुँच ही नहीं सकती थी। कुछ देर मे बर्षा बन्द हुई और लड़का आनन्द से अपने घर चला गया।

राजा के सिपाही कुँवर को खोजते हुए उसी जङ्गल में आये, जहाँ यह घटना हुई थी। वहाँ जिन लोगों ने यह सब हाल आँखों देखा, उन्होने कह सुनाया कि गरीब का लड़का तो बच गया, परन्तु राजा का लड़का मारा गया है। यह समाचार पाकर राजा के मन में बड़ा दुःख हुआ कि मै इतना पुण्य-धर्म करता हूँ, फिर भी मेरा लड़का मर गया और गरीबिनी स्त्री जो एक रोटी रोजाना देती है, उसका लड़का केवल रोटी की बदौलत बच गया।

वह उसी क्षोभ में मलिन-मन हो रहा था। तब राजा के गुरु ने आकर समझाया—"राजन्! आप जो पुण्य-धर्म करते हैं, वह अभिमानपूर्वक करते हैं। इसी कारण वह क्षय होता जाता है। परन्तु गरीबिनी स्त्री जो कुछ करती है, श्रद्धापूर्वक करती है।"

राजा ने गुरु के चरणों मे दण्डवत् करके सन्तोष किया और आगे के लिये अमूल्य शिक्षा लाभ की। उसने उसी समय आज्ञा

दो कि अब से आज के दिन व्रत रहकर गाजबीज की पूजा की जाया करे। राजा-रानी ने खुद व्रत किया और पूजन किया। तभी से यह गाजबीज की पूजा चली है।

ऋषि-पञ्चमी

भाद्र पद शुक्ला पञ्चमी को ऋषि-पञ्चमी कहते हैं। यह व्रत प्रायः स्त्रियों ही का है। किसी-किसी दशा में पुरुष भी अपनी स्त्री के लिये इस व्रत को कर सकता है।

व्रत करनेवाली को चाहिये कि वह भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी को मध्याह्न के समय स्वच्छ जल वाली नदी या ताल पर जाकर प्रथम १०८ अथवा ८ अपामार्ग की दातुन करे और फिर मृतिका-स्नान के पश्चात् पंचगव्य पान करे। पुरुष हो, तो हवन करके पञ्च-गव्य पान करे। स्त्री हो तो केशव आदि विष्णु के नामों को जपकर पञ्च-गव्य लेवे। तत्पश्चात् स्नान करके प्रथम अपना नित्यकर्म करे। इस विधि से स्नान करके, घर पर आकर उपवास करने वाली खुद अपने हाथ से पूजा के स्थान को गोबर से चौकोर लीपे। फिर उसी पर अनेक रंगों से सर्वतोभद्र मण्डल बनाकर मिट्टी अथवा ताँबे का घड़ा उस पर रक्खे और उसको गले तक कपड़े से ढँक दे। घट के ऊपर ताँबा अथवा बाँस के पात्र में जौ भर-कर और उसमें पंचरत्न, फूल, गन्ध और अक्षत रखकर वस्त्र से ढँक दे। उसी स्थान पर अष्टदल कमल लिखकर सप्त ऋषियों की पूजा करे। आवाहन से लेकर ताम्बूल पर्यन्त षोड़शोपचार से पूजन करने के अनन्तर पूजा का पक्कान्न ब्राह्मण को दान करे और आप ऋषि-अन्न का भोजन करे।

पहली कथा

विदर्भ देश मे एक उत्तंक नामक ब्राह्मण रहता था। पातिव्रत-धर्म मे अग्रगण्या उसकी स्त्री का नाम सुशोला था। उस ब्राह्मण के घर मे केवल दो सन्तानें थीं—एक कन्या और एक पुत्र। पुत्र परम्परागत संस्कारों के कारण थोड़ी ही उम्र मे सम्पूर्ण वेद-शास्त्रो का ज्ञाता हो गया था। यद्यपि उसकी बहन भी बहुत सुशीला थी और अच्छे कुल मे व्याही थी, किन्तु किसी पूर्व पाप के कारण वह विधवा हो गई थी। उसी दुःख से संतप्त वह ब्राह्मण अपनी स्त्री और कन्या-सहित गंगा के किनारे पर वास करने लगा और वहाँ धर्म-चर्चा करते हुए काल बिताने लगा। कन्या अपने पिता की सेवा-सुश्रूषा करती थी और पिता अनेक ब्रह्मचारियों को वेद पढ़ाता था। एक दिन सोती हुई कन्या के शरीर मे अकस्मात् कीड़े पड़ गये। कन्या ने अपनी दशा देखकर माता से कहा। माता ने कन्या के इस दुःख से दुखी होकर बहुत पश्चात्ताप किया और उसने पति को सब वृत्तान्त सुनाकर पूछा—"हे भगवन्! मेरी इस परम साध्वी कन्या की यह दशा क्योंकर होगई?"

उत्तंक ने प्रथम तो समाधिस्थ होकर इस घटना के कारण का विचार किया और स्त्री को उत्तर दिया कि पूर्वजन्म मे यह कन्या ब्राह्मणी थी। इसने रजस्वला अवस्था मे अपने बरतनों का स्पर्श किया। इसी पाप के कारण इसके शरीर मे कीड़े पड़

गये हैं। धर्म-शास्त्र मे लिखा है कि रजस्वला स्त्री प्रथम दिन चाण्डालिनी के समान, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी के समान और तीसरे दिन धोबिनी के समान अपवित्र रहती है। चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होती है। इसके अतिरिक्त इस कन्या ने इसी जन्म मे एक और भी अपराध किया है। वह यह कि इसने स्त्रियों को ऋषि-पञ्चमी का व्रत करते देखकर उनकी अवहेलना की। अतः इसके शरीर में कीड़े पड़ने का एक यह भी कारण है। उक्त व्रत की विधि को देखने के कारण ही इसने ब्राह्मण-कुल मे जन्म पाया है; अन्यथा यह चाण्डाल के घर जन्म लेती। हे प्रिये! ऋषि-पञ्चमी का व्रत सब व्रतों मे प्रधान है, क्योंकि इसीके प्रभाव से स्त्री सौभाग्य-सम्पन्न रहती है और रजस्वला होने की अवस्था मे अज्ञानपूर्वक होनेवाले स्पर्शादि दोषों से मुक्त हो जाती है।

दूसरी कथा

सत्ययुग मे, विदर्भ देश मे प्रसेनजित नामक एक राजर्षि राज करता था। उसके राज मे वेद-वेदाङ्ग का ज्ञाता सुमित्र नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह खेती करके अपना निर्वाह करता था। जयश्री नामकी उसकी स्त्री भी खेती के काम मे उसकी सहायक रहती थी। किसी समय वह स्त्री भी रजोवती होकर अज्ञात अवस्था मे गृह-कार्य करती रही और ब्राह्मणों को भी स्पर्श करती रही। समय पाकर दैवयोग से उन दोनों का एक साथ ही प्राणान्त हुआ। दूसरे जन्म मे स्त्री ने कुत्ती का जन्म पाया और ब्राह्मण ने बैल का।

ब्राह्मण के पुत्र का नाम सुमति था। वह भी अपने पिता की तरह वेद-वेदाङ्ग का ज्ञाता तथा ब्राह्मण और अतिथि का पूजक था। उसके माता-पिता, कुत्ती और बैल योनि मे उसी के घर मे रहते थे। एक समय सुमति ने अपने माता-पिता का श्राद्ध किया। सुमति की स्त्री ने ब्राह्मणों के भोजन के लिये जो खीर बनाई थी, उसमे अकस्मात् एक सर्प विष उगल गया। इस घटना को कुत्ती ने स्वयं देखा था। अतः उसने यह विचार कर कि इस खीर के खाने वाले ब्राह्मण मर जाँयगे, खीर को छू लिया। इससे क्रुद्ध होकर सुमति की स्त्री ने कुत्ती को जलती हुई लकड़ी से मारा और उसने सब बरतन पुनः माँजकर फिर से खीर बनाई। जब सब ब्राह्मण भोजन कर चुके, तो उनका जो जूठन बचा, उसे सुमति की स्त्री ने पृथ्वी मे गाड़ दिया। इस कारण कुत्ती उस दिन भूखी ही रही।

उसी घर में बँधे हुए बैल से रात्रि मे कुत्ती ने सब व्यवस्था वर्णन की। वह बोली—"क्या करूँ, भूख के मारे मेरी कमर टूटी जाती है।" तब बैल बोला—"मुझको भी आज सुमति ने हल मे जोता था और मुँह भी बाँध दिया था, जिससे मै भी तृण नहीं चर सका।" इन दोनों के भूखे रहने के कारण सुमति का श्राद्ध करना व्यर्थ हो हुआ। सुमति पशु-पक्षियों की भाषा समझता था। अस्तु; वह अपने माता-पिता की स्थिति को जानकर ऋषि-मुनियो के आश्रमों पर दौड़ा गया और उसने उनसे अपने माता-पिता के पशुयोनि मे जन्म पाने का कारण पूछा। ऋषियों ने उन दोनों के पूर्व-जन्म के पापों का हाल कह सुनाया और यह भी समझाया कि यदि

तुम स्त्री-पुरुष दोनों ऋषि-पञ्चमी का व्रत करके विधिपूर्वक उद्यापन करोगे और उस दिन बैल की कमाई की कोई वस्तु न खाओगे तो अवश्य ही तुम्हारे माता-पिता की मुक्ति होगी। ऋषि-पञ्चमी के व्रत में कश्यप, अत्रि, भारद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और सपत्नीक वशिष्ठ, इन सात ऋषियों की पूजा करने का विधान है।

सुमति ने माता-पिता की मुक्ति के निमित्त जिस प्रकार से ऋषियों ने बतया था, उसी विधि से ऋषि-पञ्चमी का व्रत किया। अतः ऋषि-पञ्चमी के व्रत के कारण सुमति के माता-पिता मुक्ति को प्राप्त हो गये।

गणेश-चतुर्थी

भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को गणेश-चतुर्थी करते है। प्रातःकाल स्नानादि नित्यकर्म करके पूजन के समय प्रथम सोने को या ताँबे को या मिट्टी की अथवा गौ के गोबर की गणेश-प्रतिमा बना ले। फिर कोरे घट मे जल भरकर उसके मुख पर नवीन वस्त्र बिछाकर उस पर गणेशजी की प्रतिमा स्थापित करे। तब षोड़शोपचार से विधिवत् पूजन करे। पूजन के पूर्व गणेशजी का ध्यान करना चाहिये।

तत्पश्चात् आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध और पुष्प आदि से पूजन करके पुनः अङ्ग-पूजा करनी चाहिये। अंग-पूजा मे पाद, जंघा, उरु, कटि, नाभि, उदर, स्तन, हृदय, कण्ठ, स्कन्ध, हाथ, मुख, ललाट, शिर और सर्वाङ्ग इत्यादि अंगों का पूजन करे तथा धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल और दक्षिणा के पश्चात् आरती करे और नमस्कार करे। इस पूजा मे २१ लड्डू भी रखना चाहिये। उनमे से पाँच तो गणेश-प्रतिमा के आगे रक्खे। पाँच ब्राह्मणो को देने के लिये रक्खे। जो ब्राह्मणों को देने के है, दक्षिणा सहित श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को दे। यह क्रिया चतुर्थी के मध्याह्न में करने की है। रात्रि मे जब चन्द्रमा का उदय हो जाय, तब चन्द्रमा का यथा-विधि पूजन करके अर्घ प्रदान करे। तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराकर मौन होकर स्वयं लड्डुओं का भोजन

करे। फिर वस्त्र से आच्छादित घट और दक्षिणा-सहित गणेश-मूर्ति को आचार्य को देते हुए गणेशजी का विसर्जन करे।

कथा

एक समय महादेवजी स्नान करने के लिये कैलाश पर्वत से भोगावती पुरी को पधारे। पीछे से अभ्यंग-स्नान करते हुए पार्वती ने अपने शरीर के मल से एक पुतला बनाया और जल में डालकर उसको सजीव किया। मल से बने हुए उस पुत्र को पार्वती ने आज्ञा दी—"बेटा! तुम मुद्गर को लेकर द्वार पर बैठ जाओ। यहाँ भीतर कोई भी पुरुष न आने आवे।"

जब भोगावती से स्नान करके श्रीशिवजी वापस आये और पार्वती के पास भीतर जाने लगे, तो उक्त बालक ने उनको रोक दिया। इससे कुपित होकर महादेवजी ने बालक का सिर काट डाला और आप भीतर चले गये। पार्वती ने महादेव को कुपित देखकर विचार किया कि कदाचित् भोजन में विलम्ब हो जाने के कारण ही शङ्कर को क्रोध आ गया है। इस कारण उन्होंने तुरन्त ही भोजन तैयार करके दो थालों में परोस दिया और शिवजी को भोजन करने के लिए बुलाया। दो पात्रों में भोजन परोसा देखकर शिवजी ने पूछा—"यह दूसरा पात्र किसके लिये है?"

तब पार्वती ने प्रार्थनापूर्वक कहा—"यह पात्र मलजन्य मेरे तथा आपके पुत्र गणेश के लिये है।"

यह सुनकर महादेवजी बोले—"मैंने तो उस बालक का सिर काट डाला है।"

इस पर पार्वतीजी अत्यन्त व्याकुल होकर बोलीं—"आप उसको अभी सजीव कीजिये।"

पार्वती को प्रसन्न करने के लिये शिवजी ने एक हाथी के बच्चे का सिर काटकर बालक के धड़ से जोड़ दिया और उसे सजीव कर दिया। इस प्रकार पार्वती अपने पुत्र गणेश को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने पति और पुत्र दोनो को भोजन कराकर पीछे आप भी भोजन किया। यह घटना भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को हुई थी।

दूसरी कथा

एक समय श्रीशङ्करजी कैलाश छोड़कर पार्वती सहित नर्मदा के किनारे पहुँचे। वहाँ एक अत्यन्त रमणीक स्थान देखकर पार्वती ने शिवजी से कहा—"भगवन्, यहाँ मेरी आपके साथ चौपड़ खेलने की इच्छा है।"

शिवजी बोले—"हम तुम तो खेलने वाले हुए; परन्तु हार-जीत का साक्षी भी तो कोई होना चाहिये।" पार्वती ने पास मे पड़े घास के तिनकों से मनुष्य-आकृति बनाकर उसे सजीव कर दिया और उससे कहा—"बेटा! हम दोनो पासा खेलते है। तुम हमारी जय-पराजय के साक्षी होकर खेल के अन्त मे बतलाना कि हम दोनो मे से किसकी जीत हुई?"

खेल में पार्वती को तीन बार जय हुई और शंकर तीनों बार हारे। परन्तु अन्त में जब बालक से पूछा गया तो उसने शिवजी की जीत और पार्वती की हार बतलाई। उसकी इस दुष्टता पर कुपित होकर पार्वतीजी ने उसे शाप दिया—"तूने सत्य बात के कहने में प्रमाद किया। इस कारण तू एक पैर से लँगड़ा होगा और सदैव यहाँ इस कीच में पड़ा रहकर दुःख पाता रहेगा।"

माता के शाप को सुनकर बालक ने प्रार्थना की—"माता! मैंने कुटिलता से ऐसा नहीं किया। केवल बालकपन से ऐसा किया है। अतः मैं सर्वथा क्षन्तव्य हूँ।"

तब पार्वती ने दयालु होकर कहा—"जब इस नदी-तट पर नाग-कन्यायें गणेश-पूजन करने आयेंगी, तब तू उनके उपदेश से गणेश-व्रत करके मुझको प्राप्त करेगा।"

यह कहकर पार्वतीजी हिमालय को चली गईं।

एक वर्ष व्यतीत होने पर नाग-कन्यायें गणेशजी का पूजन करने के लिए नर्मदा-तट पर गईं। उस समय श्रावण का महीना था। नाग-कन्याओं ने स्वयं गणेश-व्रत किया और उस बालक को भी पूजा की विधि बताई। नाग-कन्याओं के चले जाने पर जब उस बालक ने २१ दिन पर्यन्त गणेश-व्रत किया, तब गणेश-जी ने प्रकट होकर कहा—"मैं तुम्हारे इस व्रत से अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूँ। अतः जो इच्छा हो सो वर माँगो।"

इस पर बालक बोला—"मेरे पाँव मे शक्ति आ जाय। जिससे मैं कैलाश पर चला जाऊँ और वहाँ माता-पिता मुझ पर प्रसन्न हो जायँ। बस, यही वरदान माँगता हूँ।"

गणेशजी बालक की प्रार्थना सुनकर और 'तथास्तु' कहकर अन्तर्द्धान हो गये। बालक शीघ्र ही कैलाश पर पहुँचकर श्री शिवजी के चरणों पर जा गिरा। महादेव जी ने पूछा—"त्रिलोचन! तू ने ऐसा क्या उपाय किया जिससे तू पार्वतीजी के शाप से मुक्त होकर यहाँ तक आ पहुँचा? यदि इस प्रकार का कोई व्रत हो तो मुझे भी बतला कि जिसे करके मै भी पार्वती को प्राप्त करूँ। क्योंकि पार्वती उस दिन क्रुद्ध होकर चली गईं। तब से आज तक मेरे समीप नही आईं।"

त्रिलोचन की बताई विधि से श्रीमहादेवजी ने भी २१ दिन तक गणेश-व्रत किया, जिससे पार्वती के अंतःकरण मे आप ही शिवजी से मिलने को उत्कण्ठा हुई। अतः वे अपने पिता हिमांचल से विमान का प्रबन्ध कराकर शीघ्र ही शिवजी से आ मिली। उन्होने शिवजी से पूछा—"आपने ऐसा क्या उपाय किया, जिससे मुझको आप से मिलने को प्रेरणा उत्पन्न हुई?"

तब शिवजी ने त्रिलोचन के कहे हुए व्रत को बतलाया।

अपने पुत्र षड़ानन (स्वामिकार्तिक) से मिलने के लिए जब पार्वतीजो ने २१ दिन तक प्रतिदिन २१ दूर्वा, २१ पुष्प और २१ लड्डुओं से गणेश-पूजन किया, तब इक्कीसवे दिन स्वामिकार्तिक आप ही पार्वती से आ मिले। स्वामिकार्तिक ने भी माता के मुख

से सुनकर यह व्रत किया, तो उन्होंने समस्त सेनानियों की प्रमुखता का महत्त्वपूर्ण पद पाया। यही व्रत स्वामिकार्तिक ने अपने मित्र विश्वामित्र को भी बताया। विश्वामित्र ने जब यह व्रत किया तो गणेशजी प्रकट हुए और बोले—"वर माँगो!" विश्वामित्र ने यह वर माँगा कि "मैं इसी जन्म में इसी शरीर से ब्रह्मर्षि हो जाऊँ।" गणेशजी ने वरदान देकर उनकी इच्छा भी पूर्ण की।

सिद्धि-विनायक-व्रत

गणेशजी के सम्पूर्ण व्रतों में यही व्रत प्रधान है। यह व्रत भाद्र-शुक्ला चतुर्थी को किया जाता है। पूजन के आरम्भ मे सङ्कल्प करने के बाद गणेशजी की स्थापना, प्रतिष्ठा और ध्यान करना चाहिये। ध्यान के पश्चात् आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ, मधुपर्क, आचमन, पञ्चामृत, स्नान, शुद्धोदक स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत सिंदूर भूषण और चन्दन आदि से पूजनकर पुनः अङ्ग-पूजन करे। तत्पश्चात् गूगुल, धूप, दीप, नैवेद्य आचमन, फूल, ताम्बूल, भूषण और दूर्वा आदि अर्पण करके नमस्कार करे और २१ पुवा बनाकर गणेश-प्रतिमा के पास रक्खे। उनमे से १० पुआ ब्राह्मण को दे। एक गणेश-प्रतिमा के पास रहने दे और १० आप भोजन करे।

वैसे तो प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को गणेश-व्रत होता है; परन्तु माघ, श्रावण, मार्गशीर्ष और भाद्रपद इन महीनो मे गणेश-व्रत करने का विशेष माहात्म्य है। उक्त चार महीनों मे कभी भी जब हृदय मे गणेशजी की भक्ति उत्पन्न हो, तब शुक्ल चतुर्थी को प्रातःकाल सफेद तिलो के उबटन से स्नान करके मध्यान्ह में गणेश-पूजन करना चाहिये। पहले एकदन्त, शूर्पकर्ण गजमुख, चतुर्भुज पाशांकुश धारण करने वाले गणेशजी का ध्यान करे। तदनन्तर पञ्चामृत, गन्ध, आवाहन और पाद्यादि करके दो लाल वस्त्रो का दान करना चाहिये। पुनः ताम्बूल पर्यन्त

पूजन समाप्त करके २१ दूर्वाओं को हाथ में लेकर दो-दो दल दूर्वाओं से गणेश के एक-एक नाम का उच्चारण करे। पूजा के समय घी के पके हुए २१ मोदक गणेशजी के पास रक्खे। पूजन की समाप्ति पर १० मोदक ब्राह्मण को दे, १० अपने लिये रक्खे और एक प्रतिमा के पास रहने दे। गणेश-प्रतिमा को दक्षिणा समेत ब्राह्मण को दान करे। नैमित्तिक पूजन करने के बाद नित्य पूजन भी करे और तत्पश्चात् ब्राह्मण को भोजन कराकर आप भोजन करे।

इसी भादों मास की शुक्ला चतुर्थी मे चन्द्र-दर्शन का निषेध है। लोक-प्रसिद्ध है कि चौथ का चाँद देखने से झूठा कलङ्क लगता है। यदि दैवात् चौथ का चाँद देख ले, तो नीचे लिखी कथा कहने से उसका दोष दूर होता है :—

कथा

एक समय सनत्कुमारों से नन्दिकेश्वर ने कहा—"किसी समय चौथ के चन्द्रमा के दर्शन करने से भगवान् श्रीकृष्णजी पर लाञ्छन लग गया था। वह इसी गणेश-व्रत के करने से नष्ट हुआ।"

नन्दिकेश्वर के ऐसे वचन सुनकर सनत्कुमारों ने अत्यन्त आश्चर्य मे होकर पूछा। "पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को कब और कैसे कलङ्क लगा? कृपया इस इतिहास का वर्णन कर हमारा सन्देह दूर कीजिये।"

यह सुनकर नन्दिकेश्वर बोले—"राजा जरासन्ध के डर से श्रीकृष्ण भगवान् समुद्र के बीच मे पुरी बसाकर रहने लगे। इसी पुरी का नाम द्वारकापुरी है। द्वारकापुरी के निवासी सत्राजित यादव ने श्री सूर्य भगवान् की आराधना की। जिससे प्रसन्न होकर सूर्य भगवान् ने उसको नित्य आठ भार स्वर्ण देने वाली स्यामन्तक नाम की एक मणि अपने गले से उतारकर दे दी। उस मणि को पाकर जब सत्राजित यादव समाज मे गया तो श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र ने उस मणि को प्राप्त करने की इच्छा की। परन्तु सत्राजित ने मणि को श्रीकृष्ण को न देकर उसे अपने भाई प्रसेनजित को पहना दिया।

एक दिन प्रसेनजित घोड़े पर सवार होकर वन मे शिकार खेलने चला गया। वहाँ एक सिंह ने उसे मारकर वह मणि उससे छीन ली परन्तु जाम्बवान् नामक रीछराज ने उस सिंह को मारकर वह मणि छीन ली और मणि को लेकर वह अपने विवर मे घुस गया।

जब कई दिन तक प्रसेनजित शिकार से वापस नहीं आया, तब सत्राजित को बड़ा दुःख हुआ। उसने सम्पूर्ण द्वारकापुरी मे यह बात प्रसिद्ध कर दी कि श्रीकृष्ण ने मेरे भाई को मारकर मणि ले ली है। इस लोकापवाद को मिटाने के लिए श्रीकृष्णजी बहुत से आदमियो सहित वन मे जाकर प्रसेनजित को खोजने लगे। उनको वनमे इस घटना के स्पष्ट चिह्न मिले कि प्रसेनजित को एक सिंह ने मारा है और सिंह को एक रीछ ने मार डाला है। रीछ के पद-

चिन्हों का अनुसरण करते हुए श्रीकृष्णजी एक गुफा के द्वारपर जा पहुँचे। वे उसी गुफ़ा को रीछ के रहने का घर समझकर उसमे पैठ पड़े। गुफ़ा के भीतर जाकर उन्होंने देखा कि जाम्बवान् का एक पुत्र और कन्या उस मणि से खेल रहे हैं।

श्रीकृष्ण को देखते ही जाम्बवान् ताल ठोककर उठ खड़ा हुआ। श्रीकृष्ण ने भी उसको युद्ध के लिये प्रचारा। दोनों में घोर युद्ध होने लगा। इधर भो कृष्ण के साथियों ने सात दिन तक उनकी राह देखी। जब वह न लौटे, तब वे लोग उनको मारा गया समझकर अत्यन्त दुःख और पश्चात्ताप करते हुए द्वारकापुरी को वापस चले आये।

इक्कीस दिन तक युद्ध करने के पश्चात् जब जाम्बवान् श्रीकृष्ण-जी को परास्त न कर सका तो उसके मन में यह धारणा उत्पन्न हुई कि हो न हो यही वह अवतार है जिसके लिये मुझको श्रीराम-चन्द्रजी का वरदान हुआ था। ऐसा निश्चय करके जाम्बवान् ने अपनी कन्या जाम्बवती श्रीकृष्णजी को व्याह दी और वह मणि भो दहेज मे दे दी। श्रीकृष्ण भगवान् ने द्वारका मे आकर स्यामन्तक मणि सत्राजित को दे दी, जिससे लज्जित होकर सत्राजित ने अपनी पुत्री सत्यभामा श्रीकृष्णजी को व्याह दी और जब वह मणि भो श्रीकृष्णजी को देने लगा तो उन्होंने उसके लेने से इन्कार कर दिया और कहा—"आप सन्तान-रहित हैं, इस कारण आपकी जो सम्पत्ति है, वह सब मेरी है। परन्तु इस समय आप मणि को अपने हो पास रखिये।"

कालान्तरसे, किसो आवश्यक कार्यवश श्रीकृष्णजी तो इन्द्र-प्रस्थ को चले गये। इधर अक्रूर तथा ऋतुवर्मा की सलाह से शतधन्वा नामक यादव ने सत्राजित को मारकर स्यामन्तक मणि ले ली।

सत्राजित के मारे जाने का समाचार पाकर श्रीकृष्णजो तुरन्त हो इन्द्रप्रस्थ से द्वारका चले आये, और शतधन्वा को मारकर उससे मणि छीन लेने को तैयार हुए। उनके इस काम मे बलराम-जी भी योग देने पर सन्नद्ध हुये। यह समाचार पाकर शतधन्वा अक्रूर को मणि देकर द्वारका से भागा। परन्तु थोड़ी ही दूर पर कृष्ण ने उसको जा पकड़ा और मार डाला। फिर भी मणि उनके हाथ न लगी। इतने मे बलरामजी वहाँ पहुँच गये। श्रीकृष्णजी ने कहा "भैया! मणि तो इसके पास नहीं मिली।" यह सुनकर बलरामजी अत्यन्त क्रोधपूर्वक बोले—"कृष्ण, तू सदैव का कपटी तथा लोभी है। अब मैं तेरे पास न रहूँगा।"

यह कहकर वह विदर्भ देश को चले गये। द्वारका मे लौटकर आने पर लोगों ने श्रीकृष्ण का बड़ा अपमान किया। सर्व साधा-रण मे यह अफवाह फैल गई कि श्रीकृष्ण ने लालच वश अपने भाई को भी त्याग दिया।

श्रीकृष्ण एक दिन इसी चिन्ता मे व्यस्त थे कि आखिर यह झूठा कलङ्क मुझको क्यो लगा। उसी समय दैवात् नारदजी वहाँ आ गये और वह श्रीकृष्णजी से बोले—"आपने भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी के चन्द्रमा के दर्शन किये थे। इसी कारण यह लाञ्छन आप को लगा है।"

सिद्धि-विनायक-व्रत

श्रीकृष्णजी ने पूछा—"चौथ के चन्द्रमा को ऐसा क्या हो गया ? जिसके कारण उसके दर्शन-मात्र से मनुष्य को कलङ्क लगता है ।"

नारदजी बोले—एक समय ब्रह्माजी ने चौथ को गणेश का व्रत किया था, जिससे गणेशजी प्रकट हो गये । ब्राह्मणों ने गणेशजी से यह बरदान माँगा कि मुझको सृष्टि की रचना करने मे मोह न हो। जब गणेशजी 'एवमस्तु' कहकर जाने लगे, तब उनके विकट रूप को देखकर चन्द्रमा उनका उपहास करने लगा । इससे अप्रसन्न होकर गणेशजी ने चन्द्रमा को शाप दिया कि आज से तुम्हारे मुख को कोई कभी नही देखेगा । यह कहकर गणेशजी तो अपने धाम को चले गये और शाप के कारण चन्द्रमा मानसरोवर की कुमुदिनियों मे जाकर छिप गया । चन्द्रमा के बिना लोगों को कष्ट में देखकर तथा ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर सब देवताओं ने चन्द्रमा के निमित्त गणेशजी का व्रत किया । देवताओ के व्रत से प्रसन्न होकर गणेशजी ने वरदान दिया कि अब चन्द्रमा शाप-मुक्त हो जायगा । परन्तु फिर भी वर्ष मे एक दिन भाद्रपद शुक्ला चतर्थी को जो कोई भी मनुष्य चन्द्रमा का दर्शन करेगा, उसको चोरी आदि का झूठा कलङ्क अवश्य लगेगा । हाँ, परन्तु जो मनुष्य प्रत्येक द्वितीया के चन्द्रमा का दर्शन करता रहेगा, उसको लाञ्छन नही लगेगा । कदाचित् नियमित दर्शन न करने वाला पुरुष चौथ के चन्द्रमा को देख भी ले, तो उसको मेरा चतुर्थी का सिद्धि-विनायक व्रत करना चाहिए । उससे उसके दोष की निवृत्ति हो जायगी ।

यह सुनकर सब देवता अपने-अपने स्थान को चले गये और चन्द्रमा भी मानसरोवर से चन्द्रलोक मे आ गया। अतः इसी चन्द्रमा के दर्शन के कारण आप पर यह व्यर्थ आरोप हुआ है।"

कपर्दि-विनायक-व्रत

श्रावण मास को शुक्ला चतुर्थी से लगाकर भादों को शुक्ला चतुर्थी तक जो मनुष्य एक बार भोजन कर के एक मास पर्यन्त कपर्दि-गणेश का व्रत करता है, उसके सब काम सिद्ध होते हैं। पूजा को विधि प्रथम कहे हुए व्रतों के अनुसार है। इसमे विशेषता केवल इतनो है कि पूजन के पश्चात् २८ मुट्ठी चावल और कुछ मिठाई ब्रह्मचारी को दान करना चाहिये।

कथा

एक समय श्री महादेवजी पार्वती के साथ चौपड़ खेल रहे थे, जिसमे पार्वतीजी ने शिवजी के आयुधादि सम्पूर्ण पदार्थों को जीत लिया। प्रसन्नचित्त महादेव ने जीते हुए पदार्थों मे से केवल गजचर्म वापस माँगा, परन्तु पार्वती ने नहीं दिया। महादेवजी के बहुत हास्यपूर्ण अनुनय विनय पर भो जब पार्वती ने ध्यान नहीं दिया, तब वह क्रोध के आवेश मे बोले—"पार्वती! अब मै इक्कोस दिन तक तुमसे नही बोलूँगा।"

ऐसा कहकर शिवजो किसी अन्य स्थान को चले गये। पार्वतोजी महादेवजी को खोजती हुई किसी घने वन मे चली गई। वहाँ उन्होंने कुछ स्त्रियों को व्रत और पूजन करते देखा। पार्वतीजो के पूछने पर उन्होंने बताया कि यह कपर्दि-विनायक का व्रत है।

जिस प्रकार वे स्त्रियाँ व्रत कर रही थी, उसी प्रकार से पार्वतीजी ने भी व्रत करना आरम्भ किया। उन्होंने केवल एक ही दिन व्रत किया था कि महादेवजी उसी स्थान पर आ गये। शिवजी ने पार्वती से पूछा—"प्रिये, तुमने ऐसा कौन-सा व्रत किया? जिसके कारण मुझ ऐसे उदासीन का संकल्प भङ्ग हो गया।"

इस पर पार्वती ने शिवजी को कपर्दि-व्रत की विधि बताई। पुनः महादेव ने विष्णु को और विष्णु ने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने इन्द्र को और इंद्र ने राजा विक्रमार्क को यह व्रत बताया। राजा विक्रमार्क इस व्रत के प्रभाव को सुनकर जब घर पर गया, तब उसने अपनी रानी से कपर्दि-व्रत के अप्रतिम प्रभाव को वर्णन किया। भावी दुःख के कारण रानी ने राजा के इस कथन पर विश्वास नहीं किया, वरन् व्रत की बहुत कुछ निन्दा की। जिस से रानी के समस्त शरीर में कोढ़ हो गया। राजा ने उसी समय रानी से कहा—"तुम शीघ्र ही यहाँ से चली जाओ, नहीं तो मेरा सम्पूर्ण राज भ्रष्ट हो जायगा।"

तब रानी राजमहलों से निकलकर जंगल में ऋषि-मुनियों के आश्रम में चली गई और वहाँ ऋषि-मुनियों की सेवा करने लगी। जब सेवा करते-करते रानी को बहुत दिन हो गये तब सब, कहने लगे—"रानी! तुमने कपर्दि-विनायक का अपमान किया। अतः जब तक गणेशजी की पूजा न करोगी, तब तक तुम्हारा आरोग्य होना कठिन है।" महर्षियों के ऐसे वचन सुनकर रानी ने गणेश व्रत करना आरम्भ किया और व्रत को एक मास

पूरा होते-होते रानो का शरीर दिव्य कंचन के समान नीरोग हो गया। रानो बहुत दिनों तक उसी आश्रम में रहो।

एक समय पार्वती-सहित महादेवजी नादिया पर चढ़कर वन-मार्ग से चले जा रहे थे। मार्ग मे एक अति दुःखी ब्राह्मण को देखकर पार्वतीजी ने उससे पूछा—"हे विप्र, आप किस कारण से ऐसा विलाप कर रहे हैं?"

ब्राह्मण बोला—"देवि! यह सब दारिद्र्य की कृपा का फल है।" तब कृपालु देवी पार्वतो ने ब्राह्मण से कहा—"तुम राजा विक्रमार्क के राज मे चले जाओ। वहाँ एक वैश्य पूजन की सामग्रो देता है। उससे कपर्दि-विनायक गणेश का व्रत और पूजन करना। उसी से तुम्हारी दरिद्रता नष्ट हो जायगो और साथ ही तुम राजा विक्रमार्क के राजमंत्री हो जाओगे।" पार्वती की आज्ञा मानकर उक्त ब्राह्मण राजा विक्रमार्क के राज मे चला गया और विधिवत् विनायक का पूजन करने से थोड़े हो दिनों मे उस राजा का मंत्री हो गया।

किसो समय राजा विक्रमार्क वन-यात्रा करता हुआ उसी ऋषि-आश्रम मे जा पहुँचा, जहाँ उसको रानी रहती थी। रानी को नीरोग और दिव्य-देह देखकर उसे बड़ा आनन्द हुआ। वह रानी को साथ लेकर महलों को चला आया।

कपर्दि-विनायक का व्रत करने वाले व्यक्ति को चाहिये कि वह व्रत-काल के एक मास में इस कथा को पाँच बार श्रवण करे।

अनन्त-चतुर्दशी

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को यह व्रत होता है। इसमे स्नानादि के पश्चात अक्षत, दूर्वा तथा शुद्ध सूत से बने और हल्दी से रँगे हुये चौदह गाँठ के अनन्त को सामने रखकर हवन किया जाता है। तत्पश्चात् अनन्त देव का ध्यान करके शुद्ध अनन्त को अपनी दाहिनी भुजा मे बाँधते है। इस व्रत मे प्राय: एक वक्त अलोना (विशेषत: सिमई-युक्त) भोजन किया जाता है।

अनन्त देव के सम्बन्ध मे यह कथा लोक मे प्रचलित है कि। जिस समय युधिष्ठिर अपना सब राज-पाट हारकर वनवास कर रहे थे तो भगवान् कृष्ण उनसे मिलने आये। उनकी कष्ट-कथा सुनकर श्रीकृष्ण ने।उन्हे अनन्त व्रत करने की राय दी, जिसे करके वे अन्त मे कष्ट-मुक्त हो गये।

हरतालिका-व्रत

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की तीज हस्ति नक्षत्र-युक्त होती है। उस दिन व्रत करने से सम्पूर्ण फलों को प्राप्ति होती है। महादेव-जी ने पार्वतीजी से कहा था—"हे देवि! सुनो। पूर्व-जन्म में जिस प्रकार इस व्रत को तुमने किया, सो सब कथा मैं तुम्हारे सामने कहता हूँ।" तब पार्वतीजी बोलीं—"अवश्य हो हे प्रभु! मुझे वह कथा सुनाइये।" तब शिवजी बोले—"उत्तर दिशा में हिमालय नाम का पर्वत है। वहाँ गङ्गाजी के किनारे बाल्यावस्था मे तुमने बड़ी कठिन तपस्या की थी। बारह वर्ष पर्यन्त अर्ध-मुखी (उलटे) टँगकर केवल धूम्रपान पर रहीं। चौबीस वर्ष तक सूखे पत्ते खाकर रहीं। माघ के महीने में जल में वास किया और वैशाख मास मे पञ्चधूनी तपीं। श्रावण के महीने मे निराहार रहकर बाहर वास किया। तुमको इस प्रकार कष्ट सहते देखकर तुम्हारे पिता को बड़ा दुःख हुआ। उसी समय नारद मुनि तुम्हारे दर्शनों के लिए वहाँ गये। तुम्हारे पिता हिमालय ने अर्घ-पाद्यादि द्वारा विधिवत् पूजन करके नारद से हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे मुनिवर! किस प्रयोजन से आपका शुभागमन हुआ है, सो कृपाकर आज्ञा कीजिये?"

तब नारदजी बोले—"हे हिमवान्! मैं श्रीविष्णु भगवान् का भेजा हुआ आया हूँ। वे आपकी कन्या के साथ विवाह करना

चाहते है।" यह सुनकर हिमालय ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"यदि विष्णु भगवान् स्वयं मेरी कन्या के साथ विवाह किया चाहते हैं, तो इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" यह सुनकर नारदजी विष्णु-लोक मे गये और विष्णु भगवान् से बोले—"मैंने हिमालय की पुत्री पार्वती के साथ आपका विवाह निश्चय किया है। आशा है कि आप भी उसे स्वीकार करेंगे।"

इधर नारदजी के चले जाने पर हिमालय ने पार्वती से कहा—"हे पुत्री ! मैंने श्रीविष्णु भगवान् के साथ तुम्हारा विवाह निश्चय किया है।" पार्वती को पिता का यह वचन बाण के समान लगा। उस समय तो वह चुप रहीं। परन्तु पिता के पीठ फेरते ही अति दुखी होकर विलाप करनी लगी। पार्वती को अत्यन्त व्याकुल और विलाप करते हुए देखकर एक सखी ने कहा—"आप क्यों इतनी दुःखी हो रही हैं? अपने दुःख का कारण मुझसे कहिये। मै उसे दूर करने का उपाय करूँगी।" तब पार्वती बोलीं—"मेरे पिता ने विष्णु के साथ मेरा विवाह करना निश्चय किया है; परन्तु मैं महादेवजी के साथ विवाह करना चाहती हूँ, इसलिये अब मैं प्राण त्यागने के लिये उद्यत हूँ। तू कोई उचित सहायता दे।" तब सखी बोली—"प्राण त्यागने की कोई आवश्यकता नहीं। मै तुमको ऐसे गहन वन मे ले चलती हूँ कि जहाँ पिताजी को पता भी न मिलेगा।" ऐसी सलाह करके सखी श्रीपार्वतीजी को घोर सघन वन मे लिवा ले गई।

जब हिमालय ने पार्वती को घर में न पाया तो वह इधर-उधर खोज करने लगे, पर कहीं कुछ पता न चला। तब तो हिमालय को बड़ा सोच पड़ गया कि नारदजी से मैं इस लड़की के विवाह का वचन दे चुका हूँ। यदि विष्णु भगवान् ब्याहने आ गये, तो मैं क्या जवाब दूँगा। इसी चिन्ता और दुख से व्याकुल होकर वह मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े। अपने राजा की यह दशा देखकर सब पर्वतों ने कारण पूछा। तब हिमालय राजा ने कहा—"मेरी कन्या को न जाने कौन चुरा ले गया है।" यह सुनते ही समस्त पर्वतगण जहाँ-तहाँ जङ्गलों में राजकन्या पार्वती की खोज करने लगे।

इधर पार्वतीजी सखी-समेत नदी-किनारे एक गुफा में प्रवेश करके शिवजी का भजन-पूजन करने लगीं। भादों सुदी तीज को हस्ति नक्षत्र में पार्वतीजी ने बालू (रेत) का शिवलिङ्ग स्थापित करके, निराहार व्रत करते हुए पूजन आरम्भ किया। रात्रि को गीत-वाद्य (गाने-बजाने) सहित जागरण किया।

महादेवजी बोले—"हे प्रिये! तुम्हारे व्रत के प्रभाव से मेरा आसन डिग उठा। जिस जगह तुम व्रत-पूजन कर रही थीं, उसी जगह मैं गया और मैंने तुमसे कहा कि मैं प्रसन्न हूँ, वरदान मांगो।" तब पार्वती (तुम) ने कहा—"यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाना स्वीकार करें।" इस पर महादेवजी वरदान देकर कैलाश को चले गये।

सबेरा होते ही पार्वती ने पूजन की सामग्री नदी मे विसर्जन की, स्नान किया और सखो-समेत पारण किया। हिमालय स्वय कन्या को खोजते हुए उसी जगह जा पहुँचे। उन्होने नदी के तीर पर दो सुन्दर बालिकाओं को देखा और पार्वती के पास जाकर रुदन करते हुए पूछा—"तुम इस घोर वन मे कैसे आ पहुँचीं ?" तब पार्वती ने उत्तर दिया—"तुमने मुझको विष्णु के साथ विवाहने की बात कही थी, इसी कारण मैं घर से भागकर यहाँ चली आई हूँ। यदि तुम श्रीशिवजी के साथ मेरा विवाह करने का वचन दो तो मैं घर को चलूँ, अन्यथा मै इसी जगह पर रहूँगी।" इस पर हिमालय कन्या को सब प्रकार से सन्तुष्ट करके घर लिवा लाये और फिर कालान्तर से उन्होने विधिपूर्वक पार्वती का विवाह शिवजी के साथ कर दिया।

शिवजी बोले—"हे देवि ! जिस व्रत के करने से तुमको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है, सो मैं कथा कह चुका। अब यह भी जान लो कि इस व्रत को हरतालिका क्यों कहते है।" पार्वतीजी ने कहा—"हाँ प्रभु, अवश्य कहिये और साथ ही कृपा करके यह बतलाइये कि इस व्रत का क्या फल है, क्या पुण्य है और इसकी क्या विधि है ?"

यह सुनकर शिवजी बोले–"तुम (पार्वती) को सखी हरण कर के वन मे लिवा ले गई, तब तुमने व्रत किया–इसका (हरत-आलिका) हरतालिका नाम पड़ा। और इसका फल जो पूछा, सो सौभाग्य की चाहने वाली इस व्रत को करे। इसकी विधि यह है कि प्रथम घर को लीप-पोत कर स्वच्छ कर, सुगन्धि छिड़के, केले के वृक्ष-

पत्रादि के खम्भ आरोपित कर के तोरण।पताकाओं से मण्डप को सजाये, मण्डप की छत मे सुन्दर वस्त्र लगाये। शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग आदि बाजे बजाये और सुन्दर मङ्गल-गीत गाये। उक्त मण्डप मे पार्वती समेत बालुका (रेत) का शिव-लिग स्थापित करे। उसका षोड़शोपचार से पूजन करे। चन्दन, अक्षत, धूप, दीप से पूजन करके ऋतु के अनुकूल फल-मूल का नैवेद्य अर्पण करे। रात्रि भर जागरण करे। पूजा करके और कथा सुनकर यथाशक्ति ब्राह्मणों को दक्षिणा देवे। वस्त्र, स्वर्ण, गौ, जो कुछ बन पड़े, दान करे। यदि हो सके तो सौभाग्यवती स्त्रियों को सौभाग्यसूचक वस्तुएँ भी दान करे। हे देवि! इस विधि से किया हुआ यह व्रत स्त्रियों के सौभाग्य को देने और उसकी रक्षा करने वाला है। परन्तु जो स्त्री व्रत रखकर फिर मोह के वश हो भोजन कर लेवे, वह सात जन्म पर्यन्त बाँझ रहती है और जन्म-जन्मान्तर विधवा होती रहती है। जो स्त्री उपवास नहीं करती—कुछ दिन व्रत रहकर छोड़ देती है, वह घोर नर्क मे पड़ती है। पूजन के बाद सोने, चांदी या बाँस के बर्तन मे उत्तम भोज्य पदार्थ रखकर ब्राह्मणों को दान करे, तब आप पारण करे। हे देवि! जो स्त्री इस विधि से तीज का व्रत करती है वह तुम्हारे समान अटल सौभाग्य और सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होकर अन्त मे मोक्ष-पद लाभ करती है। यदि वृत न कर सके तो इस कथा के सुनने से ही अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है।"

सन्तान-सप्तमी-व्रत

भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को यह व्रत किया जाता है। इसे मुक्ता-भरण व्रत भी कहते हैं। यह व्रत मध्यान्ह तक होता है। मध्यान्ह को चौक पूरकर शिव-पार्वती की स्थापना करे और—"हे देव! जन्म-जन्मान्तर के पाप से मोक्ष पाने तथा खण्डित सन्तान-पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि के हेतु मैं मुक्ताभरण व्रत कर के आप का पूजन करता हूँ।" यह संकल्प करे। पूजन के लिये चन्दन, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, पुंगीफल, नारियल आदि सम्पूर्ण सामग्री प्रस्तुत रखे। नैवेद्य-भोग के लिये खीर-पूड़ी और खासकर गुड़ डाले हुए पुवे बनाकर तैयार रखे। रक्षा-बन्धन के लिये डोरा भी हो। कोई-कोई डोरे के स्थान में सोने-चाँदी की चूड़ी रखती हैं या दूब का डोरा कल्पित कर लेती हैं।

स्त्रियों को चाहिये कि वे यह संकल्प करें—"हे देव! मैं जो यह पूजा आपकी भेंट करती हूँ, उसे स्वीकार कीजिये।" इसी प्रकार शिवजी के सामने रक्षा का डोरा या चूड़ी रखकर और ऊपर कहे हुए क्रम से आवाहन से लेकर फूल-समर्पण तक पूजा अर्पणकर के तब नीराजन पुष्पांजलि और प्रदक्षिणा करे और नमस्कार तथा यह प्रार्थना करे—"हे देव! मेरी दी हुई पूजा को स्वीकार करते हुए मेरी बनी-बिगड़ी भूल-चूक माफ कीजिये।" तदनन्तर डोरे को शिवजी को समर्पण करके निवेदन करे—"हे प्रभु इस पुत्र-पौत्र-

वर्द्धनकारी डोरे को ग्रहण कीजिए।" उस डोरे को प्रार्थना-पूर्वक शिवजी से वरदान के रूप में लेकर आप धारण करे। फिर कथा सुने।

कथा

श्रीकृष्ण भगवान् राजा युधिष्ठिर से कथा-प्रसंग वर्णन करते हैं कि मेरे जन्म लेने से पहले एक बार मथुरा में लोमश ऋषि आये थे। मेरे पिता-माता वसुदेव-देवकी ने उनकी विधिवत् पूजा की। तब ऋषिवर ने उनको अनेक कथा सुनाई। फिर वह बोले—"हे देवकी! कंस ने तुम्हारे कई पुत्रों को जन्मते ही मरवा डाला है, इस कारण तुम पुत्रशोक से दुःखी हो। इस दुःख से मुक्ति पाने के लिये तुम मुक्ताभरण व्रत करो। जैसे राजा नहुष की रानी चन्द्र-मुखी ने यह व्रत किया और उसके पुत्र नहीं मरे, वैसे ही यह व्रत पुत्रशोक से तुम्हें मुक्त करेगा। इस के प्रभाव से तुम पुत्र-सुख को प्राप्त होगी, इसमें संशय नहीं।" तब देवकी ने पूछा—"हे ब्राह्मण! जो राजा नहुष की रानी चन्द्रमुखी थी, वह कौन थी और उसने कौन-सा व्रत किया? उस व्रत को कृपाकर विधिपूर्वक कहिये।" तब लोमशजी ने यह कथा कही:—

अयोध्या पुरी में नहुष नाम का एक प्रतापी राजा हो गया है। उसकी अति सुन्दरी रानी का नाम रूपवती था। उसी नगर में विष्णुगुप्त नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी सर्वगुण-सम्पन्ना स्त्री का नाम भद्रमुखी था। उक्त दोनों स्त्रियों में परस्पर

बड़ी प्रीति थी। एक समय वे दोनों सरयूजी मे स्नान करने गईं। वहाँ उन्होंने देखा कि और भी बहुत सी स्त्रियों ने स्नान किये और फिर वे मण्डल बाँधकर बैठ गईं। पुनः उन्होंने पार्वती-समेत शिवजी को लिखकर गन्ध, अक्षत, पुष्प, आदि से उनकी पूजा की। जब वे पूजन करके घर को चलने लगी, तब इन दोनों (रानी और ब्राह्मणी) ने उन के पास जाकर पूछा—"हे सखियो! यह तुम क्या कर रही हो?" उन्होंने उत्तर दिया—"हम गौरा-समेत शिवजी का पूजन कर रही थीं और उनका डोरा बाँधकर हमने अपनी आत्मा उन्हीं को अर्पण कर दी है। तात्पर्य यह कि हम लोगों ने यह संकल्प किया है कि जब तक जियेंगी यह व्रत करती रहेंगी। यह सुख-सन्तान बढ़ाने वाला मुक्ताभरण व्रत सप्तमी को होता है। हे सखियो! इस सुख-सौभाग्य-दाता व्रत को हम लोग करती हैं।"

स्त्रियों की बातें सुनकर रानी और उसकी सखी दोनो ने आजन्म सप्तमी का व्रत करने का संकल्प करके शिवजी के नाम का डोरा बाँध लिया। परन्तु घर पहुँचकर उन्होंने अपने किये हुए संकल्प को भुला दिया। परिणाम यह हुआ कि जब वे मरीं तो रानी बानरी हुई और ब्राह्मणी मुर्गी हुई। कुछ समय बाद पशु-शरीर त्यागकर वे पुनः मनुष्य-योनि मे जन्मीं। रानी चन्द्रमुखी तो मथुरा के राजा पृथ्वीनाथ की प्यारी रानी हुई और ब्राह्मणी एक ब्राह्मण के घर मे जन्मी। इस जन्म मे रानी का नाम ईश्वरी हुआ और ब्राह्मणी भूषणा नाम से प्रसिद्ध हुई। भूषणा राज पुरोहित अग्निमुख को ब्याही गई। इस जन्म मे भी रानी और पुरो-

हितानी दोनों में परस्पर प्रीति और सख्य-भाव था। व्रत को भूल जाने के कारण यहाँ भी रानी अपुत्रा रही। मध्य वयस में उसको एक बहरा और गूँगा पुत्र जन्मा, परन्तु वह भी नौ वर्ष का होकर मर गया। परन्तु व्रत को याद रखने और नियम-पूर्वक व्रत करने के कारण भूषणा के गर्भ से सुन्दर और नीरोग आठ पुत्र उत्पन्न हुए।

रानी को पुत्रशोक से दुःखी जानकर पुरोहितानी उससे मिलने गई। उसे देखते ही रानी को ईर्ष्या उत्पन्न हुई। तब उसने पुरोहितानी को विदा करके उसके पुत्रों को भोजन के लिये बुलाया और उनको भोजन में विष खिलाया। परन्तु व्रत के प्रभाव से वे विष से मरे नहीं। इससे रानी को बहुत क्रोध आया। तब उसने नौकरों को आज्ञा दी कि वे पुरोहितानी के पुत्रों को पूजा के मिस यमुना-किनारे लिवा जाकर गहरे जल में ढकेल दें। रानी के दूतों ने वैसा ही किया। परन्तु व्रत के प्रभाव से यमुनाजी उथली हो गईं और ब्राह्मण-बालक बाल-बाल बच गये। तब तो रानी ने जल्लादों को आज्ञा दी कि वे ब्राह्मण-बालकों को वध-स्थान में ले जाकर मार डालें। परन्तु जल्लाद आघात करने पर भी ब्राह्मण-बालकों को मार नहीं सके। यह समाचार सुनकर रानी को बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उसने पुरोहितानी को बुलाकर पूछा—"ऐसा तूने कौन-सा पुण्य किया है कि तेरे बालक मारने से भी नहीं मरते?" इस प्रश्न के उत्तर में पुरोहितानी बोली—"आपको तो पूर्व-जन्म की बात

याद नही है, परन्तु मुझे जो मालूम है सो कहती हूँ—पहले जन्म मे तुम अयोध्या के राजा की रानी थी और मैं तुम्हारी सखी थी। हम-तुम दोनो ने सरयू-किनारे श्रीशिव-पार्वती के पूजन का डोरा बाँधकर आजन्म सप्तमी का व्रत करने का संकल्प किया था। परन्तु फिर व्रत करना भूल गईं। मुझे अन्तिम समय में व्रत का ध्यान आ गया, इस कारण मैं मरकर बहु सन्तान वाली कुक्कुटी हुई और तुम बानरी हुई। पक्षी-योनि मे व्रत कर नही सकती थी, परन्तु व्रत का स्मरण मात्र रखने से मैं इस जन्म में नीरोग और बहु सन्तान वाली हूँ। मैं अब भी व्रत करती हूँ। उसीके प्रभाव से मेरी सन्तान स्वस्थ और दीर्घायु हैं।" पुरोहितानी के कहने से रानी को भी अपने पूर्व-जन्म का हाल स्मरण आ गया और वह उसी समय से नियमपूर्वक व्रत करने लगी। तब उसके कई पुत्र-पौत्रादि हुए और अन्त मे उन दोनों ने शिव-लोक का वास पाया।

लोमशजी बोले—"हे देवकी! जिस प्रकार रानी भद्रमुखी ने फल पाया, उसी प्रकार तुम भी इस व्रत को करने से सन्तान-सुख पाओगी, यह निश्चय है।" तब देवकी ने पूछा—"हे मुनिवर! इस सन्तान-दाता और मोक्ष-दाता व्रत की विधि कृपा करके कहिये।" तब लोमशजी बोले—"(भादों) शुक्ला सप्तमी को नदी या ताल में स्नान करके, मण्डल मे शिव-पार्वती की प्रतिमा लिखकर उसका विधिवत् पूजन करो और शिवजी के नाम का डोरा बाँधकर यह संकल्प करो कि यह जीवन हमने भी

श्रीशिवजी को समर्पण किया। फिर सदैव व्रत को स्मरण रखने के लिये शिवजी के डोरे को सोने या चाँदी का बनवाकर सदैव हाथ में पहिने रहो और हर सप्तमी को या महीने में एक बार शुक्ल पक्ष को सप्तमी के अथवा साल में एक बार भादों मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को व्रत रखकर उसका पूजन करो। सौभाग्यती स्त्रियों को वस्त्र और सौभाग्य-सूचक पदार्थ दान दिया करो। व्रत के दिन खुद भी पुवा भोजन करो और पुत्रों तथा सौभाग्यवती स्त्रियों को भोजन कराओ। प्रति वर्ष व्रत की शान्ति विधिपूर्वक करो, तो निश्चय है कि हे देवकी ! तुमको उत्तम सन्तान प्राप्त होगी।"

श्रीकृष्ण जी बोले कि हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार सन्तान सप्तमी का व्रत करने से तब मैंने देवकी के गर्भ से अवतार लिया। बस इसी से समझ लो कि जो कोई स्त्री-पुरुष निस्सन्तान और दुःखी हो, वह नियमपूर्वक इस व्रत को करे, तो निश्चय है श्री शिवजी की कृपा से वह सन्तान-सुख पायेगा और आजन्म नीरोग और सुखी रहकर अन्त में शिव-लोक को जायगा।

जीवत्पुत्रिका-व्रत

आश्विन शुक्ला अष्टमी को यह व्रत होता है। यह व्रत वही स्त्रियाँ करती है जो पुत्रवती है, क्योंकि इसका फल यह बतलाया गया है कि इस व्रत को करने वाली स्त्रियों को पुत्र-शोक नहीं होता। स्त्रियों मे इस व्रत का अच्छा प्रचार और आदर है। वे इस व्रत को निर्जला रहकर करती हैं। दिन-रात के उपवास के बाद दूसरे दिन पारण किया जाता है।

इस व्रत के सम्बन्ध मे जो किम्बदन्ती प्रचलित है, वह इस इस प्रकार है:—

कथा

प्राचीन काल मे जीमूतवाहन नाम एक बड़े धर्मात्मा और दयालु राजा हो गये है। एक बार वे पर्वत-विहार के लिये गये हुये थे। संयोग-वश उसी पहाड़ पर मलयवती नाम की एक राज-कन्या देव-पूजा के लिये गई हुई थी। दोनों ने एक दूसरे को देखा। राजकन्या के पिता और भाई इस कन्या का विवाह उसी राजा से करना चाहते थे। राजकन्या का भाई भी उस समय पर्वत पर आया हुआ था। उसने दोनो का परस्पर-दर्शन देख लिया। फिर राजकुमारी वहाँ से चली गयी।

जीमूतवाहन ने पर्वत पर भ्रमण करते-करते किसी के रोने का शब्द सुना। पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि शंखचूण सर्प की माता

इसलिये रो रही है कि उसका इकलौता पुत्र आज गरुड़ के आहार के लिये जा रहा है।

गरुड़ के आहार के लिये जो स्थान नियत था, उस दिन राजा वहाँ जाकर स्वयं साँप की भाँति लोट गया। गरुड़ ने आकर जीमूतवाहन पर चोंच मारी। राजा चुपचाप पड़े रहे। गरुड़ को आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा कि आखिर यह है कौन? राजा ने कहा—"आपने भोजन क्यों बन्द कर दिया?"

गरुड़ ने पहचानकर पश्चात्ताप किया। मन मे सोचा कि एक यह है जो दूसरे का प्राण बचाने के लिये अपनी जान दे रहा है और एक मै हूँ जो अपनी भूख बुझाने के लिये दूसरे का प्राण ले रहा हूँ। इस अनुताप के बाद गरुड़ ने राजा से वर माँगने को कहा। राजा ने कहा—"मैं यही चाहता हूँ कि आज तक आपने जितने साँप मारे हैं, सब को फिर से जिला दीजिये और अब से सर्प न मारने की प्रतिज्ञा कीजिये।"

गरुण बोले—"एवमस्तु।"

इसी बीच राजकुमारी के पिता जीमूतवाहन को ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँचे। उस दिन आश्विन शुक्ला अष्टमी थी और उन्हे ले जाकर उनके साथ राजा ने अपनी कन्या का विवाह कर दिया।

इसी घटना के उपलक्ष मे स्त्रियाँ यह व्रत रखती और ब्राह्मण को दक्षिणा देती है।

नवरात्रि

दुर्गा सप्तशती द्वारा जो भगवती का माहात्म्य प्रकट किया गया है, उसका संक्षिप्त सारांश यह है कि सुंभ-निसुंभ तथा महिषासुरादि तामसिक वृतिवाले असुरों की वृद्धि होने से जब देवता अत्यन्त दुःखी हुए, तो सब ने मिलकर चित्-शक्ति महामाया की स्तुति और उपासना की, जिससे प्रसन्न होकर देवी ने यह वरदान दिया-"हे देवताओ! तुम निर्भय रहो। मैं शीघ्र ही प्रकट होकर इन असुरों का संहार करूँगी। मेरी प्रसन्नता के लिए तुम लोगों को आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से घट-स्थापनपूर्वक दशमी तक नौ दिन मेरी पूजा और व्रत करना चाहिये।" बस, इसी आधार पर देवी-नवरात्रि-महोत्सव का प्रचार संसार में हुआ है।

प्रतिपदा को जो घट-स्थापन किया जाता है, उस की विधि इस प्रकार है—प्रातःकाल तैलाभ्यंग-स्नानकर नवरात्रि व्रत का संकल्प करे तथा गणपति-पूजन, पुण्याह-वाचन, नान्दी श्राद्ध, मातृका पूजन और ऋत्विक वरण करने की प्रतिज्ञा करे। तत्पश्चात् पृथ्वी-स्पर्शपूर्वक पूजन करके घट में हरे पत्ते डालकर जल भरे और चन्दन लगाकर सर्व औषधि-संस्कार करे तथा दूर्वा, पंचरत्न पंचपल्लव घट में डालकर उस पर सूत या वस्त्र लपेटे। तदनन्तर गेहूँ या जौ से भरा हुआ पूर्ण पात्र घट के

मुख पर रखकर वरुण का पूजन करे और तब भगवती का आवाहन करे।

भगवती का आवाहन करके आसन, पाद्य, अर्घ आचमन, पंचामृत, स्नान, वस्त्र, अलंकार, गन्ध, अक्षत, पुष्प और परिमल आदि द्रव्यों से पूजन करके अंग-पूजन करना चाहिए। तत्पश्चात् धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, ताम्बूल, फूल, दक्षिणा, आरती और पुष्पांजलि करके प्रदक्षिणा करे और ऋत्विक वरण करके कुमारी-पूजन करना चाहिये। एक वर्ष की आयु से लेकर १० वर्ष तक की कन्या का पूजन करना उचित है।

प्रतिपदा से लगाकर दशमी पर्यन्त कन्या का पूजन करना चाहिये। देवी नवरात्रि के पूजन का सब मनुष्यों को अधिकार है। विधिमात्र भिन्न है। ब्राह्मणादि सात्विक लोगों की पूजा मांस-रहित होती है। शूद्रादि तामसी लोगों की पूजा मांस-सहित होती है। प्रतिपदा को घट स्थापन करने के बाद दशमी पर्यन्त नित्य सप्तशती का जप, देवी-भागवत्-श्रवण, अखण्ड दीप, पुष्पमाला समर्पण और उपोषण करना या एकभुक्त रहना चाहिए। घट के पास नौ धान्यों को बोना चाहिए और अन्त में उनके पेड़ों की प्रसादी लेकर मस्तक पर चढ़ाना चाहिए। पंचमी के दिन उपांग ललिता व्रत करे। मूल नक्षत्र में सरस्वती का आवाहनकर पूर्वाषाढ़ में पूजन करे। उत्तराषाढ़ में बलिदान और श्रवण में विसर्जन करे। अष्टमी और नवमी को महातिथि कहते हैं।

कथा

प्राचीन काल मे एक धर्मात्मा और प्रजा-पालक सुरथ नाम का राजा था। वह राजकाज का भार मंत्रियों को सौंपकर आप इन्द्र के समान राज-सुख का उपभोग करने लगा। यह देखकर उसके शत्रुओं ने इस अवसर से लाभ ।उठाना निश्चय करके उसके राज पर चारों ओर से चढ़ाई कर दी। इधर मंत्री लोग भी राजा को धोखा देकर शत्रुओं से मिल गये। परिणाम यह हुआ कि राजा सुरथ का राज गया, मंत्रियों का ईमान गया, राज पर शत्रुओं का अधिकार हो गया और राजा तपस्वी के वेश मे वनवास करने लगा। एक दिन राजा ने देखा कि एक अति वृद्ध व्यक्ति रोता हुआ जंगल मे भटकता फिरता है। राज ने उससे पूछा—"तू किस कारण यहाँ विलाप करता फिरता है?" उसने उत्तर दिया "मै समाध नामका वैश्य हूँ। गृहस्थाश्रम मे मै धन-धान्य-सम्पन्न और परिवार-सम्पन्न हूँ, परन्तु बुढ़ापा मुझे व्याधि-रूप हो गया है।। मेरे ही पुत्र-पौत्रों ने मुझे बेकार समझ-कर घर से निकाल दिया है। किन्तु मेरा मन उन्हीं मे लगा हुआ है।"

यह सुनकर राजा बोला—"यह तो मोह की प्रबलता है।" वैश्य पुनः बोला—"यह मै भी जानता हूँ, कि यह मेरा मोह-मात्र है, फिर भी मन के वेग से विवश हूँ।"

राजा सुरथ उस मोह-लीन वैश्य को लेकर मेध ऋषि के पास गये। ऋषि ने पूछा—"तुम दोनों कौन हो? और क्यों उदास और

उद्विग्न-से फिरते हो ?" राजा ने उत्तर दिया—"मै राजा हूँ। और यह वैश्य है। हम दोनो को गोत्र-भाइयों ने घर से निकाल दिया है। फिर भी हम उनके मोह को नहीं त्याग सकते। हमारी समझ मे नहीं आता कि मोह क्या वस्तु है ? और मन के भीतर कौन बैठा हुआ है।"

ऋषि ने उत्तर दिया—"हे राजा ! मन शक्ति के अधीन होता है। उस आदि-शक्ति भगवती के दो स्वरूप है—एक विद्या और दूसरा अविद्या। विद्या ज्ञान-स्वरूप है और अविद्या अज्ञान-स्वरूप। इसी अविद्याके कारण मोह का आविर्भाव होता है। इसी अविद्या के कारण मनुष्य अन्धा होकर स्वयं मोह-माया मे बँधा हुआ मरता-जीता रहता है। जो पुरुष भगवती का संसार को आदि-करण जानकर उनकी भक्ति करते है, उन्हे वह विद्या-स्वरूप से प्राप्त होकर उनको जीवन्मुक्त कर देती है।"

इस पर राजा ने पूछा—"हे मुनिवर ! अब कृपाकर यह समझाने की कृपा कीजिये कि शक्ति की उत्पत्ति कहाँ से हुइ ? और उसका वास कहाँ है ?" ऋषि ने उत्तर दिया—"नित्यानन्द-स्वरूप शक्ति की उत्पत्ति और उसका नाश नहीं होता। वह अनादि और अनन्त है। जब देवताओं पर संकट पड़ता है, तभी वह किसी न किसी रूप से प्रकट होती है। उसी शक्ति के माहात्म्य का इतिहास मै वर्णन करता हूँ, सो ध्यान देकर सुनो।

"महाप्रलय के समय जब श्रीलक्ष्मीनारायण शेष की शय्या पर क्षीर-समुद्र मे शयन कर रहे थे और उनका प्रताप निद्रा के

स्वरूप में उनके शरीर में व्याप्त हो रहा था, उसी दशा में उनकी नाभि से ब्रह्मा प्रकट हुए और दोनों कानों से मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए। उन दोनों का भयानक वेश देखकर ब्रह्मा ने विचार किया कि इस समय श्रीहरि के सिवा और कोई मेरा सहायक नहीं है। परन्तु यह सुषुप्त अवस्था में हैं। इनको किसी तरह से जगाना चाहिए। यह विचार कर ब्रह्मा ने समस्त जग को प्रेरक आदि-शक्ति का ध्यान करते हुए उसकी स्तुति की। तब सर्वेश्वरी शक्ति ने अपनी वह मोहक शक्ति खींच ली, जिसके कारण विष्णु भगवान् सो रहे थे। विष्णु ने जागकर उक्त दोनों दानवों से युद्ध करना आरम्भ किया। पाँच हजार वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा। परन्तु उन खलों का बल कुछ भी कम नहीं हुआ। देवताओं ने घबराकर शक्ति की आराधना की, जिस पर शक्ति ने वाणी-शक्ति के द्वारा स्वयं असुरों से कहलाया—"हे हरि! अब तुम हम को जंघाओं पर सिर रखकर मार डालो।" विष्णु भगवान ने वैसा ही किया। उनको पछाड़कर उनका सिर चक्र से काट डाला। यह एक प्रसंग हुआ। अब जिस तरह से इन्द्रादि देवताओं के लिये शक्ति प्रकट हुई, उसका हाल सुनो।

"एक समय महिषासुर नाम का एक असुर ऐसा प्रबल हुआ कि उसने स्वर्ग के सब देव-दल को परास्त करके इन्द्र के निवास-स्थान को जा घेरा। इन्द्र उसके डर से भागकर त्रिदेवों के पास गये। इन्द्र-समेत त्रिदेवों ने आदि-शक्ति भगवती का ध्यान किया। उसी क्षण सब देवताओं के अंगों में से एक तेज-पुंज ज्वाला-

सो निकलकर अग्नि-ज्वाला की तरह पृथ्वी पर आच्छादित हो गई। उस तेज से संतप्त होकर देवताओं ने शक्ति की स्तुति करते हुए प्रार्थना की --'हम लोग आपका यह तेज सहन नहीं कर सकते। इस कारण कृपा करके आप मूर्तिमान स्वरूप धारण कर लीजिये।' यह सुनते ही एक सुन्दर किशोर-वय मूर्ति प्रगट हो गई।' उस मूर्ति के तीन नेत्र व आठ भुजाएँ थीं। तब सब देवताओं ने उस मूर्ति की पूजा की। विष्णु भगवान् ने अपना चक्र उसे समर्पण किया। ब्रह्मा ने अपना पवित्र कमण्डल दिया और शिवजी ने त्रिशूल दिया। इन्द्र ने अपना वज्र दान किया। वरुण ने शक्ति-आयुध दिया। यमराज ने अपना खड्ग और यमफाँस दी। अग्निदेव ने अपना धनुष-बाण दिया। लक्ष्मी ने अपना सब शृंगार उसको दिया और हिमालय ने उसको सवारी के लिये सिंह भेंट किया। इस प्रकार से सुसज्जित होकर इधर से शक्ति चली, उधर से महिषासुर दैत्य अग्रसर हुआ। शक्ति के साथ में जो देवताओं का दल था, उसको पीछे छोड़कर शक्ति भवानी आगे बढ़ गई और उसने महिषासुर के अगवान दैत्य-दल पर भीषण रूप से आक्रमण किया और देखते-देखते उसने सम्पूर्ण दैत्यदल का नाश कर डाला। महिषासुर अकेला रह गया। वह अनेक आसुरी माया करते हुए युद्ध में प्रवृत्त हुआ। परन्तु शक्ति ने सम्पूर्ण माया-जाल को छिन्न-भिन्न कर महिषासुर को कालपाश में लपेट कर पृथ्वी पर पटक दिया और उसकी गर्दन पर पैर रखकर खड्ग से उसका सिर काट डाला। इस प्रकार से भगवती ने महिषासुर का संहार

किया। अब आगे जिस तरह से उसने सुंभ-निसुंभादि दैत्यों को मारा, उसकी कथा कहता हूँ, सो सुनो—

"श्रीसूर्य्य भगवान को अदिति नाम्नी रानी के गर्भ से सुभ और निसुंभ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए। ज्येष्ठ भाई सुंभ राज-छत्र धारणकर दैत्य-समाज का शासन करता था और उसका छोटा भाई निसुभ भी समान रूप से बलवान और सामर्थ्यवान था। जीवधारी को कौन कहे, पञ्चतत्व, अग्नि, जल, नल, वायु आदि उनके भय से सशंक रहते थे। ऐसे ही उनका प्रधान कर्मचारी रक्तबिन्दु और सेनापति धूम्र-लोचन दोनों बड़े कार्य-कुशल और कुशाग्र-बुद्धि थे। सेनापति के सहकारी चंड और मुंड नाम के दैत्य बड़े विकट-स्वरूप और अजेय योद्धा थे। इन लोगों के आतंक से समस्त देवदल छिन्न-भिन्न हो गया। विष्णु कई बार इन दैत्यों से परास्त हो रणखेत छोड़कर भाग गये थे। उन्होंने ब्रह्मा का हंस छीन लिया, दिग्पालों को कैद कर लिया, कुबेर का भण्डार लूट लिया और देवताओं से सुमेरु शिखर छीनकर उस पर अपना अधिकार जमा लिया। यहाँ तक कि इन्होंने सूर्य, चन्द्र, शेष-नाग इत्यादि सृष्टि के प्रधान स्तम्भों पर अपना प्रभुत्त्व स्थापित करके उनको अपना आज्ञाकारी बना लिया।

"इस आपत्ति से अकुलाकर त्रिदेवों समेत सम्पूर्ण देवता हिमालय पर्वत पर जाकर श्रीपार्वतीजी की स्तुति और वन्दना करने लगे। उन्होंने शक्ति के माहात्म्य और वैभव का वर्णन करते हुए कहा—'हे भगवती! जिस प्रकार आपने मधु-कैटभादि असुरों

का संहार किया, उसी प्रकार सुंभ-निसुंभ दोनों को मारकर हमारा उद्धार कीजिये। देवता-वृन्द इस प्रकार स्तुति कर रहे थे, उसी समय श्रीपार्वतीजी स्नान करने के लिये निकलीं। देवताओं को इकट्ठा देखकर उन्हों ने पूछा—'आप लोग यहाँ एकत्र होकर किस आशय से किस की स्तुति कर रहे हैं?' पार्वतीजी के इतना कहते ही उनके मुख से एक अनुपम शक्ति निकली। उसके निकलते ही गौराङ्गी पार्वती का स्वरूप श्याम-वर्ण हो गया। उस शक्ति ने पार्वतीजी के सम्मुख स्थित होकर कहा—'यह देवता असुरों के भय से विह्वल होकर मेरी स्तुति कर रहे हैं। इसी कारण हे गौरी! मैं स्वयं-सिद्ध प्रकट हुई हूँ!' देवता लोग उस स्वयं-सिद्ध शक्ति का अनुपम-स्वरूप देखकर चकित हो गये। और वे किंकर्तव्य विमूढ़ होकर उसके चरणों पर गिर पड़े। भगवती ने उनको आश्वासन देते हुए कहा—'तुम लोग पर्वत की गुफाओं में छिप रहो, तब तक मैं सम्पूर्ण दैत्य-दल का नाश किये देती हूँ।'

देवताओं के छिप रहने पर वह आदि-कुमारी अद्भुत स्वरूप धारणकर सुमेरु शिखर के राजसिंहासन पर आसीन होकर असुर-दल के अनुचरों को वहाँ से मार-मारकर निकाल बाहर करने लगी। यह समाचार पाकर असुरराज सुंभ-निसुंभ आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने वास्तविक स्थिति जानने के लिये जो गुप्त-चर भेजे, वे भी आदि-शक्ति का दिव्य स्वरूप देखकर मोहित हो गये। उन्होने अपने राजा से कहा—'महाराज! सुमेरु-शिखर-वासिनी तपस्विनी अवश्य ही श्रीमान् की सेवा मे आने के योग्य

है।' इस पर दैत्यराज ने भगवती के पास एक राजदूत भेजा। उसने देवी के दरबार मे जाकर अद्भुत चमत्कार देखा। आदि-शक्ति के अलौकिक रूप-लावण्य को देखकर वह नजर नोची करके खड़ा रह गया। तब देवी ने उसको बैठने का आदेश करते हुए मन्द स्मितिपूर्वक पूछा—'कहो. तुम इधर कैसे भूल पड़े?' यह सुनकर दूत बोला—'मै दैत्यराज सुंभ का भेजा हुआ आप ही की सेवा मे आया हूँ। आपके रूप-गुण की चरचा सुनकर वह आप पर मोहित हो गये। अस्तु; आप कृपाकर उनके पास चलिये और सर्वश्रेष्ठ पट-रानो के पद पर प्रतिष्ठित होकर तीनों लोकों का राज्य कीजिये और अपनी तपस्या का प्रत्यक्ष फल लीजिये।' दूत की ऐसो बाते सुनकर भगवतो ने उत्तर दिया—'संसार मे ऐसा कौन है, जो मेरा पति बन सके। हाँ, यदि कोई मुझको युद्ध में जीत सके तो मै उसे पति-भाव से अंगोकार कर सकती हूँ।' यह सुनकर दैत्य-दल का दूत क्रोधपूर्वक बोला—'हे देवि, आपका यह गर्व व्यर्थ है। क्या आप उन सुंभ-राज को नहो जानतीं जिन्होने सम्पूर्ण देव-दल को परास्त कर दिया है? ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता जिसके भय से कन्दराओं में छिपे हुए हैं, उस सबल का एक अबला क्या कर सकती है? इस बात को खूब सोच-समझकर मेरे साथ चलो और जीवन का सुख भोग करो। क्यों व्यर्थ उन महाराज के तेज-प्रताप का पतंगा बनने का साहस करती हो?' यह सुनकर भगवतो ने दूत को समझाया—'मैं तेरो सब बातें

समझती हूँ, परन्तु मैंने युद्ध-स्वयम्वर का प्रण किया है, अस्तु तू अपने राजा से ऐसा ही कह दे।'

"दूत ने जगज्जननी के आदेशानुसार सब बातें सुंभ से कह सुनाईं, जिसे सुनते ही सुंभ ने धूम्राच्छ को बुलाकर आज्ञा दी—'तुम दस हजार योद्धा लेकर कैलाश पर जाओ और उस तपस्विनी कन्या को पकड़ लाओ। यदि कोई उसकी सहायता करे तो उसको उचित दण्ड देकर उसके केश पकड़ लाओ।' धूम्राच्छ ने सुमेरु शिखर के पास पहुँचकर अपनी सब सेना को नीचे छोड़ा और आप शिखर पर चढ़कर भगवती के सम्मुख जा पहुँचा। वह देवी के दरबार का चमत्कार देखकर चकित हो गया। उसको ऐसा देख भगवती ने पूछा—'तू क्यों मूर्खवत् हो रहा है?' उसने उत्तर दिया—'तूने जो हमारे महाराज के दूत से युद्ध-स्वयम्वर की बात कही थी, उसीके अनुसार मैं तुझको पकड़ने के लिये आया हूँ।' इतना सुनते ही शक्ति ने आप ही आप एक हुंकार शब्द किया। उसकी दाह-शक्ति से धूम्राच्छ उसी जगह जलकर भस्म हो गया। धूम्र-लोचन का भस्मीभूत होना सुनकर उसके साथ वाले शिखर पर चढ़ दौड़े। यह देखकर शक्ति ने उनके ऊपर सिंह को ललकार दिया और सिंह ने उन सबका सर्वनाश कर दिया।

"सिंह का ग्रास होने से जो बचे, वे लोग सुंभ के दरबार मे जा पुकारे। उनसे आदि-शक्ति के प्रभुत्व एवं वैभव का समाचार सुनकर सुंभ ने सहायक सेना-नायक चण्ड-मुण्ड को आज्ञा दी

कि वे एक विकट दानव-दल ले जाकर शक्ति को पकड़ लाये। तदनुसार चण्ड-मुण्ड एक बड़ी भारी दैत्य-सेना लेकर हिमांचल की ओर चल पड़ा। उसके दल के आतंक से सारे देश में हाहा-कार मच गया। भगवती ने भी एक ओर तुमुल दैत्य-दल और एक ओर अकेले सिंह को देखकर क्रोधपूर्वक जो भौंहें चढ़ाईं तो क्रोध-स्वरूप, कराल-कृत्य-शक्ति काली अपने-आप उत्पन्न हो गई। उस तामस-स्वरूपा मूर्ति का सर्वाङ्ग श्याम वर्ण था। उसके बड़े-बड़े काले बाल एड़ियों तक छिटके हुए थे। उसकी दोनो विकट भृकुटियों के ऊपर त्रिवलित ललाट पर से अद्वितीय तेज प्रदीप्त हो रहा था। उसके दाँत और जिह्वा अति भयानक थी। उसके सर्वाङ्ग के रोम-रोम खड़े थे और उसके आजानु अनेक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थे। उसका भयानक शरीर रुधिर चूते हुए गजचर्म से आच्छादित था और वह नर-मुण्डों की माला पहिने हुए थी। उसने आदिशक्ति के चरणों पर प्रणाम करके अपनी प्रेत, पिशाच और योगिनी सेना समेत दानव दल पर आक्रमण कर दिया। भगवती काली की भयानक मूर्ति देखकर सब दैत्य-दल तो सशंक होकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया, परन्तु चण्ड-मुण्ड ने साहसकर कालिका का सामना किये। उसने काली पर जो-जो अस्त्र-शस्त्र चलाये सब व्यर्थ हुए। अन्त में काली ने अपने विकराल खड्ग से चण्ड-मुण्ड के शरीर के खण्ड-खण्ड कर दिये और वह उसका रुधिर पान करने लगी।

"भूत-प्रेत बैतालादि से बचे हुए दैत्य काली के हाथों चण्ड-मुण्ड का परिणाम देखकर राजा के समीप दौड़े गये। चण्ड-मुण्ड का मरना सुनकर सुंभ दुःख, क्रोध, लज्जा और भय से विह्वल-सा हो गया। अस्तु; उसने अपने आमात्य रक्तबिन्दु को आज्ञा दी कि वह सम्पूर्ण दैत्य-दल-समेत शक्ति का संहार करने के लिये सुमेरु शिखर पर आक्रमण करे। आज्ञा शिरोधार्य करके रक्तबिन्दु असंख्य सेना-समेत सुमेरु-शिखर के उपकण्ठ मे जा पहुँचा। दैत्य-दल को देखकर शक्ति भगवती ने विचार किया कि अकेली काली इन सबको कहाँ तक मारेगी। चित्त मे ऐसा विचार होते ही भगवती के मुख से जाज्वल्यमान ज्वाला-स्वरूप शक्ति की उत्पत्ति हुई। उस आदि-शक्ति की प्रबल शक्ति से हंसवाहिनी ब्रह्मशक्ति, गरुड़ारूढ़ विष्णुशक्ति, नन्दी-वाहिनी शिवशक्ति और गजारूढ़ इन्द्रशक्ति आदि सम्पूर्ण देवताओं की भिन्न-भिन्न शक्तियाँ आप से आप प्रकट हो गईं। उन्होंने आदि-शक्ति को सिर नवाकर आज्ञा माँगी। शक्ति ने शत्रु-सेना पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। जगज्जननी की आज्ञा पाकर सम्पूर्ण देवों की दिव्य शक्तियों ने दैत्यदल का संहार करना आरम्भ किया। विभिन्न देव-शक्तियों की अशक्त मार से घबराकर जब दानव-दल भाग उठा, तो रक्तबीज ने क्रुद्ध हो अति उद्धत योद्धाओं-समेत ताजो फौज को रण-क्षेत्र मे भेजा। खास तौर से हाथियों की फौज आगे करके उसने विकट व्यूह-बद्ध हो आक्रमण किया। उस समय भगवती ने सम्पूर्ण विभिन्न

शक्तियों को एकत्र शक्ति एक इन्द्रशक्ति में भर दी। उसने अपने वज्रायुद्ध से समस्त दानव-सेना छिन्न-भिन्न कर दी। सम्पूर्ण पदाति दानव-सेना हाथियों की रेल-पेल मे आप ही पद-दलित होकर भाग उठी। केवल इने-गिने सरदार खेत मे खड़े रह गये। तब तो रक्तबिन्दु स्वयं अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सजकर युद्ध-क्षेत्र मे पहुँचा। उसमे खास गुण यह था कि जहाँ कहीं उसके रुधिर का बूँद गिर पड़ता, वहीं एक नवीन रक्तबिन्दु (दानव) उत्पन्न हो जाता था। उसकी इस अलौकिक करामात के सामने समस्त देव-शक्तियां स्वयं परास्त हो गईं। तब सब देवताओं ने व्याकुल होकर अनन्य शक्ति की आराधना की। उसी समय उसकी इच्छा से कालिका शक्ति अपनी योगिनी सेना-समेत अग्रसर हुई। उसने अपने खड्ग से उस दानव का सिर काट डाला और योगिनियों ने उसका रुधिर पीना आरम्भ किया। तात्पर्य यह कि रक्तबीज के किसी अंश का एक भी बिन्दु धरती में गिरने ही न पाया। अन्त में भगवती की काली शक्ति ने असली रक्तबिन्दु को भी मार डाला।

रक्तबिन्दु का मरना सुनकर सुंभ को अति क्षोभ हुआ। अपने बड़े भाई को मन-मलीन देखकर निसुंभ ने महाशक्ति का सामना करने का बीड़ा उठाया और वह सम्पूर्ण चतुरंगिनी सेना-सहित सुमेरु शिखर की ओर चढ़ चला। उसके मुकाबले मे सम्पूर्ण देव-शक्तियों ने अतुल पराक्रम किया, परन्तु उसके माया-जाल के आगे सभी को नत-मस्तक होना पड़ा। अन्त में श्रीकालिका-शक्ति

ने उसके सम्मुख होकर उसे प्रचारा। दोनों में घोर युद्ध होने लगा। निसुंभ ने शक्ति पर सब प्रकार के आयुध चलाये; परन्तु वे सब निष्फल हुए और भगवती ने प्रबल दैत्य की देह को खण्ड-खण्ड कर डाला। भाई का रण मे मरण सुनकर सुंभ स्वयं आदि-शक्ति से युद्ध करने के लिये रणक्षेत्र मे आया। उसने भी अपने प्रबल पराक्रम से देव-सेना को व्याकुल कर दिया; परन्तु अन्त मे उसकी भी वही गति हुई जो सब दानवों की हो चुकी थी।

"ऋषि बोले—'हे राजन्! ऐसी अनन्य शक्तिसम्पन्न भगवती आदि-शक्ति की आराधना से मनुष्यमात्र के सब क्लेश दूर हो सकते हैं।' तब राजा सुरथ बोला—'हे ऋषिवर! किस प्रकार आराधना करके आदि-शक्ति को प्रसन्न करना चाहिये, सो कृपाकर वह भी समझाइये।' इस पर ऋषि ने ऊपर कहे अनुसार भगवती की आराधना की सम्पूर्ण विधि बताई। राजा सुरथ और समाधि वैश्य दोनों ऋषि का उपदेश अंगीकार करके एक निर्जन वन में नदी के तीर पर विधिवत् भगवती की आराधना करने लगी। वे एकटक ज्योति की ओर जमाकर भगवती का नाम स्मरण करने लगे। लगातार तीन वर्ष की तपस्या के बाद भगवती ने प्रकट होकर राजा और वैश्य से कहा—'जो चाहते हो, सो, वर माँगो।' राजा ने कहा—'हे भगवती! आप की कृपा से मेरा गया हुआ राज पुनः प्राप्त हो जाय।' और वैश्य ने वर माँगा—'मेरा मोह दूर हो जाय।' भगवती 'एवमस्तु' कहकर अंतर्द्धान हो गईं।

"वैश्य को ता उसी समय ज्ञान प्राप्त हो गया और वह संसारी मोह से निवृत होकर आत्म-चितन मे प्रवृत हो गया। राजा ने एन केन प्रकारेण कुछ मनुष्यों को जोड़कर अपने राज पर चढ़ाई की, तो अब आसपास के सब लोग उसकी सहायता के लिये स्वयं उसको सेना मे आ मिले। उधर भगवती की कृपा से उसके शत्रुओं को वह सेना बड़ी भयानक और अजेय दीख पड़ने लगी, जिससे वे स्वयं भयभीत ही राजसीमा को छोड़कर भाग गये।

"सुरथ ने राजसिहासन पर बैठकर अपने राज में यह ढिढोरा पिटवाया—'आश्विन मास व चैत्र मास के शुक्ल पक्ष मे प्रत्येक मनुष्य घट-स्थापनपूर्वक आदि-शक्ति की उपासना तथा आराधना किया करे।' उसी समय से संसार मे नवरात्रि की पूजा की प्रथा चलो है।"

विजया दशमी

विजया दशमी मनाने की प्रथा सारे भारत मे, है। इसके सम्बन्ध मे मुख्य कथा नीचे लिखी जाती है :—

कथा

एक समय श्रीपार्वतीजी ने महादेवजी से पूछा—"लोगों मे जो दशहरे (विजया दशमी) का त्योहार प्रचलित है, इसका क्या फल है, सो कृपाकर बताइये।" तब श्रीशिवजी बोले—"आश्विन शुक्ला दशमी को नक्षत्रों के उदय होने पर विजया नामक काल होता है, जो सब कामनाओं का देने वाला होता है। शत्रु को विजय करने वाले राजा को इसी समय प्रस्थान करना चाहिये। इस दिन यदि श्रवण नक्षत्र का योग हो तो और भी अच्छा है, क्योंकि मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी ने इसी विजय-काल मे लंका पर चढ़ाई की थी। इसीलिये यह दिन पवित्र माना गया है और क्षत्रिय लोग इस को अपना मुख्य त्योहार मानते हैं। यदि शत्रु से युद्ध करने का प्रसंग न भी हो तो भी इस काल में राजाओं को अपनी सीमा का उल्लंघन अवश्य करना चाहिये। सम्पूर्ण दल-बल सजकर पूर्व दिशा मे जाकर शमी वृक्ष का पूजन

करना चाहिये। पूजन करने वाला शमी के सम्मुख खड़ा होकर इस प्रकार ध्यान करे—

"हे शमी! तू पापों का नाश करने वाला है और शत्रुओं को भी नष्ट करने वाला है। तूने अर्जुन के धनुष को धारण किया और श्रीरामचन्द्रजी से कैसी प्रियवाणी कही।"

यह सुनकर पार्वतीजी बोली—"शमी ने अर्जुन का धनुप-बाण कब और किस कारण धारण किया तथा उसने श्रीराचन्द्रजी से कैसी प्रिय वाणी कही, सो कृपाकर समझाइये।" तब श्री शिवजी बोले—"जिस समय दुर्योधन ने पाण्डवों को इस शर्त पर वनवास दिया कि वे बारह वर्ष प्रकट रूप मे वन में फिरें, परन्तु एक वर्ष सर्वथा अज्ञात अवस्था मे रहे। यदि इस वर्ष मे उनको कोई जान लेगा तो उनको बारह वर्ष और भी वनवास भोगना पड़ेगा। उस अज्ञात-वास के समय अर्जुन अपना धनुष-बाण एक शमी वृक्ष पर रखकर राजा विराट् के यहाँ विहंडल-वेश मे रहे थे। विराट् के पुत्र उत्तरकुमार ने गौवों को रक्षा के लिये अर्जुन को अपने साथ लिया और अर्जुन ने शमी के वृक्ष पर से अपने हथियार उठाकर शत्रुओ पर विजय प्राप्त की थी। शमी ने एक वर्ष पर्यन्त देवता की तरह अर्जुन के हथियारों का रक्षा की थी। पुनः जब विजया दशमी के दिन श्रीरामचन्द्रजी ने लङ्का पर चढ़ाई करने के लिये प्रस्थान किया तब भी शमी ने कहा था कि आप की विजय होगी, इसी कारण विजय-काल में शमी का पूजन होता है।

"राजा युधिष्ठिर के पूछने पर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने उनको समझाया था कि हे राजन्! विजया दशमी के दिन राजा स्वयं अलंकृत होकर अपने दास लोगों का शृङ्गार करे और हाथी घोड़ों का भी शृङ्गार करे तथा गान-वाद्य द्वारा मङ्गलाचार करे। अपने पुरोहित को साथ लेकर पूर्व दिशा में प्रस्थान करके अपनी सीमा के बाहर जाय और वहाँ वास्तु-पूजा करके अष्ट दिग्पालों एवं पार्थ देवता की वैदिक मन्त्रों से पूजा करे। तदनन्तर प्रधानतया शमी की पूजा करनी चाहिये। शत्रु की प्रतिकृति अर्थात् पुतला बनाकर उसके हृदय में बाण लगाये और पुरोहित लोग वेद-मन्त्रों का उच्चारण करें। पूज्य ब्राह्मणों का पूजन करे तथा हाथी, घोड़ा, अस्त्र शस्त्रादि सब का निरीक्षण भी करे। यह सब क्रिया सीमान्त में करके बाजे-गाजे के साथ अपने महल को लौट आना चाहिये। जो राजा प्रति वर्ष इस विधि से विजया पूजन करता है, वह सदैव अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करता है।"

करवा-चतुर्थी-व्रत

कार्तिक कृष्णा चतुर्थी को करवा-चौथ करते हैं। इस व्रत के करने का अधिकार केवल स्त्रियों को ही है। व्रत रखने वाली स्त्री को चाहिये कि प्रातःकाल शौचादि नित्य-क्रिया से निवृत होकर आचमन करके व्रत का संकल्प करे। व्रत का संकल्प करके चन्द्रमा की मूर्ति लिखे और उसके नीचे शिव, षण्मुख और गौरी की प्रतिमा लिखकर षोड़शोपचार से पूजन करे।

पूजन के पश्चात् पुवों से भरे हुए ताँबे या मिट्टी के कुल्हड़ ब्राह्मणों को दान करे। चन्द्रमा का उदय हो जाने पर अर्घ देकर नीचे लिखी कथा सुनेः—

कथा

एक समय अर्जुन कील गिरि पर चले गये थे। उस समय द्रौपदी ने मन मे विचार किया कि यहाँ अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित होते है और अर्जुन हैं नहीं। अब मै क्या करूँ। यह विचारकर द्रौपदी ने भगवान् कृष्णचन्द्र का ध्यान किया। भगवान् के पधारने पर उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे भगवान्! इस प्रकार के विघ्नो की शान्ति का यदि कोई सुलभ उपाय हो तो बताइये।" यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले—"एक समय पार्वतीजो ने शिवजी से ऐसा प्रश्न किया था, जिसके

उत्तर में शिवजी ने उनको सर्व-विघ्न-विनाशक करवा-चतुर्थी का व्रत बतलाया था। इस कारण हे द्रौपदी! यदि तुम भी करवा-चतुर्थी के व्रत को विधि-पूर्वक करोगी तो सर्व विघ्नों का नाश होगा।"

सूतजी ने कहा कि जब द्रौपदी ने व्रत का आचरण किया, तब कौरवों की पराजय होकर पाण्डवों की विजय हुई। इस कारण पुत्र, सौभाग्य और धन-धान्य की वृद्धि चाहने वाली स्त्रियों को इस व्रत को अवश्य ही करना चाहिये।

अहोई-आठें

कार्तिक कृष्णा-अष्टमी को लड़के की माँ व्रत रहती है। सारे दिन का व्रत रखकर सब प्रकार की कच्ची रसोई विधि-पूर्वक बनाई जाती है। सन्ध्या को दीवार मे आठ कोष्टक की एक पुतली लिखी जाती है। उसी के समीप सेई (साही) के बच्चो की और सेई की आकृति बनाई जाती है। ज़मीन मे चौक पूरकर कलश की स्थापना की जाती है। रसोई का थाल लगाकर भोग के लिये तैयार रखा जाता है। विधिवत् कलश-पूजन के बाद अष्टमी (दीवार मे लिखी हुई चित्रकारी) का पूजन होता है। तब दूध-भात का भोग लगाया जाता है और नीचे लिखी कथा कही जाती है :—

कथा

किसी स्त्री के सात लड़के थे। कार्तिक के दिनो मे दीवाली के पूर्व सभी स्त्रियाँ अपने मकानों की लिपाई-पुताई करके उसे स्वच्छ कर लेती हैं। गाँव की स्त्रियाँ खुद बाहर से छापने और पोतने की मिट्टी लाती है। अतः उक्त स्त्री भी मिट्टी लाने के लिये बाहर गई थी। वह जहाँ मिट्टी खोद रही थी, उसी के नीचे सेई की माँद थी। दैवयोग से उस स्त्री की कुदाली सेई के बच्चे को लग गई, जिससे वह तुरन्त ही मर गया। यह देखकर स्त्री को बड़ी दया

आई। पर वह तो मर हो चुका था, अब क्या हो सकता था। इस कारण वह मिट्टी लेकर घर चली आई।

कुछ दिनों के बाद उसका बड़ा लड़का मर गया। उसके बाद दूसरा लड़का भी मरा। यों ही साल भर के भीतर उसके सातो लड़के मर गये। इस दुख से वह अत्यन्त दुःखी हो रहो थी। एक दिन उसने वयोवृद्ध स्त्रियों मे विलाप करते हुए कहा—"मैंने जानकर तो कोई पाप कभी नहीं किया। एक बार मिट्टी खोदने मे धोखे मे एक सेई के बच्चे को कुदाली लग गई थी। उसी दिन से अभी साल भर भी नही पूरा हुआ, मेरे सातों लड़के मर गये।" तब वे स्त्रियाँ बोलीं—"आधा पाप तो तुम्हारा अभी कम हो गया जो तुम ने चार के कान मे बात डालकर पश्चात्ताप किया। अब जो रहा, उसका प्रायश्चित यही है कि तुम उसी अष्टमी के दिन अष्टमो भगवती के समीप सेई और सेई के बच्चे के चित्र लिखकर उनकी पूजा किया करो। ईश्वर चाहेगा तो तुम्हारा हिंसा-पाप दूर होकर तुम्हे पुनः पूर्ववत् सन्तान को प्राप्ति होगी।"

उस स्त्री ने आगामी कार्तिक कृष्णा अष्टमी को व्रत किया। फिर वह बराबर उसी तरह व्रत और पूजन करती रही। ईश्वर की कृपा से पुनः उसको सात लड़के हुए।

तभी से इस व्रत और पूजन की परिपाटी चली है।

बछवाँछ-व्रत

कार्तिक कृष्णा द्वादशी को गोधूलि-बेला मे, जब गायें चर-कर जङ्गल से वापस आती हैं, उस समय उन (गायों) की पूजा की जाती है। खास तौर से लड़के की माता सारे दिन निराहार रहती है। संध्या को घर के आँगन मे लीपकर चौक पूरा जाता है।

उसी चौक मे गाय खड़ी करके चन्दन, अक्षत, धूप दीप, नैवेद्य आदि से उसकी विधिवत् पूजा की जाती है। अधिकांश कुलका आचार्य या कोई पण्डित पूजा कराता है। इस व्रत के पूजन मे धान का चावल वर्जनीय है। काकुन के चावल से पूजा होती है। उसी से मंत्राक्षत दिया जाता है। कोदो का चावल और चने की दाल तथा काकुन के चावलों के भोजन का महत्त्व है। पूजा की अठवाई बेसन की बनती है। गेहूं और धान के अतिरिक्त कोई अन्न खाना व्रत वालों के लिये वर्जनीय नही है, परन्तु पृथ्वी का गड़ा हुआ कोई भी अन्न वर्जनीय है। गाय का दूध-मट्ठा भी व्रतवाले को न खाना चाहिये।

यह व्रत सभी के यहाँ नही होता। किसी-किसी के यहाँ होता है। किसी के यहाँ प्रति तीसरे महीने अर्थात् कार्तिक, माघ, वैशाख और श्रावण चारों महीनों की कृष्णा द्वादशी को होता है, परन्तु किसी-किसी के यहाँ श्रावण मास मे चार बार पूजन होता है।

बछवाँछ या बछवाँस दोनों शब्द 'वत्सवंश' के अपभ्रंश मालूम होते हैं। कार्तिक में वत्सवंश की पूजा का रिवाज सारे भारतवर्ष में है। मालूम होता है जिस किसी के यहाँ दीवाली के त्योहार में कोई खोट होने से पूजन नहीं हो सकता, उनके यहाँ धन-तेरस के पूर्व द्वादशी को पूजन हो जाता है—कथा की कल्पना भी इसीसे मिलता-जुलता आशय सूचित करती है।

दीपावली

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी से शुक्ला दोज तक पाँच दिन पर्यन्त दीपावली महोत्सव का ही क्रम जारी रहता है। परन्तु धन-त्रयोदशी, नरक चतुर्दशी और लक्ष्मी-पूजन इन तीनों का परस्पर अति घनिष्ट सम्बन्ध है। इन त्योहारों की प्राचीनता का प्रमाण वैदिक साहित्य मे भी पाया जाता है। यमराज वैदिक देवता हैं। धन-त्रयोदशी को यमराज का पूजन होता है, जिसकी विधि इस प्रकार है—हल से जुती हुई मिट्टी को दूध में भिगो सेमर वृक्ष की डाली मे लगाये और उस को तीन बार अपने शरीर पर फेरकर कुंकुम का टीका लगाये। पुनः कार्तिक-स्नान करे। प्रदोष के समय मठ, मन्दिर, कुवाँ, बावली, घाट, कोट, बाग, मार्ग, गोशाला, अश्वशाला और गजशाला आदि स्थानों मे तीन दिन पर्यन्त बराबर दीपक रखना चाहिये। यदि तुला राशि का सूर्य हो, तो चतुर्दशी और अमावस्या को शाम को एक जली लकड़ी लेकर तथा उसको घुमाकर पितरो को भी मार्ग दिखाने का विधान है। अमावस्या के दिन प्रातःकाल तैलाभ्यंग करना चाहिये। देव-पूजा समाप्तकर पर्वण श्राद्ध करना और उल्का-दर्शन तथा लक्ष्मी-पूजन करने के उपरान्त भोजन करना चाहिये।

धन-तेरस

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को धन-तेरस कहते हैं। यह दीवाली से दो दिन पूर्व मनायी जाती है। उस दिन दीपक जला-जलाकर सब अपने-अपने द्वार पर रखते हैं और यमराज का पूजन करते हैं।

धन-तेरस के सम्बन्ध मे निम्नलिखित किम्वदन्ती लोक मे प्रचलित है :—

कथा

एक दिन यमराज ने अपने दूतों से पूछा—"मेरी आज्ञानुसार जब तुम प्राणियों के प्राण-हरण करते हो, तब तुमको किसी समय किसी के प्राण-हरण करने में दया भी आती है या नहीं ? यदि कभी तुमको दया आई है तो कब और कहाँ ?" यमराज के ऐसे वचन सुनकर दूत बोले—"हंस नाम का एक बड़ा भारी राजा था। वह किसी समय शिकार के लिये वन मे गया हुआ था। दैवात् राजा अपने साथियों से बिछुड़कर और मार्ग भूलकर हेम राजा के राज मे चला गया। हेम राजा ने महाराजा हंस का उचित स्वागत्-सत्कार किया। उसी समय हेम राजा के यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु छठी के पूजन मे देवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा—'राजन्, तुम्हारा यह लड़का चार दिन बाद मर जायगा।' राजा हंस को यह ज्ञात हुआ तो उसने हेमराज के

पुत्र को मृत्यु से बचाने के लिये उसे यमुनाजी के एक खोह मे छिपाकर रक्खा। परन्तु युवा होने पर जब उसका विवाह हुआ, तो विवाह के ठीक चौथे दिन हम लोगों ने उसके प्राणों को हरण किया। हे नाथ! मांगलिक समारोह मे ऐसी शोक-जनक घटना का होना वास्तव मे अत्यन्त घृणित कार्य था। परन्तु क्या करें, हम लोग परतन्त्र थे। अतः हे यमराज! कृपा करके ऐसी युक्ति बताइये, जिससे प्राणी इस प्रकार की अनायास-आपत्ति से उद्धार पा सके।" यह वचन सुनकर यमराज ने उपरोक्त विधि-पूर्वक धन-तेरस के पूजन और दीपदान का विधान बतलाकर कहा—"जो लोग धन-तेरस के दिन मेरे लिये दीपदान और व्रत करेंगे, उनको असामयिक मृत्यु कदापि न होगी।"

नरक-चतुर्दशी

कार्तिक मास की कृष्णा चतुर्दशी को प्रातःकाल दिन निकलने से प्रथम ही प्रत्यूष-काल मे स्नान करना चाहिये। जो मनुष्य इस तिथि मे अरुणोदय के पश्चात् स्नान करता है, उसके वर्ष भर के शुभ कार्यों का नाश होता है। इस पर्व मे जो स्नान किया जाय, वह तैलाभ्यंग-पूर्वक होना चाहिये और अपामार्ग का भी शरीर पर प्रोक्षण करना चाहिये।

अपामार्ग को शरीर पर स्पर्श कराकर सर्व बन्धुजनो के सहित स्नान करे। स्नान के पश्चात् शुद्ध वस्त्र पहिनकर तिलक लगा, कार्तिक-स्नानकर तथा यमराज को तर्पणकर तीन-तीन

जलाञ्जलि देनी चाहिये। यहाँ तक कि जिसका पिता जीवित हो उसको भी यह तर्पण करना चाहिये। पुनः सायंकाल को दीपदान करना भी उचित है। दीपदान की विधि को त्रयोदशी से अमावस्या पर्यन्त तीन दिवस करना लिखा है। इसका कारण यह है कि बावन भगवान् ने क्रमशः इन्हीं तीन दिनों मे राजा बलि की पृथ्वी को नापा था। पृथ्वी नापने के पश्चात् बावन भगवान् ने सन्तुष्ट होकर बलि से कहा—"तुम वरदान माँगो।" भगवान् के ऐसे वचन सुनकर बलि ने प्रार्थना की—"महाराज! मुझको तो किसी वरदान की आकांक्षा नहीं, परन्तु लोगों के कल्याण के निमित्त एक वरदान माँगता हूँ—अर्थात् कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी, चतुर्दशी और अमावस्या, इन तीन दिनों में आपने मेरा राज नापा है, अतः जो मनुष्य मेरे राज मे चतुर्दशी के दिन यमराज के हेतु दीपदान करे, उसको यम-यातना न होनी चाहिये और जो मनुष्य इन तीन दिनों में दीपावली करे, उसके घर को श्रीलक्ष्मीजी कभी न छोड़े।" राजा बलि की प्रार्थना सुनकर भगवान् ने कहा—"एवमस्तु,—जो मनुष्य इन तीन दिनो मे दीपोत्सव और महोत्सव करेगा, उसको छोड़कर मेरी प्रिया लक्ष्मी कहीं अन्यत्र न जायँगी।"

लक्ष्मी-पूजन

यहाँ लक्ष्मी-पूजन की विधि सनत्कुमार-संहिता के आधार पर लिखी जाती है:—एक समय ऋषियों ने सब

मुनीश्वरों से कहा—"हे मुनीश्वरो! अमावस्या के दिन प्रातःकाल ही स्नानकर भक्ति-पूर्वक पितृदेव एवं देवताओं का पूजन करे और दधि-क्षीर तथा घी से पर्वण श्राद्ध करके यथाविधि ब्राह्मणों को भोजन कराये। रोगी और बालक के सिवा अन्य किसी व्यक्ति को दिन में भोजन न करना चाहिये। सन्ध्या-समय प्रदोप-काल में लक्ष्मीजी का पूजन करना चाहिये। नाना प्रकार के स्वच्छ और नवीन वस्त्रों से लक्ष्मीजी का मण्डप बनाकर पत्र, पुष्प, तोरण, ध्वजा और पताका आदि से उसको सुसज्जित करे तथा उसमें अनेक देवी-देवताओं के समेत भगवती लक्ष्मी का षोड़शो-पचार-पूर्वक पूजन करे। पूजन के अन्त में परिक्रमा करनी चाहिये।"

मुनीश्वरों ने पूछा—"हे सनत्कुमार, लक्ष्मी के साथ-साथ सब देवताओं के पूजन का क्या कारण है?" तब सनत्कुमार ने उत्तर दिया—"राजा बलि के कारागार में लक्ष्मी समस्त देवी-देवताओं के समेत बन्धन में थी। आज के दिन विष्णु भगवान् ने उन सबको कैद से छुड़ाया था और सब देवता बन्धन-मुक्त होते ही श्रीलक्ष्मीजी के साथ क्षीर-सागर में जाकर सो गये थे। इस कारण अब हमको उनके शयन का अपने-अपने घरों में ऐसा प्रबन्ध कर देना चाहिये कि वे क्षीर-सागर की ओर न जाकर स्वच्छ स्थान और सुकोमल शैया को पाकर यहीं सो रहें। अतः रेशम से बुने हुये सुन्दर पलँग पर कोमल गद्दा बिछाकर उस पर सफेद चादर बिछाये। नवीन तकिया और रजाई लगाकर कमल-पुष्पों का

मण्डप बनाये, क्योंकि लक्ष्मी का निवास-स्थान कमल-पुष्प ही है। हे मुनीश्वरो! जो लोग लक्ष्मी का इस प्रकार से स्वागत करते हैं, उनको छोड़कर वह अन्यत्र कहीं नही जातीं। इसके विरुद्ध जो लोग आलस्य और निद्रा में पड़कर सो जाते हैं; श्रद्धापूर्वक लक्ष्मीजी का पूजन नहीं करते, वे सदैव दरिद्रता के शिकार बने रहते हैं।

"रात्रि के समय लक्ष्मी के पूजन मे आवाहन करे और गाय के दूध का खोआ बना कर उसमें मिश्री, लवँग, इलाइची, कपूर आदि डालकर उसके लड्डू बनाकर लक्ष्मी को भोग धरे। इसके अतिरिक्त देश कालानुसार भोज्य, भक्ष्य, पेय, चोष्य चारों प्रकार के पदार्थ तथा फूलादि लक्ष्मी को अर्पण करके तब दीप-दान करे। कुछ दीपकों को सर्वानिष्ट-निवृत्ति के हेतु अपने मस्तक पर घुमाकर चौराहे वा श्मशान में रखवा दे। नदी, पर्वत, महल, वृक्षमूल, गौवों के खिड़क (खरका) या चबूतरा आदि स्थानों मे भी दीपक रखने चाहिये। यदि सम्भव हो तो घरके ऊपर भी दीपकों का एक वृक्ष बनाना चाहिये। ऊपर जो ब्राह्मण-भोजन कराना लिखा है, वह भी इसी समय होना चाहिये।

राजा को चाहिये कि दूसरे दिन प्रातःकाल गॉव के सब बालकों को डौंड़ी पिटवाकर कहला दे—"आज ग्राम के सब बालक नाना प्रकार का खेल खेलें। जब बालक क्रीड़ा करें, तो इस बात की ख़बर रखनी चाहिये कि वे लोग क्या-क्या खेलते हैं। यदि सब बालक या कुछ बालकों का समूह आग जलाकर खेले और उस आग मे ज्वाला

प्रकट न हो तो जानना चाहिये कि इस वर्ष महामारी या घोर दुर्भिक्ष पड़ने की आशङ्का है। यदि बालक दुख-प्रकाश करे तो राजा को दुःख होगा। यदि सुख करें तो सुख होगा। यदि बालक आपस मे लड़ें तो राज-युद्ध होने की सम्भावना होती है और यदि बालक रोये तो अनावृष्टि की आशङ्का को जानी चाहिए। यदि बालक लकड़ी का घोड़ा बनाकर खेले तो जानना चाहिये कि अपनी किसी अन्य राज पर विजय होगी। यदि बालक लिंग को पकड़कर क्रीड़ा करें तो जानना चाहिये कि व्यभिचार अधिकता से फैलेगा और यदि बालक अन्न या पानी को चुराये तो अकाल पड़ने की आशङ्का समझनी चाहिये। इस प्रकार शकुन देखना चाहिये। इस अवसर पर इन तीन दिनों मे जुवा खेलने का भी विधान है। परन्तु स्मरण रहे कि इन तीन दिनों मे नरक-द्वार-स्वरूप दैत्यराज बलि का राज माना जाता है, जिसमे लक्ष्मी और सब देवी-देवताओं को कष्ट सहन करना पड़ा था। अतः अधर्मी राज में अधर्म करना ही श्रेयस्कर माना गया है। अर्द्ध रात्रि के समय राजा को भी नगर की शोभा देखने के लिये निकलना चाहिये।

———

अन्नकूट

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को अन्नकूट का महोत्सव किया जाता है। यह महोत्सव जिस रूप में आजकल होता है, यह श्रीकृष्ण भगवान् के अवतार के पश्चात् द्वापर युग से आरम्भ हुआ है। परन्तु वास्तव में यह महोत्सव अति प्राचीन है। इसका सम्पूर्ण वृत्तान्त नीचे लिखी कथा में वर्णन किया जाता है :—

एक समय एक महर्षि ने कहा—"हे ऋषियो, कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को अन्नकूट तथा गोवर्द्धन का पूजन करके श्रीविष्णु भगवान् को प्रसन्न करना चाहिये।" ऋषियों ने महर्षि की इस बात को सुनकर पूछा—"हे भगवन्, यह गोवर्द्धन कौन है और इसकी पूजा का क्या फल है, सो कृपाकर कहिये?" तब महर्षि ने नीचे लिखी कथा सुनाई :—

कथा

एक समय श्रीकृष्ण भगवान् अपने संगी-साथी समस्त ग्वाल-बालों समेत गौओं को चराते हुए गोवर्द्धन पर्वत की तराई में जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर सब ग्वालों ने अपनी-अपनी पोटली खोलकर रोटियाँ खानी शुरू कीं। भोजन करने के उपरान्त सब ग्वालों ने वन में से नाना प्रकार की लताओं का संग्रह करके एक मण्डप बनाना चाहा। तब श्रीकृष्ण भगवान् बोले—"क्या आज

किसी देवता का कोई महोत्सव है ? यदि है तो किसका ?" इस-पर सब ग्वाल बोले—"आज तो व्रज मे बड़ा आनन्द होगा। घर-घर पकान्न-भाजन तैयार हा रहा होगा। इसपर कृष्ण भगवान् ने कहा—" देव-पूजा करनी है तो अच्छी बात, परन्तु यदि देवता प्रत्यक्ष आकर पकान्न भोजन करता हो, तो तुमको अवश्य वह उत्सव मनाना चाहिये और यदि देवता प्रत्यक्ष भोजन न करे ता सिवाय इसके और क्या कहूँ कि तुम लोगो को ब्रह्मा ने ही मूर्ख उत्पन्न किया है। तभी तुम प्रत्यक्ष को छोड़कर परोक्ष की ओर झुके हुए हो।" गोपो ने श्रीकृष्ण के ऐसे वचनो से दुःखी होकर कहा—"हे कृष्ण ! तुमको इस प्रकार से देवता की निन्दा न करनी चाहिये। यह किसा सामान्य देवता का महोत्सव नहीं है; किन्तु तैंतीस कोटि देवताओं के अधिपति, वृत्तासुर जैसे भारी असुर के संहारकर्ता और मेघ-मण्डल के अधिपति महाराज इन्द्र का इन्द्रोज नामक यज्ञ है। जो मनुष्य श्रद्धा-पूर्वक इस इन्द्र-मख को करता है, उसके देश मे अति वृष्टि और अनावृष्टि न होकर प्रजा सुख को भोगती है। इस कारण हे कृष्ण ! आप भी इस यज्ञ को आनन्द-पूर्वक कीजिये, यही हम लोगो की प्रार्थना है।"

भगवान् कृष्ण ने गोपो की ऐसी बाते सुन हँसकर कहा—"यह गोवर्द्धन पर्वत ही सुभिक्ष एवं वृष्टि का करने वाला है। इसकी पूजा मथुरा और गोकुल के लोगो ने पहले की है और हम गोप-लोगो का प्रत्यक्ष हितकर्ता भी यही है। अतः मै इसको इन्द्र से भी

बलवान् जानकर इसीका पूजन करना उचित समझता हूँ।"
कृष्ण की इस बात पर बहुत से गोप सहमत हो गये और घर पर
जाकर उन्होंने इतस्ततः श्रीकृष्ण की बात का मण्डन भी किया।
परिणाम यह हुआ कि नन्दरानी (यशोदा) की प्रेरणा से नन्दजी
ने सब गोप-ग्वालों की एक सभा कराई और कृष्ण को बुलाकर
पूछा—"इन्द्र की पूजा से और उस की तुष्टि से तो सुभिक्ष होकर
प्रजा सुखी होती है; परन्तु गोवर्द्धन की पूजा से क्या लाभ होगा,
उसे तुम बतलाओ ?" इसके उत्तर में श्रीकृष्ण भगवान् ने इस प्रकार
उत्तर दिया :—

"मनुष्य कर्म ही से उत्पन्न होता है और कर्म ही से मरता है।
भय, अभय, सुख, दुःख आदि सब बातें मनुष्य को कर्म ही से
प्राप्त होती हैं। यदि तुम कहते हो कि ईश्वर ही सुख और दुःख
का देने वाला है, तो यह सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि ईश्वर भी जीव
को कर्मों के अनुसार फल देता है। जो मनुष्य कर्मों से रहित हैं,
उनको ईश्वर किसी प्रकार कोई फल नहीं देता। जो फल प्राणियों
को निज-निज कर्मों के अनुसार मिलता है, उसमें जब ईश्वर भी
स्वतंत्र फल नहीं दे सकता तो अनीश्वर इन्द्र बिचारे को क्या गति
है, जो अन्यथा कर सके ? सब मनुष्य निज-स्वभाव (पूर्व-जन्म कृत
कर्म) के अनुसार ही चलते हैं। और तो क्या, देवता और असुर
भी स्वभाव का तिरस्कार नहीं कर सकते। देवों का ऊँच-नीच
भाव, सुख, दुःख और शत्रु-मित्र ये सभी बातें स्वभाव के अनु-
सार ही प्राप्त होती हैं। इन सब का नियामक कर्म ही है। सत्व,

रज, तम, ये तीनों गुण ही जगत् के स्थिति, पालन और लय के हेतु है। इन तीनों मे भी जगत् की बहुरङ्गी रचना करने मे रजोगुण प्रधान है। इसी रजोगुण से प्रेरित होकर मेघ संसार में वर्षा करते है। प्रत्यक्ष में हम लोग गोप हैं और हमारी आजीविका का विशेष सम्बन्ध गोवर्द्धन पर्वत से ही है। अतः मेरी समझ में इसीको पूजा करनी योग्य है।" अस्तु; भगवान श्रीकृष्णजी के ऐसे सार-गार्भित वचन सुनकर सब लोग इन्द्र के स्थान मे गोवर्द्धन की पूजा करने मे प्रवृत हो गये। सब गोप-ग्वाल अपने-अपने घरों में बने में हुए पकान्न और दही-दूध लेकर गोवर्द्धन की उपत्यका मे जा पहुँचे और श्रीकृष्ण भगवान् की बताई हुई विधि स गोवर्द्धन-पर्वत की पूजा करने लगे।

श्रीकृष्ण ने अपने आधिदैविक रूप से पर्वत मे प्रवेश किया। उस समय गिरिराज ने व्रजवासियों के दिये हुए सब पदार्थों को भक्षण किया तथा उन सब को आशीर्वाद भो दिया, जिससे सब गोपाल अपने यज्ञ को सफल हुआ समझकर अति प्रसन्न हुए।

जिस समय व्रजवासी गोवर्द्धन-पूजन का उत्सव मना रहे थे, उसी समय नारदजी इन्द्र-महोत्सव देखने की इच्छा से वहाँ आ पहुँचे। लोगों से पूछा—"यह इन्द्रोज है या कुछ और ?" व्रजवासियों ने उत्तर दिया—"ह भगवान्! इस वर्ष श्रीकृष्ण भगवान् को इच्छानुसार इन्द्रोज को स्थगित करके गोवर्द्धन की पूजा की गई है।" इतना सुनकर नारदजी उसी समय इन्द्रलोक को चले गय। इन्द्र ने स्वागत-पूर्वक नारदजो से पूछा—"कहिये भगवन,

आप प्रसन्न तो है?" नारदजी कुछ म्लान-मुख होकर बोले—"इन्द्र! मेरा चित्त तो सदैव प्रसन्न रहता है; परन्तु जो अधिकारी-वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं, वही प्रसन्न नहीं रह सकते। क्योंकि जिस सत्ता का वे उपभोग करते हैं, उसी को अन्य सत्ताधीश भी चाहता है और यदि उस का बल-वीर्य तथा शस्त्र-बल अधिक हुआ तो प्रथम सत्ताधीश से सत्ता छीनकर अपर सत्ताधीश प्रसन्न हो जाता है। जिस के पास वीर्य और शस्त्र का ज़ोर होता है, वही राजा होता है। यही कारण है कि गोकुल के निवासी गोप लोगों ने आपके इन्द्रोज को बन्द करके आपसे बलवान गोवर्द्धन को पूजा की है। आज से यज्ञादिकों में तो उसका भाग हो ही गया; क्या आश्चर्य है कि थोड़े ही समय की कृष्ण की संगति से म्हारे ऊपर चढ़ाई कर दे और इन्द्रासन भी उसके अधिकार । जाय।"

रदजी तो यह कहकर चले गये। परन्तु इन्द्र के मन को । हुआ। अपनी अवज्ञा को न सह सकने के कारण मेघों को आज्ञा दी कि वे गोकुल पर प्रलय-काल जैसी वर्षा करें, यहाँ तक कि वे ब्रज-मण्डल का सर्वनाश ंवर्तादिक मेघों ने इन्द्र की आज्ञा पाकर जब ब्रज पर वृष्टि आरम्भ की, तो सब गोप-ग्वाल घबड़ाकर श्रीकृष्ण । गये और उन्होंने प्रर्थना की—"हे भगवान्, इस हमारी रक्षा न की जायगी तो हम सब नष्ट

श्रीकृष्ण भगवान् ने गोप-गोपियो के आर्तनाद को सुनकर कहा—"तुम सब गोवर्द्धन पर्वत की शरण में चलो। वही तुम्हारी रक्षा करेगा।" जब सब ब्रजवासी गोकुल से निकलकर गोवर्द्धन की उपत्यका मे गये तो श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन को छतरी की तरह अपने हाथ पर उठा लिया और सब गोप-गोपी उसी की छाया मे मेघों की वृष्टि से बच गये। मेघों ने सात दिन तक अपार वृष्टि की। परन्तु सुदर्शन-चक्र के प्रभाव से ब्रजवासियों पर एक बूँद भी जल न पड़ा। यह कौतूहल देखकर तथा ब्रह्मा के द्वारा श्रीकृष्णावतार की बात जानकर इन्द्र स्वयं ब्रज मे आकर श्रीकृष्णजी के चरणों पर गिर गया और अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करके क्षमा-प्रार्थना करने लगा। इस प्रकार अपने अपराध को क्षमा कराकर देवराज इन्द्र चले गये और श्रीकृष्ण ने सातवें दिन गोवर्द्धन को नीचे रक्खा और ब्रजवासियों से कहा—"देखा तुमने पर्वतराज के प्रभाव को? मैंने इसीका बल पाकर सात दिन तक आप लोगो की रक्षा की और इसी के प्रबल प्रताप से देवराज इन्द्र को परास्त होना पड़ा। अब तुम लोगो को चाहिये कि प्रतिवर्ष इसी प्रकार गोवर्द्धन का पूजन करके अन्नकूट-उत्सव मनाया करो। यह मत समझना कि मैंने गोवर्द्धन की पूजा की नई रीति चलाई है। ब्रजवासी लोग पहले सदैव से इस पूजन को करते रहे हैं। बीच मे भूल गये। उसी को मैंने पुनः स्मरण करा दिया है।

तुलसी-विवाह

कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी ही के दिन तुलसी-विवाह का भी उत्सव होता है। तुलसी का दूसरा नाम ही विष्णु-प्रिया है। विष्णु भगवान् की स्वर्ण-मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा कराने के बाद उसे पुष्पादि से सजाकर गाजे-बाजे के साथ तुलसी-वृक्ष के समीप ले जाते हैं और वहाँ विधि-पूर्वक उनका विवाह कराया जाता है। उस समय स्त्रियाँ विवाह के गीत आदि भी गाती हैं।

इसके सम्बन्ध मे पद्म-पुराण की एक कथा प्रचलित है:—

कथा

जालन्धर नामक दैत्य के एक परम रूपवती पतिव्रता स्त्री थी। उसका नाम था वृन्दा। स्त्री के पातिव्रत से वह विश्व-विजयी बना हुआ था। उसके भय से ऋषियों ने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि जालन्धर हमारे धर्मानुष्ठान मे विघ्न डालता है। विष्णु भगवान् ने उसकी स्त्री का पातिव्रत नष्ट करके उसका बल क्षीण करने की ठान ली। भगवान् ने वृन्दा के आँगन में किसी मुर्दे का शरीर फेंकवा दिया। वृन्दा ने समझा यह उसके पति का शरीर है और विलाप करने लगी। उसी समय एक साधु ने आकर मृत शरीर को जीवित कर दिया और वृन्दा ने उसका आलिङ्गन किया। पीछे वृन्दा को मालूम हुआ कि यह सब विष्णु का छल है—उसका पति देव-

लोक में इन्द्र से युद्ध कर रहा है। वृन्दा का सतीत्व भ्रष्ट होते ही उसका पति युद्ध में हार गया और वह सचमुच मारा गया। इसपर क्रुद्ध होकर वृन्दा ने विष्णु-भगवान् को शाप दिया कि जिस प्रकार तुमने मुझे पति-वियोगिनी बनाया है, वैसे ही तुम भी स्त्री-वियोगी बनोगे। इसके बाद वृन्दा जालन्धर के साथ सती हो गयी।

विष्णु भगवान् अपने छल पर लज्जित हुए। इसपर देवताओं ने उन्हें समझाया और श्रीपार्वतीजी ने वृन्दा की चिता-भस्म में तुलसी, आँवला और मालती के वृक्ष लगाये। इसमें से तुलसी को भगवान् विष्णु ने वृन्दा का रूप समझा और उसे अपनाया।

वृन्दा के शाप से भगवान् को रामावतार में स्त्री-वियोग सहना पड़ा।

भगवान् की प्रसन्नता के लिये प्रतिवर्ष तुलसी का विवाह उनके साथ कराया जाता है।

भीष्म-पञ्चक

यह व्रत कार्तिक शुक्ला एकादशी से आरम्भ होकर पूर्णिमा को समाप्त होता है। इसीलिये इसे 'भीष्म-पञ्चक' कहते हैं।

एकादशी को प्रातःकाल स्नानादि करके पापों के नाश और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिये इस व्रत का संकल्प करे। घर के आँगन अथवा नदी के तट पर चार दरवाज़ों वाला मण्डप बनाकर उसे गोबर से लीपे और तत्पश्चात् सर्वतोभद्र की वेदी बनाकर उसपर तिल-युक्त घट की स्थापना करे। पाँचों दिन लगातार रात-दिन घी के दीपक जलाये, जाप करे और १०८ आहुतियाँ दे।

इस व्रत की कथा इस प्रकार है:—

कथा

राजर्षि भीष्म पितामह महाभारत में जिस समय शर-शय्या पर सो रहे थे, उसी समय भगवान् कृष्ण को साथ लेकर पाँचों पाण्डव उनके पास गये और धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से प्रार्थना की कि आप हम लोगों को कुछ उपदेश दें। युधिष्ठिर की इच्छानुसार पितामह ने ५ दिन तक राज-धर्म, वर्ण-धर्म और मोक्ष-धर्म आदि का महत्वपूर्ण उपदेश दिया। उनके उपदेश से भगवान्

श्रीकृष्ण ने कहा—"आपने जो कार्तिक शुक्ला ११ से पूर्णिमा तक ५ दिन सदुपदेश दिये हैं, उससे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ और आपकी स्मृति स्थापित करने के लिये मैं 'भीष्म-पञ्चक'—व्रत स्थापित करता हूँ।"

सातों वार के व्रत

रविवार, सोमवार और मंगलवार इन तीनों वारों के व्रतों का तो अधिक प्रचार हिन्दू-समाज भर में है; परन्तु बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि, इन चार वारों के व्रत यदा-कदा प्रयोजन पाकर किये जाते हैं। वस्तुतः मल-मास और कार्तिक मे स्नान करने वाली स्त्रियाँ सातों वारों के व्रत करती हैं। प्रायः रविवार और मंगलवार के व्रतों में फलाहार किया जाता है।

रविवार का व्रत

रविवार के व्रत में नमक का भोजन और तैल का सेवन निषेध है। रविवार के व्रत मे पारण या फलाहार करने वाले को उचित है कि सूर्य का प्रकाश रहते भोजन कर ले। यदि निराहार अवस्था में सूर्य अस्त हो जाय, तो दूसरे दिन सूर्योदय तक व्रत रखना उचित है। व्रत मे फलाहार हो या पारण, भोजन एक बार से अधिक न करना चाहिये। व्रत के अन्त मे पूजन के बाद रविवार की कथा इस प्रकार कही जाती है:—

कथा

कोई सास-बहू थीं। सास का लड़का अर्थात बहू का पति स्वयं सूर्य का अवतार था। वह सदैव अन्तर्द्धान रहा करता था। समय-समय पर घर में आता और फिर चला जाता था। वह

जब कभी आता-जाता, तब एक हीरा अपनी माँ को और एक स्त्री को दे जाया करता था। उसीसे उनका ख़र्च चलता था। उस पुरुष का नाम भी सूर्यबली था।

एक दिन सूर्यबली की माता ने उससे कहा—"बेटा! तुम जो कुछ देते हो, उससे हमारे खाने-पीने को भी पूरा नहीं पड़ता।" यह सुनकर लड़के ने कहा—"क्या तुम एक हीरा समूचा निगल जाती हो, जो तुम्हारा खर्च नहीं पूरा पड़ता? बड़े आश्चर्य की बात है! मैं जो हीरा तुम को देता हूँ, उस एक के मूल्य से तुम्हारा उम्र-भर का खाना-पीना चल सकता है। परन्तु तुम फिर भी भूखी रहती हो। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि तुम्हारी नीयत दुरुस्त नहीं है। एक घर में रहते हुए भी तुम सास-बहू दोनों एक दूसरी से छिपाकर भोजन करती हो। इसीसे तुम्हारी तृप्ति नहीं होती, चाहे जो कुछ भी जितना खाओ। इसके सिवाय तुम पुण्य-कार्य में भी पैसा ख़र्च नहीं करती। तुम को अपने भरण-पोषण के सिवाय अपने कर्तव्यों का कुछ ध्यान ही नहीं है। इसी कारण तुम्हारा अघाव नहीं होता और इसी से मैं घर में भी नहीं ठहरता हूँ। तब सास-बहू दोनों ने कहा—"अब से हम लोग नियम-पूर्वक कार्तिक-स्नान किया करेंगी।"

उन्होंने बारह वर्ष तक विधि-पूर्वक कार्तिक-स्नान किया। बारहवें वर्ष बहू ने अपने पति सूर्यबली से कहा—"अब हमको कार्तिक का उद्यापन (शान्ति) करना है, सो आप प्रबन्ध कर दीजिये।" तब सूर्यबली की इच्छा करते ही उनका घर धन-

धान्यादि सब सामग्री से परिपूर्ण हो गया। सबेरे के वक्त कार्तिक का पूजन करके बहू ने शाम को सूर्य भगवान् का पूजन किया। तब सूर्य भगवान् ने दर्शन देकर कहा—"जो वर माँगना हो, सो माँग लो।" स्त्री ने कहा—"मेरा पति मुझसे दूर-दूर रहता है, सो मुझे उसके संयोग का वरदान दिया जाय।" इस पर सूर्य 'तथास्तु' कहकर अन्तर्द्धान हो गये।

रात्रि होते ही सूर्यबली ने माँ से कहा—"आज मैं घर में ही सोऊँगा।" यह सुनकर बहू को प्रसन्नता हुई। उसने अच्छी तरह से सेज सँवारी। उसका पति आकर उस पर लेट रहा। सूर्य देवता मनुष्य के रूप में शयन करने लगे तो सारे संसार में अन्धकार हो गया। मनुष्यों की बात ही क्या है; सुर, मुनि, नाग, गंधर्वादि व्याकुल होकर बुढ़िया के घर दौड़ते आये। सबने बुढ़िया की शुश्रूषा करके कहा—"अपने पुत्र को जगाओ।" उसन शयनागार के पास जाकर पुत्र को बुलाया। तब वह उठकर बाहर चला आया। उसने देवताओं से कहा—"जब तक ये सास-बहू कार्तिक नहाएँ, तब तक इनके घर गंगा बहें और ऋद्धि-सिद्धियाँ इनके घर वास करें।" तब देवताओं ने सर्वसम्मति से सूर्य भगवान् का आदेश स्वीकार किया। तभी से स्त्री-समाज में कार्तिक-स्नान का विशेष माहात्म्य माना गया है। कार्तिक-स्नान करने वाली स्त्री के घर सम्पूर्ण देवताओं और ऋद्धि-सिद्धियों का वास रहता है तथा कार्तिक-स्नान से सम्पूर्ण पापों का नाश होता है और अन्त में स्वर्ग का वास होता है।

कार्तिक-स्नान करते हुए भी यदि रविवार का व्रत विधिवत् न किया जाय तो कार्तिक-स्नान का फल नहीं प्राप्त होता।

कार्तिक के अतिरिक्त जब दूसरे महीनों के सम्बन्ध मे, जैसे-माघ वैशाख आदि के स्नान और व्रत मे, यह कथा कही जाती है, तब कार्तिक के स्थान में अपेक्षित महीने का नाम योजित कर दिया जाता है।

सोमवार का व्रत

साधारणतया सोमवार का व्रत दिन के तीसरे पहर तक रक्खा जाता है। इस व्रत मे फलाहार या पारण का कोई खास नियम नहीं है। किन्तु यह ज़रूरी है कि दिन-रात्रि में केवल एक ही बार भोजन किया जाय। सोमवार के व्रत मे शिव-पार्वती का पूजन होता है। कार्तिक-स्नान करने वाली स्त्रियाँ सोमवार को जो कथा कहती है, वह सोमवती अमावस्या से सम्बन्ध रखती है।

इस के सम्बन्ध मे यह प्रथा है कि भले घर की स्त्रियाँ सोमवती अमावस्या को पीपल के या तुलसी के वृक्ष की एक सौ आठ परिक्रमा करती हैं। सौभाग्यवती स्त्रियाँ सम्पूर्ण शृङ्गार करके तुलसी को परिक्रमा देती हुई, कोई पदार्थ, जैसे लड्डू, छुहारा, आम, अमरूद इत्यादि फल या नगद पैसा, एक-एक प्रत्येक परिक्रमा के अन्त में तुलसी या पीपल के वृक्ष पर रखती जाती हैं। यह परिक्रमाओं की गणना की विधि है। पुनः वह पदार्थ ब्राह्मणों मे वितरण कर दिया

जाता है। परिक्रमा कर चुकने बाद धोबिन की माँग सिन्दूर से भरकर उसके ललाट में बूँदा लगाया जाता है। उसके आँचल मे कुछ मिठाई और पैसे डालकर सौभाग्यवती उसके पैर पड़ती है। तब धोबिन अपनी माँग का सिन्दूर पैर पड़ने वाली की माँग मे लगा देती है और अपने ललाट का बूँदा भी लगा देती है। इसी को सुहाग देना कहते हैं। इस के उपलक्ष में जो कथा कही जाती है, वह इस प्रकार है:—

कथा

एक घर में माँ-बेटी और बहू तीन स्त्रियाँ थीं। उस घर में प्राय: एक साधु भीख माँगने आया करता था। जब कभी बहू उसे भीख देने जाती, तो वह भीख लेकर उसे यह आशीर्वाद दिया करता था—'दूधो नहाओ, पूतों फलो।' परन्तु जब लड़की भीख देने जाती, तब साधु कहा करता था—'धर्म बढ़े बेटी गंगा-स्नान।'

एक दिन लड़की ने अपनी माता से कहा—"जो साधु भीख लेने आता है, वह हम दोनों को दो तरह से आशीर्वाद दिया करता है।" माता ने एक दिन बाबा से प्रश्न किया—"आप लड़की को जो आशीर्वाद देते हैं, उस का क्या आशय है?" तब साधु ने कहा—"इस लड़की का सौभाग्य खण्डित है। इसी कारण मैं ऐसा कहता हूँ।" इस पर माता ने साधु से प्रार्थना की—"कुछ ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे इसका सौभाग्य अटल हो।" साधु ने

कहा—"तुम्हारे गाँव की जो सोमा नाम की धोबिन है, यह लड़की उसके घर की टहल किया करे। यदि और कुछ न बन पड़े, तो जहाँ उसके गधे बँधते हैं, उसी जगह को यह रोज़ झाड़-बुहार कर साफ कर दिया करे। वह पतिव्रता स्त्री है। उसके आशीर्वाद से इस लड़की का सौभाग्य अटल हो सकता है।"

साधु यह सलाह देकर चला गया। वह लड़की उसीके दूसरे दिन से सोमा धोबी के घर जाकर नित्य गधों की लीद उठाकर फेंक आती और थान साफ करके चली आती थी। धोबी-धोबिन दोनों को आश्चर्य था कि हमारे गधों की थान कौन साफ कर जाता है। एक दिन यह रहस्य जानने के लिये धोबिन छिपकर बैठ रही। ज्यों ही लड़की गधे की लीद फेंक चुकी और झाड़ू लेकर झाड़ने लगी, त्यों ही धोबिन ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—"बेटी, तू तो भले घर की लड़की है, मेरी टहल करने क्यों आती है?" तब लड़की ने साधु की कही हुई सब बातें उसे सुनाईं। सोमा धोबिन ने उसे आशीर्वाद देकर विदा किया। पुनः उसके घर जाकर उसकी माता से कहा—"जब इस लड़की की शादी हो तब फेरे (भांवरें) पड़ने के समय मुझे बुला लेना। मैं उस को अपना सौभाग्य दूँगी।"

कालान्तर से जब लड़की के विवाह का समय आया, तब उसकी माता ने सोमा धोबिन को निमन्त्रण दिया तथा फेरे की तिथि और समय की सूचना भी दी। सोमा अपने घर से लड़की के घर जाते समय अपने परिवार के लोगों से कह गई कि मेरी

ग़ैरहाज़िरी में यदि मेरा पति मर जाय, तो जब तक मैं न आऊँ, उस की दाह-क्रिया न करना। जिस समय सोमा ने लड़की की माँग में अपनी माँग का सिन्दूर लगाया, उसी समय उस (सोमा) का पति मर गया। घर के लोगों ने विचारा कि यदि वह आ जायगी, तो अधिक विलाप-कलाप करेगी। सम्भव है कि पति के साथ सती होने को तैयार हो जाय। इसलिये यही उचित है कि उसके आने के पहले ही लाश को जला दिया जाय। इसी विचार से वे लोग धोबी की लाश को रथी पर रखकर ले चले।

लोग धोबी के शव को लिये हुए श्मशान की ओर जा रहे थे, उधर से सोमा घर को वापस आ रही थी। उसने पूछा—"यह क्या है और कहाँ लिये जा रहे हो?" लोगों ने कहा—"तेरे पति को जलाने के लिये जाते है।" पास ही एक पीपल का पेड़ था। धोबिन ने अपने पति के शव को उसी जगह रखवा लिया। उसके हाथ में उस समय वेई (मिट्टी का पुरवा जो व्याह के घर से उसे मिला था) थी। उसने उसको फोड़कर उसके १०८ टुकड़े किये। अपने पातिव्रत-धर्म का ध्यान और शिव-पार्वती का स्मरण करते हुए उस ने पीपल के वृक्ष की एक सौ आठ परि-क्रमा की। इसके बाद उसने अपनी पैती (तर्जनी) चीरकर अपना रक्त पति के शव पर छिड़क दिया, तो वह इस तरह से उठ बैठा, मानों सोते से जगा हो! वह बोला—"आहा, कैसी गहरी नींद आई थी!" तब लोगों ने कहा—"नींद क्या आई थी, तू तो मर ही चुका था, अपनी स्त्री के पातिव्रत के प्रभाव से पुनः जीवित हुआ है।"

कहा जाता है कि इसी घटना के बाद विवाह में धोबिन से सुहाग लिये जाने की प्रथा चली है। कार्तिक-स्नान के सम्बन्ध में स्त्रियाँ जा सोमवार को तुलसी या पीपल की परिक्रमा करती हैं, उसकी विधि इस प्रकार है—पहले सोमवार को धान और पानी से परिक्रमा की जाती है, दूसरे को दूध के पिण्डे से, तीसरे को वस्त्र से और चौथे को धातु के बर्तन और जेवर से। जिसको यह सब करने की गुंजाइश नहीं होती, वे किसी भी चीज़ से परिक्रमा करके विधि पूरी करती हैं।

मंगलवार के व्रत की कथा

एक बुढ़िया थी। वह प्रत्येक मंगल को व्रत किया करती थी। उसके पुत्र का नाम मंगलिया था। मंगल के दिन बुढ़िया न तो लीपती थी और न मिट्टी खनती थी। एक दिन मंगल देवता साधु का वेश धारणकर उसके घर आये और आवाज़ लगाई—"कौन है माई! घर मे क्या करती है?" बुढ़िया ने बाहर आकर जवाब दिया—"तुम्हारा एक बालक है, वह गाँव मे खेलने चला गया है। मै गृहस्थी का काम कर रही हूँ—क्या आज्ञा है कहिये?" तब साधु बोला—"मुझको बड़ी भूख लगी है। भोजन बनाना है। इसके लिये तू थोड़ी-सी ज़मीन लीप दे. तो तुझको बड़ा पुण्य होगा।" यह सुनकर बुढ़िया ने जवाब दिया—"आज तो मैं मंगल-व्रती हूँ—इस कारण लीप तो नहीं सकती, कहिये तो पानी छिड़क-कर चैाका लगा दूँ। उसी जगह आप रसोई बना ले।"

साधु ने कहा—"मै तो गोबर से लिपे हुए चौके मे रसोइ बनाता हूँ।" बुढ़िया ने कहा—"ज़मीन लीपने के सिवाय और जिस तरह से कहिये, मै आपकी सेवा करने को तैयार हूँ।" तब बाबा ने फिर कहा—"खूब सोच-समझकर कह, जो कुछ भी कहूँ, तुझे करना होगा।" इस पर बुढ़िया ने तीन बार यह वचन दिया—"जो कुछ भी आप कहेंगे, मै करूँगी।" तब साधु बोला—"अपने लड़के को बुलाकर औंधा लिटा दे। उसी की पीठ पर मै भोजन बनाऊँगा!" बाबा की बात सुनकर बुढ़िया चुप रह गई। बाबा ने फिर कहा—"माई बुला ला लड़के को, अब सोच-विचार क्या करती है?"

बुढ़िया 'मंगलिया' 'मंगलिया' कहकर पुकारने लगी। थोड़ी देर मे लड़का आ गया। बुढ़िया ने कहा—"जा तुझे बाबा बुलाता है।" लड़के ने बाबा के पास जाकर पूछा—"क्या है महाराज?" बाबा ने कहा—"जा अपनी माँ को बुला ला।" बुढ़िया आई तो बाबा ने उस से कहा—"तू ही लड़के को लिटा दे और अँगीठी लगा दे।" बुढ़िया ने मगल देवता का स्मरण करते हुए लड़के को औंधा लिटा दिया और उसकी पीठ पर अँगीठी लगा दी। फिर उस ने बाबा से कहा—"अब आपको जो कुछ करना हो कीजिये; मै जाकर अपना काम करूँगी।"

साधु ने लड़के की पीठ पर लगी हुई अँगीठी मे आग बनाई और उसी पर भोजन बनाया। जब भोजन बन चुका, तो उस ने बुढ़िया को बुलाकर कहा—"अब अपने लड़के को बुला ला; वह भी भोग-प्रसाद ले जाय।" बुढ़िया बोली—"यह कैसे आश्चर्य की

बात है कि उसी की पीठ पर आपने आग जलाई, और उसी को अब प्रसाद के लिये बुला रहे है। क्या यह सम्भव है कि वह अब भी जीता बचा हो? कृपा करके अब तो आप मुझे उसका स्मरण भी न कराइये। आप भोग लगाइये और जहाँ जाना हो जाइये।"

साधु के बहुत समझाने और आग्रह करने पर बुढ़िया ने ज्यों ही आवाज़ लगाई—"मंगलिया! आ बाबाजी का प्रसाद ले जा।" त्यों ही लड़का एक तरफ से दौड़ता हुआ आ गया। साधु ने लड़के को प्रसाद दिया और कहा—"माई! तेरा व्रत सफल है। तेरे हृदय मे दया है और अपने इष्ट के प्रति अटल विश्वास तथा निष्ठा है। इस कारण तेरा कभी कोई अनिष्ट नही हो सकता।"

बुधवार के व्रत की कथा

किसी गाँव का रहनेवाला एक बनिया दूर-दूर तक देशान्तरों मे वाणिज्य-व्यापार करने जाया करता था। एक समय जब बनिया बनिज को गया हुआ था, उसकी ग़ैरहाज़िरी मे बुध के दिन उसकी स्त्री के गर्भ से एक सुन्दर बालक पैदा हुआ।

बनिये को विदेश मे फिरते हुए बारह वर्ष का समय व्यतीत हो गया। इस बीच मे उसने बहुत धन पैदा किया। अपने परिश्रम से पैदा की हुई सम्पत्ति को गाड़ियों में भरकर वह घर की तरफ चला। जब वह अपने गाँव के समीप आ पहुँचा, तो एक जगह उस की गाड़ियाँ अटक गई। बनिये ने गाड़ी चलाने

के लिये यथा-साध्य सब उपाय किये, परन्तु वे अपनी जगह से तिल भर भी नहीं चलीं। आख़िर उसने आसपास के गाँवों से बड़े-बड़े पण्डितों को बुलाकर पूछा—"ऐसा कुछ उपाय बताइये, जिसमें गाड़ियाँ चलकर घर तक पहुँच जायँ।" पण्डितों ने विचार करके कहा—"यदि बुधवार के दिन का उत्पन्न हुआ कोई बालक गाड़ियों को हाथ लगा दे, तो सम्भव है कि गाड़ियाँ चल जायँ।"

निदान वह बनियाँ अपने ही गाँव में जाकर स्त्रियों से पूछने लगा—"यदि किसी का बालक बुधवार का जन्मा हुआ हो, तो मुझे बतलाओ।" उन स्त्रियों ने पूछा—"तुम कहाँ के रहने वाले हो और किसलिये ऐसे बालक की तालाश में हो?" तब बनिये ने कहा—"मैं तो इसी गाँव का रहनेवाला हूँ। बारह बरस के बाद विदेश से आया हूँ। इसी कारण तुमको अजनबी-सा मालूम पड़ता हूँ।" स्त्रियों ने कहा—"तुम इधर-उधर कहाँ तलाश करते फिरते हो, जैसा बालक तुम चाहते हो, तुम्हारे ही घर में मौजूद है। उसी को लिवा ले जाओ और अपनी गाड़ी चला लो।"

बनिये को स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि मेरे घर भी कोई लड़का है? स्त्रियों के कहने से वह अपने ही घर की ओर चला गया। अपने द्वार पर पहुँचकर उसने देखा कि एक सुन्दर बालक खेल रहा है। उसने बालक से पूछा—"तुम किसके लड़के हो?" उसने उसी का नाम बतला दिया। तब बनिया बोला—"मैं

ही तुम्हारा पिता हूँ। मेरी गाड़ियाँ अटक गई हैं, सो चलकर हाथ लगा दो।" लड़का फौरन पिता के साथ चला गया। उसने ज्यों ही गाड़ियों में हाथ लगाया, त्यों ही गाड़ियाँ चलने लगी।

घर जाकर बनिये ने बड़ी खुशी मनाई। लड़के के सब संस्कार कराये और बहुत-सा दान-पुण्य किया। तभी से यह प्रसिद्ध है कि बुधवार का जन्मा हुआ लड़का बड़ा प्रतापी और बुद्धिमान होता है। जो काम पिता से नहीं बन पड़ता, उसे पुत्र पूरा कर दिखाता है।

कहा जाता है कि उसी समय से स्त्रियों मे बुधवार का व्रत रहने की परिपाटी चली है। बुध के व्रत में हरा नाज खाना और हरी वस्तुओं का दान देना शुभ माना गया है।

वृहस्पतिवार के व्रत की कथा

कोई एक बड़ा धनवान् साहूकार था। उसकी स्त्री बड़ी कंजूस थी। कभी दान-पुण्य नहीं करती थी और न कभी शुभ कार्यों मे उसका मन लगता था। एक वृहस्पतिवार के दिन एक साधु उसके द्वार पर भिक्षा माँगने आया। उस समय वह अपने घर का आँगन लीप रही थी। साधु ने आवाज़ लगाई—"मिले माई कुछ दक्षिणा।" इस पर वह स्त्री नाराज़ होकर बोली—"तुझे सूझता नहीं है; मेरे दोनों हाथ गोबर मे सने है? तुझे दक्षिणा किस तरह से दूँ। चल आगे देख।" तब साधु चला गया। दूसरे दिन फिर

साधु आया, तब स्त्री लड़के को खिला रही थी। साधु ने फिर आवाज़ लगाई। उसके उत्तर में स्त्री ने कहा—"आज भी मुझे फ़ुरसत नहीं है। मुझे अपने ज़रूरी कामों से अवकाश हो, तो तुम्हे दक्षिणा दूँ। चलो आगे और घर माँग लो।" साधु बेचारा फिर चला गया। तीसरे दिन फिर साधु आया तब साहूकारिन किसी गृहस्थी के काम में लगी हुई थी। उसने बाबा को देखते ही कहा—"तुम हमेशा ऐसे समय आते हो, जब मुझे अपने काम से अवकाश नहीं होता। मुझे अवकाश मिले तो तुमको दक्षिणा दूँ।" साधु बोला—"माई! तुम्हारे अवकाश का कौन-सा समय होता है?" स्त्री ने जवाब दिया—"सबेरे से शाम तक किसी समय दम भर की फ़ुरसत नही मिलती। मैं तुमको अवकाश का कौन-सा समय बताऊँ।"

तब साधु ने उससे पूछा—"क्यों माई! क्या किसी समय तुमको फ़ुरसत नही रहती? यदि ऐसा हो जाय कि तुम को हमेशा फ़ुरसत रहे, कभी कोई काम न रहे, तब तो तुम मुझ को दक्षिणा दे सकोगी?" स्त्री बोली—"हाँ महाराज! ऐसा हो जाय तो आपकी बड़ी कृपा होगी।" बाबा ने कहा—"तब तुम मेरा कहना करो। वृहस्पतिवार के दिन सब घर का कूड़ा झाड़कर गाय-भैंसों को थान मे लगा दिया करो। फिर सिर से स्नान किया करो और अपने घर वालों से कह दो कि वे लोग वृहस्पतिवार को अवश्य बाल बनवाया करें। तुम जब रसोई बनाया करो तो सिद्ध हुए सब पदार्थ चूल्हे के सामने न रखकर चूल्हे के पीछे रक्खा

करो और शाम को कुछ देर के बाद दिया जलाया करो। इन सब कामों को लगातार चार वृहस्पतिवार करने से ईश्वर चाहेगा तो तुमको फिर कोई काम करने को न रहेगा; काफी अवकाश रहा करेगा। परन्तु मुझे दक्षिणा दिया करना।" स्त्री ने कहा—"यदि आप की बताई तरकीब से मुझको काफी अवकाश मिला, तो अवश्य दक्षिणा दूँगी।"

बाबा विधि बतलाकर चला गया। साहूकारिन उसके कहे अनुसार सब काम करने लगी। कुछ दिनों के बाद उसकी यह दशा हो गई कि उसके घर में जो धन-धान्य का ढेर लगा रहता था, वह समाप्त हो गया। उसे यहाँ तक दरिद्र ने घेर लिया कि अब उसे खाने-पीने के भी लाले पड़ गये। वह दिन भर हाथ पर हाथ रक्खे बैठी यही सोचा करती कि कुछ अन्न मिले, तो पीसकर भोजन बनाऊँ। कुछ दिनो मे फिर वही साधु आया और उसने पूर्ववत् आवाज़ लगाई। साहूकारिन तुरन्त बाहर दौड़ी आई और बाबा-जी के पैरों पर गिरकर बोली—"महाराज! आपने अच्छी विधि बताई कि अब मुझे खाने को भी अन्न नही मिलता। अब तुमको दक्षिणा दूँ तो कहाँ से दूँ?"

बाबा बोले—"जब तुम्हारे घर मे सब कुछ था, तब भी तुम दक्षिणा नहीं देती थी। अब तुमको काफी अवकाश है, तब भी कुछ नहीं देती। अब क्या चाहती हो, सो कहो?" तब स्त्री ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"मुझे आप ऐसी युक्ति बताइये, जिसमे मेरी दशा फिर जैसी की तैसी हो जाय। अब

मैं प्रण करके कहती हूँ कि आप जो उपदेश देंगे, उसी का अनुकरण करूँगी।" तब साधु ने कहा—"अपने घर वालों से कह दो कि वे शुक्रवार या बुधवार को बाल बनवाया करें। वृहस्पति-वार को भूलकर भी चौर न करायें। तुम खुद कभी सूर्योदय के बाद सोकर नहीं उठना। घर में खूब सफाई रखना। सन्ध्या को ठीक समय पर दिया जलाना। रसोई बनाकर चूल्हे के सामने रखना, भूखे-प्यासे को अन्न-जल दो, और बहन-भानजे को उचित दान-मान से सन्तुष्ट रक्खा करो, तो ईश्वर तुमको फिर जैसी थी, वैसी ही कर देगा।" स्त्री ने साधु के बताये अनुसार आचार-विचार से रहना शुरू कर दिया और वह दान-पुण्य भी करने लगी। तब ईश्वर की कृपा से थोड़े ही दिनों में उसका भण्डार भरपूर हो गया। सब काल-कण्टक दूर हो गये।

सदाचार और स्वच्छता के कारण जैसे उक्त साहूकारिन के दिन फिरे, वैसे भगवान् सब सदाचारिणी स्त्रियों का कल्याण करते हैं। वृहस्पति देवता शुद्धता और स्वच्छता से प्रसन्न रहते हैं। वे सभी का कल्याण करते हैं।

वृहस्पतिवार के व्रत मे पीला दान, पीले अन्न का भोजन और पीत-वसन धारण करना कल्याणकारी है।

शुक्रवार के व्रत की कथा

एक प्रधान (कायस्थ) का लड़का था और एक था साहूकार का। दोनों में परस्पर बड़ी मित्रता थी। प्रधान के लड़के की स्त्री

घर मे थी, परन्तु साहूकार के लड़के की स्त्री का गौना नहीं हुआ था। उसकी स्त्री अपने पिता के घर थी। दिन भर दोनो मित्र साथ-साथ रहते। रात्रि को जब एक दूसरे से अलग होकर अपने-अपने घरों को जाने लगते, तब प्रधान का लड़का अपने मित्र से कहा करता—"हम तो घर जाकर आराम से सोयेंगे। तुम भी घर जाकर पड़ रहना।"

एक दिन साहूकार के लड़के ने मित्र से पूछा—"क्यों मित्र! तुम जो यह रोज़ कहा करते हो कि हम घर जाकर सो रहेंगे, तुम घर जाकर पड़ रहना; इसका क्या मतलब है?" तब प्रधान का लड़का बोला—"मै जो कुछ कहता हूँ, बहुत ठीक कहता हूँ। मैं जिस वक्त बाहर से घर जाता हूँ, तो मेरे सोने के कोठे में दिया जलता हुआ मिलता है। स्त्री ब्यालू का थाल लगाये, पान बनाये, सेज बिछाये, हमारी प्रतीक्षा करती रहती है। जिस वक्त मै पहुँचूँगा, वह अति प्रेम और विनय-पूर्वक मेरा स्वागत करेगी। मेरे पैर धुलाकर ब्यालू परोसेगी। मैं ब्यालू कर चुकूँगा, तब वह पान देगी। पान चाबकर मैं लेट रहूँगा। वह मेरे पैर दबायेगी। इस प्रकार मै सुख से सोकर रात्रि बिताऊँगा। पर जब तुम घर जाओगे और ब्यालू के लिये कहोगे, तो तुम्हारी माँ-बहिन और भावज वगैरह कोई तुमको ब्यालू दे देंगी। ब्यालू कर-करा के तुम किसी कोने मे पड़कर सो रहोगे। सबेरे झटपट उठोगे और काम मे लग जाओगे। इस प्रकार हमारे तुम्हारे रात्रि गुज़ारने मे बहुत अन्तर है।

मित्र की बातें सुनकर साहूकार के लड़के को बात लग गई। वह बोला—"अब तो ससुराल जाकर पहले स्त्री को लिवा लाऊँगा, तब पीछे दूसरा काम करूँगा।" तदनुसार उसने घर आकर ससुराल जाने की तैयारी की। घर के लोगों ने समझाया कि अभी द्विरागमन का समय नहीं है। शुक्र का उदय होने पर विदा का सुदिन-शोधन होगा। उसकी सूचना तुम्हारी ससुराल वालों को दी जायगी। तब यहाँ से लवाज़मों के साथ जाना और विदा करा लाना। परन्तु लड़के ने किसी की बात नहीं मानी। वह ससुराल चला गया।

दामाद को सहसा आया देखकर ससुराल वालों ने उससे पूछा—"आप इस समय कैसे आये?" उसने जवाब दिया—"मैं विदा कराने आया हूँ।" इस पर वहाँ भी सब लोगों ने उसे समझाया—"अपने लोगों में इस तरह विदा नहीं होती। आपको सगुन-साइत से आना चाहिये।" लड़के ने कहा—"तुमको इससे क्या प्रयोजन है; मेरी व्याही है तो मेरे साथ भेज दो। यदि तुम विदा नहीं करोगे, तो मैं भी घर जाकर जहाँ जी चाहेगा, विदेश को चला जाऊँगा।" तब तो उन लोगों ने लाचार होकर लड़की को उसके साथ भेज दिया। जैसे वह पैदल चलता हुआ आया था, उसी तरह कुछ रात्रि रहते लोगों ने पैदल ही लड़की को उसके साथ विदा किया।

कुछ दूर चलने पर सूर्योदय होते ही शुक्र देवता मनुष्य के रूप में साहूकार के लड़के के सामने आ गये। वह रास्ता रोककर

खड़े हो गये और बोले—"कहो तो, कहाँ चोरी-सो किये चले जाते हो ?" लड़के ने जवाब दिया—"अपनो व्याही को विदा कराकर लिये जाता हूँ, इसमे चोरी की कौन-सी बात है ?" तब शुक्र देवता ने कहा—"यह तेरी व्याही नहीं, अभी तो मेरी व्याही है। मेरी आज्ञा के बिना ही तू लिवाये जाता है, तो यह चोरी नही और क्या है ?" इस बात से साहूकार का लड़का बहुत नाराज़ हुआ। परन्तु शुक्रदेव ने स्त्री का हाथ पकड़ लिया। इस पर दोनों में झगड़ा हो गया। एक कहता था, मेरी व्याही है, दूसरा कहता था, तेरी नहीं, मेरो व्याही है। वे दोनों इसी तरह झगड़ते हुए पास ही एक गाँव मे चले गये। वहाँ लोगों से पञ्चायत करने के लिये कहा। इस पर गाँव के मुखिया-पच इकट्ठे हुए। एक प्रवोण पण्डित भी उन पंचो में था।

पंचों ने बनिये के लड़के से पूछा—"तुम अपना बयान दो और जो कुछ कहो उसका सबूत पेश करो।" तब उसने कहा—"यह स्त्री मेरी विवाहिता है। अमुक गाँव के अमुक साहूकार की लड़की है। मै इसकी विदा कराके अपने घर को जा रहा था। रास्ते में इस अपरिचित व्यक्ति ने रोककर झगड़ा मचा दिया। कहता है, यह स्त्री तेरी है ही नही, मेरी है।" इसके बाद पंचो ने शुक्र देवता से पूछा—"अब तुम अपना बयान दो।" तब वह बोला—"मै शुक्र देवता हूँ। सनातनधर्म के मानने वाले सम्पूर्ण आर्य-सन्तान मे यह परिपाटी है कि देव उठ जाने पर शुक्र का उदय होने के पश्चात् ही कोई शुभ अनुष्ठान करते है—खास तौर

से द्विरागमन् की विदा तो शुक्र के अस्त मे होती ही नहीं। विवाह के बाद जब तक द्विरागमन् न हो जाय, तब तक स्त्री मेरी व्याही मानी जाती है। मै शुक्र देवता हूॅ, इसलिये यह स्त्री इसकी नही, अभी मेरी है।" यह सुनकर पंचों ने शुक्र देवता के ही पक्ष मे फैसला किया। उन्होंने कहा—"तुम इस लड़की को इसके बाप के घर वापस कर आओ। शुक्र का उदय होने पर विदा कराकर ले जाना।" तब साहूकार का लड़का लाचार होकर स्त्री फिर ससुराल वापस छोड़कर आप अपने घर को चला गया। फिर शुक्र का उदय होने पर विधि-पूर्वक सुदिन-शोधन होकर वह विदा कराई गई। तब पति-पत्नी दोनों आनन्द-पूर्वक रहने लगे।

शनिवार के व्रत की कथा

यादव-कुल-श्रेष्ठ नन्द-नन्दन श्रीकृष्णचन्द्रजी की श्रेष्ठ पटरानी का नाम रुक्मिणी महारानी था। रुक्मिणी की एक छोटी बहन बड़ी ही कर्कशा, कलह-कारिणी और दरिद्र प्रकृति की स्त्री थी। इसी कारण कोई राजकुमार उसके साथ विवाह नहीं करता था। एक दिन रुक्मिणी ने भगवान् से प्रार्थना की—"मेरी एक बहिन बहुत बड़ी हो गई। कोई उसके साथ व्याह नही करता। इसलिये आप कृपा करके कहीं उसका विवाह करा दीजिये। श्रीकृष्ण भगवान् ने उत्तर दिया—"जब वह पूरी कुलक्ष्मी, कर्कशा और कलह-कारिणी है, तब जिस घर मे जायगी उसी घर का सर्वनाश

करेगी। उसके कारण परिवार भर को दुःख होगा। इस कारण तुम कहो तो मैं उसका विवाह किसी वनवासी मुनि के साथ करा दूँ। सम्भव है कि यदि मुनि के आचार-विचार का प्रभाव उस पर पड़ गया, तो वह सुधर भी जाय। यदि न भी सुधरी तो जंगल में किससे लड़ेगी?" रुक्मिणी महारानी ने कहा—"बहुत अच्छी बात है। आप तो सर्वान्तर्यामी हैं; घट-घट जानने वाले हैं, जो आपको उचिय समझ पड़े, सो कीजिये।

भगवान् ने कुलक्ष्मी का विवाह एक मुनि के साथ करा दिया। मुनिवर एक ज्ञानी-ध्यानी साधु महात्मा थे। रात-दिन वह भजन-पूजन मे लगे रहते थे। इस कारण स्त्री को उनके साथ झगड़ने का मौका ही नहीं मिलता था। परन्तु जब मुनि भगवान् का पूजन करके सन्ध्या-सबेरे शंख बजाते थे, तो उन की स्त्री धाड़ मार-कर रोती थी। इस बात से मुनि को बड़ा दुःख होता था कि यदि और कुछ नहीं तो इसके कारण निश्चिन्तता-पूर्वक भजन-पूजन नहीं कर सकते।

एक दिन मुनि ने स्त्री से पूछा—"तुम सच कहो, तुमको क्या अच्छा लगता है? जिस बात मे तुम्हारा जी लगे उसी के अनु-कूल मैं तुम्हारा प्रबन्ध कर दूँ।" वह बोली—"जितने काम तुम करते हो, उन सब से मुझे घृणा है। पितृ-पूजा, देवार्चन, दान-पुण्य, होम-जप तथा यज्ञादि कर्मों से मुझको बड़ी घृणा है। मुझे तो ऐसी जगह अच्छी लगती है, जहाँ खूब कलह होता हो। जीवों को उत्पी-ड़ित और सन्तप्त देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है।" तब मुनि ने

कहा—"अच्छा मेरे साथ चलो, मै तुमको ऐसे हो योग्य स्थान पर पहुँचा देता हूँ, जहाँ तुम्हारा जी लगेगा।" तब स्त्री मुनि के साथ-साथ चलो। मुनि सघन जङ्गल मे एक बड़ा ऊँचा पीपल का पेड़ देखकर स्त्री को उसी पर बिठाकर आप अपने आश्रम को चले आये।

आधी रात को कुलक्ष्मी चीत्कार करके रोने लगी। उस समय रुक्मिणी भगवान् को ब्यालू करा रही थीं। बहिन का रोना सुनकर उन्होंने कहा—"आपने अच्छी जगह मेरी बहिन को शादी कराई। वह वनवासी मुनि उसे न जाने कहाँ जङ्गल मे छोड़ आया है। आप भी सुनिये, वह इस समय कैसा विलाप-कलाप कर रही है।" तब भगवान् ने कहा—"तुम्हारी बहिन पूरी कङ्काली है। वह मुनि के भजन-पूजन मे बाधा देती होगी। इसी कारण मुनि ने उसे निकाल दिया होगा। संसार में भले के साथी सब होते हैं, बुरे का साथी कोई नहीं होता।" तब रुक्मिणी ने फिर प्रार्थना को कि अब उसका निर्वाह कैसे हो? इसका कुछ उपाय कीजिये।" भगवान् ने कहा—"अच्छा! मै देखता हूँ।"

तब भगवान् श्रीकृष्णजी उसी समय उस स्थान पर गये, जहाँ कुलक्ष्मी पीपल के पेड़ पर बैठी रो रही थी। उन्होंने पूछा—"इस समय यहाँ बैठी क्यों रो रही हो?" वह बोली—"मुनि मुझको बिठाकर चले गये हैं। यहाँ अकेली बैठे-बैठे जी घबड़ाता है। इसी कारण रोती हूँ।" भगवान् ने कहा—"तुम मुनि को हैरान-परेशान करती होगी? उनके भजन-पूजन मे बाधा देती होगी। इसी कारण

उन्हा ने तुमको त्याग दिया है। मै अब मुनि को तो दबा नही सकता। अगर तुम इस बात पर राजी हो जाओ कि अब कभो अपने पति के प्रतिकूल आचरण न करोगी, तो कुछ उपाय हो सकता है।" यह सुनकर वह बोली—"मै आपकी आज्ञा मानने को तैयार हूँ, पर क्या करूँ, अपने स्वभाव से लाचार हूँ।"

इसपर भगवान् ने कहा—"ऐसो कलह-कारिणी के लिये एकान्तवास से अच्छा और कोई उपाय नही हो सकता। इसलिये मेरो आज्ञा है कि अब तुम सदैव इसी वृक्ष पर वास करो। इसमे सम्पूर्ण देवताओं का वास है। मेरी अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मी का भो इसो मे निवास है। शनिवार के दिन जो कोई सूर्योदय के पूर्व पीपल के वृक्ष की पूजा करेगा, वह तो लक्ष्मीजी को पहुँचेगा; परन्तु जो सूर्यादय के बाद पोपल का पूजन करेगा वह पूजन तुमको अर्पित होगा। पुनः जिनको पूजा तुमको मिलेगी, उन्हो के घर मे तुम्हारा वास भो होगा।"

———

देवोत्थानी एकादशी

कार्तिक शुक्ला एकादशी को देवठन या देठवन भी कहते हैं। कहा जाता है कि इस दिन क्षीर सागर मे सोये हुये विष्णु भगवान् जागे थे।

इसके सम्बन्ध में कथा प्रचलित है कि भाद्रपद मास की एकादशी को विष्णु भगवान् ने शंखासुर नामक महाबली राक्षस को मारा था और विपुल परिश्रम करने के कारण उसी दिन सो गये थे। उसके बाद कार्तिक शुक्ला एकादशी को जागे थे। विधि-पूर्वक विष्णु भगवान् की पूजा ही इस व्रत का मुख्य ध्येय है।

किसी-किसी प्रान्त मे इसी दिन इक्षु (ईख) के खेतों में जाकर सिन्दूर, अक्षत और आभूषण आदि से ईख की पूजा करते है और तत्पश्चात इसी दिन पहले-पहल ईख चूसते हैं।

दत्तात्रेय-जन्म

भारत के पौराणिक इतिहास मे दत्तात्रेय अपनी बहुज्ञता के लिये प्रख्यात है। दत्तात्रेय के तीन सिर और छः भुजाएँ मानी गयी हैं। इन्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनो देवताओं की संयुक्त मूर्ति भी मानते हैं। इनका जन्मोत्सव मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को नीचे लिखी कथा कहकर मनाया जाता है:—

कथा

एक समय ब्रह्मा को स्त्री सावित्री, विष्णु को स्त्री लक्ष्मी और शिव की स्त्री पार्वती को अपने-अपने पातिव्रत और सद्गुणों पर गर्व हो गया। नारद से यह अभिमान भला कब देखा जाता? उन्होंने झट पार्वतीजी के पास जाकर कहा—"मैं संसार भर मे भ्रमण करता हूँ; किन्तु अत्रि मुनि की स्त्री अनुसूया के समान पतिव्रता और सद्गुण-सम्पन्ना स्त्री मैंने कहीं नही देखी।" यह सुन पार्वतीजी को ईर्ष्या हुई। नारदजी के विदा होते ही उन्होंने शिवजी से अनुसूया का व्रत भङ्ग कर देने की प्रार्थना की।

यहाँ से विदा लेकर नारदजी ब्रह्मलोक को गये और वहाँ भी सावित्री से अनुसूया की प्रशंसा की। उन्हें भी यह बात नहीं भाई और उन्होंने ब्रह्माजी से अनुसूया का चरित्र डिगा देने का आग्रह किया।

ब्रह्मलोक से चलकर नारदजी विष्णुलोक पहुँचे। वहाँ भी उन्होंने लक्ष्मी के सामने अनुसूया की प्रशंसा के पुल बाँध दिये। फल यह हुआ कि लक्ष्मी ने भी विष्णु से कहा—"जिस प्रकार हो आप अनुसूया का पातिव्रत भङ्ग करदें।"

संयोग-वश तीनों देवता एक ही समय अनुसूया की कीर्ति डुबोने के लिये अत्रि मुनि की कुटी के पास पहुँचे। भिक्षुकों के वेश में जाकर उन्होंने अनुसूया से भिक्षा माँगी। अनुसूया जब भिक्षा देने आई, तब उन्होंने कहा—"हम तो भिक्षा न लेकर इच्छानुसार भोजन करेंगे।" अनुसूया ने कहा—"बहुत अच्छा। आपलोग तब-तक नदी में स्नान करके आइये, इतने में मैं भोजन बना रखती हूँ। स्नान करके आने के बाद जब अनुसूया ने उन्हें भोजन परोसा, तो उन्होंने खाने से इन्कार कर दिया और कहा—"जबतक तुम हमारे सामने नग्न होकर भोजन न परोसोगी, तबतक हम भोजन न करेंगे।" यह सुनकर अनुसूया पहले तो क्रुद्ध हुई; पर विचार करने पर अपने पातिव्रत के बल से उसे देवताओं के कपट की बात मालूम हो गयी। वह अपने पति अत्रि मुनि के पास गयी और उनका पैर धोकर वही जल देवताओं के ऊपर डाल दिया। उस जल के पड़ते ही तीनों देव बच्चे हो गये। तब अनुसूया ने नग्न होकर उन्हे इच्छा भर दूध पिलाया और फिर तीनों को पालने में झुलाने लगी।

इधर जब बहुत दिन हो जाने पर भी तीनों देवता वापस न आये, तो उनकी स्त्रियाँ चिन्तित हुईं। अकस्मात् तीनों को भेंट

नारद से हो गई। उन्होने अपने-अपने पतियों का पता नारद से पूछा, तो उन्होने कहा—"एक दिन मैंने उन तोनों को अत्रि मुनि के आश्रम की ओर जाते देखा था।" तीनों स्त्रियाँ अत्रि मुनि के आश्रम पर पहुँचीं और उन्होने अनुसूया से कहा—"यहॉ हमारे पति आये थे?" अनुसूया ने पालने को ओर इशारा करके कहा—"यही तुम्हारे पति हैं। अपने-अपने भर्त्ता को पहचान लो।" तीनों बच्चे एक समान थे। लक्ष्मी ने ध्यान-पूर्वक देखा और एक बच्चे को विष्णु समझकर उठा लिया; किन्तु वह शिव निकले। इसपर लक्ष्मी का बड़ा उपहास हुआ।

यह दशा देख लक्ष्मी, पार्वतो और सावित्री ने अनुसूया से हाथ जोड़ प्रार्थना को—"हमे अपने-अपने पति अलग-अलग प्रदान करो।" अनुसूया ने कहा—"इन्होने हमारा दूध पिया है, इसलिये ये हमारे बच्चे है। इन्हे हमारे बच्चे बनकर रहना पड़ेगा।" इस पर तीनों देवताओं के संयुक्त अंश से एक मूर्ति बन गई, जिसके तीन सिर और छः भुजाएँ थीं। इस प्रकार दत्तात्रेय का जन्म हुआ। इसके बाद अनुसूया ने अपने पति के चरण धोये और वही जल उन बच्चों पर छोड़ दिया, जिससे तीनों देवताओं को पुनः अपना पूर्वरूप प्राप्त हो गया।

प्रसिद्ध है कि दत्तात्रेय ने चौबीस गुरुओं से भिन्न-भिन्न ज्ञान ग्रहण किये थे, जिनको कथा पुराणों मे आई है।

बसन्त पञ्चमी

माघ महीने के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी को बसन्त ऋतु के आगमन का आभास मिल जाता है, इसलिए यह दिन एक नवीन ऋतु के आरम्भ का सूचक माना जाना है। इसी समय से वन-बगीचों और वृक्षों में एक अपूर्व लावण्य तथा पक्षियों के कलरव और भौरों की गुंजार मे एक मनोमुग्धकारी स्वर ध्वनित होने लगता है। खेतों में सरसों के फूलों की पीतिमा और अन्य शस्यों की हरियाली मन को अपनी ओर खींच लेती है।

बसन्त पञ्चमी को विष्णु-पूजन का विधान है। इस दिन शरीर में उबटन और तैल लगाकर स्नान करना चाहिये और तदनन्तर उत्तम वस्त्राभूषण धारणकर भगवान् विष्णु की पूजा विधिवत् करनी चाहिये। इस दिन पितृ-तर्पण और ब्राह्मण-भोजन का भी विधान है।

बसन्त ही के दिन पहले-पहल गुलाल उड़ायी जाती है। लोग बसन्ती वस्त्र धारणकर गायन-वाद्य और बन-विहार आदि करते हैं। इसी दिन बसन्त के सहचर कामदेव तथा पतिव्रता-रत्न रति को भी पूजा का विधान है।

बसन्त धनिकों का त्योहार तो है ही, पर साथ ही किसान भी इस को कम महत्त्व नहीं देते। इसी दिन वे नये अन्न में घी

और मीठा मिलाकर अग्नि तथा देव-पितरों को अर्पण करने के बाद स्वयं ग्रहण करते हैं।

इस प्रकार बसन्त को नूतनता का साज कह सकते हैं और इससे मन और शरीर मे स्फूर्ति और प्रफुल्लता उत्पन्न होती है।

अचला सप्तमी

माघ शुक्ला सप्तमी को अचला सप्तमी का व्रत होता है। इस को सौर सप्तमी भो कहते है। वर्तमान समय में अचला सप्तमो के व्रत का समस्त भारतवर्ष मे किसी जगह भी प्रचार नही पाया जाता। अचला सप्तमो के व्रत से सम्बन्ध रखने वाली कथा का भविष्योत्तर पुराण में इस प्रकार उल्लेख है :—

कथा

एक समय महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी से पूछा—"हे भगवान्! कलियुग में स्त्री किस व्रत के प्रभाव से अच्छे पुत्रवाली हो सकती है?" इसके उत्तर मे भगवान् श्रीकृष्णजी ने कहा—"प्राचीन काल मे इन्दुमती नाम की एक वेश्या महाराजा समर के पास रहती थो। उसने किसो समय वशिष्ठजी के पास जाकर पूछा—"भगवन्! मुझ से आज तक कोई धार्मिक काम नहीं हुआ। इससे मेरे मन मे सदैव अति खेद रहता है कि मुझको निर्वाण की प्राप्ति किस प्रकार हो सकेगी? वेश्या के ऐसे विनीत वचन सुनकर वशिष्ठजी ने कहा—"स्त्रियों को मुक्ति, सौभाग्य और सौन्दर्य देने वाला अचला सप्तमी से बढ़कर अन्य कोई व्रत नही है, अतः तुम माघ शुक्ला सप्तमो के दिन अचला सप्तमी का व्रत करो। इससे तुम्हारा अवश्य ही कल्याण होगा।"

इन्दुमती ने जब विधि-पूर्वक इस व्रत को किया तो इसके प्रभाव से वह इस शरीर को छोड़कर स्वर्गलोक मे गई और वहाँ सम्पूर्ण अप्सराओं की नायिका हुई।

वशिष्ठजी ने इन्दुमती को जो विधि बताई थी, वह इस प्रकार है—व्रत रखने वाली स्त्री छठ के दिन केवल एक वार भोजन करे और उसी दिन विधिवत् सूर्य भगवान् का पूजन भी करे। सप्तमी के दिन प्रातःकाल किसी गहरे जलाशय पर जाकर दीपदान-पूर्वक मस्तक पर दीप धारण करके सूर्य की स्तुति करे। स्नान करने के बाद सूर्य भगवान् की अष्टदली प्रतिमा बनाकर बीच मे शिव और पार्वती को स्थापितकर यथाविधि उनका पूजन करे और ताँबे के पात्र मे चावल भरकर ब्राह्मण को दान करे, सूर्य को विसर्जन करके घर पर आये और ब्राह्मण भोजन कराकर आप भी भोजन करे।

भीष्माष्टमी

माघ शुक्ला अष्टमी को भीष्माष्टमी कहते है। जो मनुष्य माघ मास की सिताष्टमी को भीष्म पितामह के निमित्त तिलों सहित तर्पण और श्राद्ध करता है, वह शुभ सन्तान प्राप्त करता है। इससे विदित होता है कि भारत-प्रसिद्ध दृढ़-प्रतिज्ञ भीष्म के शरीर-त्याग की यही तिथि है। पद्म पुराण मे तो यहाँ तक उल्लेख है कि भीष्माष्टमी को जो श्राद्ध और तर्पण भीष्म के निमित्त किया जाता है, उसे उस पुत्र को भी करना चाहिये, जिसका पिता जीवित हो।

भीष्म का संक्षेप इतिहास नीचे लिखी कथा से मालूम होगा:—

कथा

कौरव और पाण्डव वंश के मूल-पुरुष चंद्रवंशी राजा शान्तनु की पटरानी का नाम गंगा था। गंगा के गर्भ से जन्मे हुए राज-कुमार का नाम भीष्म था।

एक समय राजा शान्तनु शिकार खेलने के लिये गंगा के उस पार बड़ी दूर तक चले गये। जब वह आखेट से लौटकर गंगा के किनारे आये, तो हरिदास केवट की कन्या मत्स्यगंधा ने राजा को नाव मे बिठाकर गंगा पार किया। मत्स्यगन्धा वास्तव मे केवट को

कन्या नहीं थी; वह किसी क्षत्रिय की कन्या थी। परन्तु केवट के घर लालित-पालित हुई थी। राजा कन्या के सौन्दर्य पर ऐसा मोहित हुए कि नाव पर से उतरते ही उन्होंने हरिदास केवट से कहा—"तुम अपनी यह कन्या मुझे दे दो। मै इसके साथ विवाह करके इसे रानी बनाऊँगा।" राजा के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए केवट ने उत्तर दिया—"हे राजन्! विवाह, प्रीति और वैर समान कक्षा के लोगों मे होता है; परन्तु आपकी और मेरी कोई बराबरी नहीं है। इस कारण मैं आपके साथ अपनी कन्या का विवाह नहीं कर सकता।" इस पर भी राजा ने आग्रह किया, तो उसने स्पष्ट कह दिया—"आप का ज्येष्ठ पुत्र भीष्म विद्यमान है। इस दशा मे मेरी कन्या का पुत्र राज का अधिकारी नहीं हो सकता। अतः मै आपको कन्या-दान करना उचित नहीं समझता।" इस पर राजा चुपचाप अपने महलों को चले आये।" केवट-कन्या के न मिलने से उनके चित्त में विशेष उद्विग्नता थी। राजा को खिन्न देखकर एक दिन राजकुमार भीष्म ने पिता से खिन्नता का कारण पूछा। तब राजा ने समस्त वृत्तान्त भीष्म को सुना दिया। कुमार भीष्म अपने पिता की चिन्ता-की निवृत्ति के लिये स्वयं हरिदास केवट के घर गया और उसको बहुत कुछ समझाकर कहा—"हरिदास! तुम साधारण केवट होकर अपनी कन्या का विवाह एक चक्रवर्ती राजा के साथ नही करते। इसको तुम्हारा दुर्भाग्य कहे या तुम्हारी कन्या का?" इस पर केवट बोला—"मै अपनी कन्या को तुम्हारे पिता के लिये नहीं,

परन्तु तुम्हारे लिये दे सकता हूँ, क्योंकि तुम्हारा पुत्र राज का उत्तराधिकारी हो सकता है। तुम्हारे पिता का अब उत्पन्न होने वाला पुत्र तुम्हारे रहते हुए राज का अधिकारी नहीं हो सकता।" केवट की ऐसी बातें सुनकर पितृभक्त भीष्म ने कहा—"मैं यह सिद्धान्त नहीं मानता कि राजा के लिये प्रजा है, वरन् यह सिद्धान्त मानता हूँ कि प्रजा के लिये राजा है। इसलिये मुझ को रंचमात्र भी राज का लोभ नहीं है। मैं वचन देता हूँ कि तुम्हारी कन्या का पुत्र ही मेरे पिता का उत्तराधिकारी होगा। इस बात का मैं तुमको शपथ से विश्वास दिलाता हूँ।" केवट ने उत्तर दिया—"आप जैसे धार्मिक पुरुष के वचनों पर विश्वास न करना बड़ी भारी मूर्खता है, किन्तु मुझको फिर भी यह सन्देह है कि आपका जो सुपुत्र होगा, सम्भव है कि भविष्य में वह मेरी कन्या के पुत्र को अखण्ड राज न करने दे। अतः इसका आप के पास क्या उपाय है?" केवट की यह उक्ति सुनकर भीष्म गंगाजी में उतर गये और आजीवन अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की।

इस प्रबल प्रतिज्ञा को सुनकर देवताओं ने आनन्द के नगाड़े बजाये। इसके पूर्व इनका नाम गांगेय था। परन्तु भीष्म-प्रतिज्ञा करने के कारण उसी दिन से यह भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुए। भीष्म-प्रतिज्ञा का परिणाम यह हुआ कि हरिदास केवट ने अपनी कन्या मत्स्यगन्धा का विवाह राजा शान्तनु के साथ कर दिया। राजा अपने पुत्र की पितृ-भक्ति से परम सन्तुष्ट हुए और वरदान दिया—"बेटा! तुम्हारी इच्छा के बिना तुम्हारी मृत्यु न होगी।"

उसी दिन से भीष्म ने मरण-पर्यन्त अपने प्रण को निबाहा। यद्यपि भीष्म पितामह धर्म के आदर्श थे; परन्तु प्रथम ही से दुर्योधन के पास रहते थे और अकस्मात् कौरव पाण्डवों का युद्ध छिड़ गया था, इस कारण महाभारत की लड़ाई मे भी भीष्म ने दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ा।

जिस समय दुर्योधन को लगातार हार होने लगी और वह युद्ध में हतोत्साह होने लगा, उस समय उसके दुःखोद्गारों को सुनकर भीष्म पितामह ने प्रतिज्ञा की—"जिस कृष्ण ने महाभारत युद्ध मे शस्त्र न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की है, आज मै उनकी प्रतिज्ञा भंग कराकर उन्ही को अस्त्र पकड़ाऊँगा। यदि दैवात् कृष्ण ने मेरे पराक्रम से व्याकुल होकर शस्त्र धारण न किया, तो आज ही पाण्डवों का नाश करके कौरव-दल की विजय-पताका फहराऊँगा। यदि दो मे से एक भी बात न हुई, तो मै अपने माता-पिता को लजाने वाले भीष्म नाम को भी न रक्खूँगा ?" इस प्रकार की प्रतिज्ञाकर जिस समय भीष्म ने अपना प्रबल पराक्रम संग्राम-भूमि प्रगट किया, उस समय अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से स्पष्ट शब्दो मे कह दिया—"यदि आज भीष्म का वेग न रोका जायगा, तो पाण्डव-कुल का सर्वनाश हुए बिना न रहेगा—मैं भीष्म के पराक्रम की बराबरी किसी तरह नहीं कर सकता।" यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने भी अपने मन मे निश्चय कर लिया कि बाल ब्रह्मचारी, पितृभक्त और अपनी इच्छा से मृत्यु को प्राप्त होनेवाले भीष्म पर विजय प्राप्त करने का इसके सिवा अन्य कोई उपाय नही है कि

मैं स्वयं प्रतिज्ञा-भ्रष्ट होकर भीष्म का प्रण पालन करूँ। यह निश्चय करके उन्होंने तुरन्त ही चक्र-सुदर्शन को हाथ में लिया।

श्रीकृष्ण भगवान् की प्रतिज्ञा भंग होते ही भीष्म ने युद्ध बन्द कर दिया और आप बाणों की सेज पर लेट गये। कुछ काल मे जब भारत का युद्ध समाप्त होने पर युधिष्ठिर राजा हो गये और सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण हुए, तब भीष्म ने अपनी इच्छा ही से शरीर त्याग किया। जिस दिन भीष्म का देहावसान हुआ, उस दिन माघ शुक्ला अष्टमी था और आज तक उन्हीं की स्मृति मे यह व्रत और उत्सव मनाया जाता है।

महा शिवरात्रि

फाल्गुण बदो त्रयोदशी को शिवरात्रि का व्रत रक्खा जाता है। लगभग समस्त भारत और नैपाल मे इस व्रत का व्यापक प्रचार है। कहीं-कहीं फाल्गुण कृष्णा त्रयोदशी को और कहीं-कहीं फाल्गुण कृष्णा चतुर्दशी को महा शिवरात्रि-व्रत मनाया जाता है। इस व्रत मे रात मे जागरण करने का विशेष माहात्म्य है।

प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर अनशन व्रत रक्खा जाता है और मिट्टी के वर्तन में जल भरकर ऊपर से बेलपत्र, आक-धतूरे के फूल और अक्षत आदि डालकर शिवजी को चढ़ाया जाता है। यदि आस-पास शिव-मूर्ति न हो तो शुद्ध गोली मिट्टी से भी शिवलिंग बनाकर उसे पूजने का विधान है। रात को जागरण करके शिव-पुराण का पाठ सुनना-सुनाना प्रत्येक व्रती का धर्म माना जाता है। दूसरे दिन प्रातःकाल जौ, तिल, खीर तथा बेलपत्र का हवन करके व्रत समाप्त किया जाता है। इसकी कथा लिंग पुराण मे नीचे लिखे अनुसार वर्णन की गई है :—

कथा

एक बार कैलाश पर बैठी हुई पार्वतीजी ने श्रीशिवजी से पूछा—"भगवन् ! इस प्रकार का कौन-सा व्रत है, जिसके करने से मनुष्य आप के सायुज्य को प्राप्त हो जाय ?" यह सुनकर

महादेवजी ने कहा—फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी को व्रत रहकर प्रदोप काल में मेरा पूजन करके रात्रि को जो मनुष्य जागरण करता है, वह अनायास ही मेरे सायुज्य को प्राप्त हो जाता है। हे पार्वती! मै इस सम्बन्ध का एक इतिहास कहता हूँ, सो तुम सावधान होकर सुनो :—

प्रत्यंत देश मे एक बहेलिया (व्याध) रहता था, जो प्रतिदिन जीवों को मारकर अपने कुटुम्ब का पालन किया करता था। समय पर रुपया न दे सकने के कारण एक दिन साहूकार ने उसे एक शिव-मठ में क़ैद कर दिया। उस दिन फाल्गुण कृष्णा त्रयोदशी थी, इसलिये मन्दिर में धर्म और व्रत सम्बन्धी कथा-वार्ता होती रही। व्याध ध्यान देकर उसको सुनता रहा और आगामी दिन में आनेवाले शिवरात्रि व्रत की कथा को भी उसने सुना। शाम को साहूकार ने उसे इस शर्त पर छोड़ दिया कि कल के दिन तुम हमारा रुपया अदा कर देना। चतुर्दशी को प्रातः-काल नियमानुसार यह व्याध अपने नगर से दक्षिण दिशा की ओर गहन वन में पशु मारने के लिए चला गया। परन्तु उस दिन कोई पशु उसे नहीं मिला। तब उसने दिन भर की भूख-प्यास से व्याकुल होकर विचार किया कि आज किसी जलाशय पर रात को बैठना चाहिये। अतः एक मनोनीति जलाशय देखकर उसी के किनारे उसने अपने छिपने के लिये जगह बनाने का निश्चय किया। जलाशय के समीप ही एक बेल का पेड़ था और उसी के नीचे एक शिव-लिंग स्थापित था।

व्याध पेड़ पर चढ़कर बैठ गया और अपने सुविधा-योग्य स्थान बनाने के लिये बेल के पत्ते तोड़-तोड़कर नीचे डालने लगा। नीचे गिरे हुए विल्वपत्रों से शिवलिंग ढक गया। व्याध दिन भर भूखा रहने के कारण एक प्रकार से शिवरात्रि का व्रत कर चुका था, उस पर उसके द्वारा शिवजी पर बेलपत्र भी चढ़ गये। इन दोनों कारणों से उसका अंतःकरण बहुत कुछ शुद्ध होगया।

व्याध को पेड़ पर बैठे-बैठे जब एक पहर रात बीती, तब एक गर्भवती हिरणी उसको सामने से आती हुई देख पड़ी; किन्तु ज्योंही उसने लक्ष्य करके धनुप पर बाण चढ़ाया, त्योंही हिरणी ने कहा—"आप यह क्या अनर्थ करते हैं?" यह सुनकर व्याध बोला—"यह मेरे लिये कोई नई बात नहीं है; मै तो सदैव इसी भाँति अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण किया करता हूँ।" इस पर हिरणी बोली—"आपके लिए तो नई बात नहीं है, परन्तु मेरे लिये अवश्य नई है, क्योंकि मै गर्भिणी हूँ। मेरा प्रसूत-काल भी समीप ही है। यदि आप मुझे इस समय छोड़ देंगे, तो मै प्रसूत बालक को उसके पिता को देकर तुरन्त ही इसी स्थान पर वापस आजाऊँगी। यदि मै तुरन्त आपके पास न आऊँ तो कृतघ्न को जो पाप लगता है, वह मुझको लगे। व्याध का अंतःकरण व्रत के कारण शुद्ध तो था ही, अतः उसके ऊपर हिरणी के धार्मिक वचनों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने धनुष पर से बाण उतार लिया और हिरणी को वापस आने की प्रतिज्ञा पर छोड़ दिया। उस हिरणी के चले जाने पर व्याध शिव शिव करता हुआ किसी अन्य जानवर के आने की प्रतीक्षा

करने लगा। आधी रात हो जाने पर एक दूसरी अत्यन्त सुन्दरी हिरणी सामने से आती हुई दिखाई दी। व्याध ने फिर से धनुष पर बाण चढ़ाया, तो वह हिरणी भी पहली की तरह गिड़गिड़ाकर अति विनीत भाव से बोली—"आप मुझको मारते तो हैं, परन्तु मै निवृत्त ऋतु वाली हूँ। यदि पति का संयोग होने के पूर्व ही मैं मारी जाऊँगी तो यह अभिलाषा मेरे चित्त मे लगी रह जायगी, जिससे मेरा तो अनिष्ट होगा ही, परन्तु यह बात आप के लिये भी शुभ नहीं है। यदि इस समय आप मुझको छोड़ देंगे, तो मैं कल अपनी प्रतिज्ञानुसार आप के पास अवश्य आ जाऊँगी और जो न आऊँ तो ब्रह्मघाती और शराबी को जो पाप लगता है, वह मुझको भी लगे।" व्याध के हृदय में कुछ ऐसी करुणा और धर्म-वृत्ति जागृत हुई कि उसने उस हिरणी को भी छोड़ दिया।

दूसरी हिरणी के चले जाने पर रात्रि के तीसरे पहर में व्याध ने कुछ और बेलपत्र तोड़कर नीचे डाले, जो शिवजी के शीश पर चढ़ गये। व्याध शिव शिव कहता हुआ किसी अन्य जन्तु के आने की प्रतीक्षा करने लगा। तीसरा पहर व्यतीत होते-होते एक तीसरी हिरणी तीन-चार छोटे-छोटे बच्चों को लिये हुई उसी जलाशय पर आ पहुँची। व्याध ने धनुष पर बाण चढ़ाकर उसको मारने की इच्छा की। तब वह भी व्याध से इस प्रकार के वचन बोली--"भगवन्! आप ने मुझ से प्रथम आनेवाले जीवों को तो मारा नहीं, अब मुझको मारकर आप क्यों महापाप के भागी होते हैं। मेरे मरने से ये बच्चे अनाथ हो जायँगे। मालूम होता है आपने

धर्मशास्त्र का अध्ययन नहीं किया है, क्योकि धर्मशास्त्र मे बच्चों वाली स्त्री को सती होने तक को आज्ञा नहीं है। यदि आप मुझे इस समय छोड़ देंगे, तो इन बच्चों को इनके पिता के पास पहुँचाकर और उससे आज्ञा लेकर सवेरे ही मै आप के पास आ जाऊँगी, जिससे आपको महापाप का प्रायश्चित भी न करना पड़ेगा और मेरा धर्म भी पूरा हो जायगा। यदि आपको मेरे आने मे सन्देह हो, तो मैं शपथपूर्वक कहती हूँ कि मैं अकेली या इन बच्चों को लिए हुए किसी तरह भी सवेरे अवश्य आपके पास आ जाऊँगी।" शिव व्रत के कारण उस व्याध ने उस हिरणी की बात पर भी विश्वास कर लिया और उसे चला जाने दिया।

प्रातःकाल से कुछ ही पूर्व एक बड़ा और बलिष्ठ मृग उसी जलाशय पर आ पहुँचा। उसको देखते ही व्याध ने अति प्रसन्न होकर धनुष पर बाण चढ़ाया। यह देखकर हिरण बड़ी सरलता से बोला—"हे व्याध! यदि मेरे प्रथम आने वाली तीनों हिरणियों को आपने मार डाला है तो निश्चय ही मेरे सब मनोरथों पर पानी फिर गया और मेरा जीवन सर्वथा निरर्थक हो गया, अतः कृपाकर आप मुझे भी शीघ्र ही मार डालिये, जिससे उन मृत हिरणियों का दुःख मुझको न हो। व्याधा ने हिरण की प्रेम एवं पांडित्यमयी वाणी को सुनकर रात की हिरणियों वाली सब घटना कह सुनाई, जिसे सुनकर हिरण बोला—"आप व्याध हैं, मै हिरण हूँ। अतः मेरा आप का सम्बन्ध अवश्य है, परन्तु वे तीनों हिरणियां मेरी भार्या

थीं और वे मेरी ही खोज में फिर रही हैं। यदि आप मुझको यहाँ मार डालेंगे, तो वे जिस उद्देश्य से आप से प्रतिज्ञा करके गई हैं, वह सब विफल हो जायगा और आपने जिस उद्देश्य से उनको छोड़ा है वह भी पूर्ण न होगा। अतः जिस धार्मिक भाव से आपने उनकी शपथ को सत्य मानकर उनको छोड़ दिया है, उसी भाव से थोड़ी देर के लिये मुझको भी आज्ञा दीजिये, तो मैं उन सब से मिलकर और उन सब को साथ लेकर इसी स्थान पर चला आऊँ। शिवरात्रि व्रत के प्रभाव से व्याध का हृदय विशेष कोमल और शुद्ध हो गया था, अतः उसने हरिण को भी चले जाने दिया। हरिण के चले जाने पर सवेरा होते ही वह बेल के वृक्ष से नीचे उतरा। उतरने में कुछ और भी विल्व-पत्र शिवजी पर आप ही आप चढ़ गये, जिससे प्रसन्न होकर शिवजी ने उसके हृदय को ऐसा निर्मल और पवित्र कर दिया कि वह अपने पूर्वकृत हिंसात्मक कर्मों पर आप ही आप घृणा करके अत्यंत पश्चात्ताप-पूर्वक बोला—"यदि अब वे हरिण-हरिणी आ भी जायँ, तो भी मैं उनको न मारूँगा।"

उधर वह हरिण अपने कुटुम्ब में पहुँच गया और सब हरिणियों से मिलकर तथा समस्त आवश्यक कार्यों से निवृत होकर बोला—"प्रिये! यह संसार तो क्षण-भङ्गुर है, परन्तु सत्य सदा स्थिर रहने वाला पदार्थ है। योगीजन जिसके लिए सहस्रावधि समाधि-साधन करते हैं, वह ब्रह्म भी सत्य-स्वरूप ही है। कदाचित् इस असत्य शरीर से सत्य ऐसा अमूल्य रत्न प्राप्त हो जाय, तो इससे

बढ़कर प्राणी-मात्र के लिये और क्या हो सकता है, अतः हम तुमको अब विलम्ब करना उचित नहीं। यथासंभव शीघ्र ही व्याध के पास चलना चाहिये। हरिण के सत्योपदेश को सुनकर सब हरिणियाँ भी सत्यव्रत-अनुष्ठान को सन्नद्ध हो गईं। इस हृदय-द्रावक घटना के समय इस जंगल मे सहस्रो हरिण तथा हरिणियाँ और भी वहाँ उपस्थित थीं, अतः जिस समय ये सब सत्यव्रत-धारी हरिण-हरिणियाँ अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के [illegible] चलने को तैयार हुईं, उस समय उस गहन वन मे सनसनी-सो छा गई। जिस समय हरिण अपने सहचरो से तथा ह[illegible] अपनी सहचरी हरिणियों से गले मिलीं, तो सत्यस्वरूप चन्द्रदेव के दर्शन से करुणा का समुद्र उमड़ पड़ा। उस वन मे जितने [illegible] और खेचर जीव थे, उनके आर्त्त स्वर से आकाश गूँज उठा। ऐसी विषम अवस्था मे जब वे हरिण और हरिणियाँ अपनी सत्य-प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये अपने बाल-बच्चो समेत व्याध के स्थान को चले, उस समय उस वन मे वही करुणामय दृश्य उपस्थित था, जो श्रीरामचन्द्रजी के वनवास के समय अयोध्या में था। अस्तु; सकुटुम्ब और सोल्लास जब वह मृग-समूह व्याध के स्थान पर पहुँचा, तो व्याध ने भी पशुओं के सत्यव्रत के प्र[illegible] को देखकर अपने मनुष्य-जीवन को घृणित समझा और [illegible] वृत्तियों के जाग्रत होने से वह अति कातर होकर रोने लगा।

इस प्रकार पारस्परिक धर्म-वृत्तियों की चरम-सीमागत उन्नति को देखकर शिवजी (मै) ने एक विमान व्याध के [illegible]

और एक हरिण-हरिणियों के लिये भेजकर उन सबको अपने लोक में बुला लिया। हे पार्वती! यह सब प्रभाव महा शिवरात्रि के अनायास व्रत का है। जो लोग इच्छापूर्वक मेरी सायुज्यता के हेतु इस व्रत को करते हैं, वे तो निस्सन्देह ही मुझको प्राप्त होते हैं।
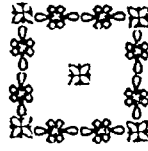
होलिका-दहन

एक समय राजा पृथ्वीराज चौहान ने अपने दरबार के राज-कवि चन्द से पूछा कि हम लोगो मे जो होली के त्योहार का प्रचार है, वह क्या है ? हम सभ्य आर्य लोगों मे ऐसे अनार्य महोत्सव का प्रचार क्योंकर हुआ कि आबाल-वृद्ध सभी उस दिन पागल-से होकर वीभत्स-रूप धारण करते तथा अनर्गल और कुत्सित वचनों को निर्लज्जता-पूर्वक उच्चारण करते हैं। यह सुन-कर कवि बोला—"राजन् ! इस महोत्सव की उत्पत्ति का विधान होली की पूजा-विधि मे पाया जाता है। फाल्गुन मास की पूर्णिमा मे होली का पूजन कहा गया है। उसमे लकड़ी और घास-फूस का बड़ा भारी ढेर लगाकर वेद-मंत्रों से विस्तार के साथ होलिका-दहन किया जाता है। इसी दिन हर महीने की पूर्णिमा के हिसाब से इष्टि (छोटा-सा यज्ञ) भी होता है। इस कारण भद्रा रहित समय मे होलिका-दहन होकर इष्टि यज्ञ भी हो जाता है। पूजन के बाद होली की भस्म शरीर पर लगाई जाती है।

होली के लिये प्रदोष अर्थात् सायंकाल-व्यापनी पूर्णिमा लेनी चाहिये और उसी रात्रि मे भद्रा-रहित समय मे होली प्रज्वलित करनी चाहिये। फाल्गुण की पूर्णिमा के दिन जो मनुष्य चित्त को एकाग्र करके हिंडोले मे झूलते हुए श्रीगोविन्द पुरुषोत्तम का दर्शन

करता है, वह निश्चय ही वैकुण्ठ मे जाता है। यह दोलोत्सव होली होने के दूसरे दिन होता है। यदि पूर्णिमा को पिछली रात्रि मे होली जलाई जाय, तो यह उत्सव प्रतिपदा को होता है और इसी दिन अबीर गुलाल की फाग होती है। उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त इस फाल्गुणी पूर्णिमा के दिन चतुर्दश मनुओं में से एक मनु का भी जन्म है। इस कारण यह मन्वादि तिथि भी है। अतः उसके उपलक्ष्य मे भी उत्सव मनाया जाता है। कितने ही शास्त्रकारों ने तो संवत् के आरम्भ एवं वसंतागमन के निमित्त जो यज्ञ किया जाता है, और जिसके द्वारा अग्नि के अधिदेव-स्वरूप का पूजन होता है, वही पूजन इस होलिका का माना है। इसी कारण कोई-कोई होलिका-दहन को संवत् के आरम्भ मे अग्नि-स्वरूप परमात्मा का पूजन मानते हैं।

भविष्य-पुराण मे नारदजी ने राजा युधिष्ठिर से होली के सम्बन्ध मे जो कथा कही है, वह उक्त ग्रन्थ-कथा के अनुसार इस प्रकार है :—

नारदजी बोले—हे नराधिप! फाल्गुण की पूर्णिमा को सब मनुष्यों के लिये अभय-दान देना चाहिये, जिससे प्रजा के लोग निश्शंक होकर हँसें और क्रीड़ा करें। डंडे और लाठी को लेकर बालक शूर-वीरों की तरह गाँव से बाहर जाकर होली के लिये लकड़ी और कंडो का सञ्चय करे। उसमें विधिवत् हवन किया जाय। वह पापात्मा राक्षसी अट्टहास, किलकिलाहट और मन्त्रोच्चारण से नष्ट हो जाती है। इस व्रत की व्याख्या से हिरण्यकश्यपु की

भगिनो और प्रह्लाद की फुआ, जो प्रह्लाद को लेकर अग्नि मे बैठो थो, प्रतिवर्ष होलिका नाम से आज तक जलाई जातो है।

हे राजन्! पुराणान्तर मे ऐसी भी व्याख्या है कि ढुंढला नामक राक्षसी ने शिव-पार्वती का तप करके यह वरदान पाया था कि जिस किसो बालक को वह पाये खाती जाय। परन्तु वरदान देते समय शिवजी ने यह युक्ति रख दी थी कि जो बालक वीभत्स आचरण एवं राक्षसी वृत्ति में निर्लज्जता-पूर्वक फिरते हुए पाये जायँगे, उनको तू न खा सकेगी। अतः उस राक्षसी से बचने के लिये बालक नाना प्रकार के वोभत्स और निर्लज्ज स्वांग बनाते और अंट-संट बकते हैं।

हे राजन्! इस हवन से सम्पूर्ण अनिष्टो का नाश होता है और यही होलिका-उत्सव है। होलो को ज्वाला की तीन परिक्रमा करके फिर हास-परिहास करना चाहिये।"

कवि चंद की कही हुई इस कथा को सुनकर राजा पृथ्वोराज बहुत प्रसन्न हुए।

भैया दूज

होलिका-दहन के बाद चैत्र बदी द्वितीया और दीवाली के बाद कार्तिक सुदी द्वितीया, इन दोनों तिथियों को भैया दूज कहते हैं; क्योंकि साल में दो बार इन्हीं दोनों पर्वों पर बहिनें भाइयों को निमंत्रित करती हैं।

भैया दूज के दिन मध्यान्ह के पूर्व ही पूजन होता है। जो परदा-नशीन स्त्रियाँ बाहर नहीं निकल सकतीं, वे अपने घर के दरवाज़े के पास भाई-भौजाई की प्रतिमा-सूचक गेरू से दो पुतलियाँ लिखती हैं। रोली-अक्षत से पूजा करके जो पकवान बनाती हैं, उसका भोग लगाती हैं। फिर बाहर दरवाज़े की पूजा होती है। असल में यह पूजा बाहर दरवाज़े ही की है।

मकान के प्रवेश-द्वार की देहली के नीचे बाहरी तरफ़ गोबर से चौकोर वेदी बनाई जाती है। गोबर की चार पुतलियाँ उसके चारों कोनों में और एक पुतली बीच में रखी जाती है। गृहस्थी सम्बन्धी और बहुत-सी सामग्री जैसे चूल्हा, चक्की, हाँड़ी वगैरह गोबर की बनाकर उसी मे इधर-उधर सजाई जाती हैं। फिर दरवाज़े के पास भाई-भौजाई की प्रतिमाएँ लिखी जाती हैं। पहले रोली, अक्षत, धूप-दीप, नैवेद्यादि से पूजा करके; तब भाई-भौजाई की पूजा की जाती है और कहानी कही जाती है। क़िस्सा पूरा होते ही स्त्रियाँ

मूसल चला-चलाकर कहती हैं—"जो कोई हमारे भाई को देखकर जले-बले, उसका मुँह इस तरह मूसल से तोड़ूँ-फोड़ूँ।"

इसके बाद जिन स्त्रियों के भाई निकट होते है, वे उनको भोजन कराने बिठाती हैं। बहन भाई का टीका करती और भाई बहन के चरण छूकर जो कुछ देना चाहता है, देता है। फिर भोजन करता है। फाग की दूज को भाई का टीका गुलाल से किया जाता है और दीवाली की दूज को हल्दी का टीका किया जाता है।

कथा

सात बहनों का एक दुलारा भाई था। वह अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा और सात बहनों का छोटा भाई होने के कारण बड़े ही लाड़-प्यार से पला था। कभी किसी ने उसे भूलकर भी दुर्वचन नहीं कहा था। वह जब बड़ा हुआ, तो उसकी सगाई हो गई। बरच्छा (फलदान) की रस्म पूरी हो गई और लग्न का समय पास आया। माता ने पुत्र से कहा—"अब तू जाकर अपनी बहनो को बुला ला।"

उसने कहा—"बहनें तो बहुत दूर-दूर हैं; समय पर नहीं आ सकतीं। सब से छोटी बहन जो पास ही है, उसी को लिवा लाता हूँ।" माता ने कहा—"अच्छी बात है।"

जिस दिन भाई बहन के मकान पर पहुँचा, उस दिन भाई दूज थी। बहन दरवाजे के बाहर दूज की पूजा कर रही थी। उसने भाई को आते देखकर सोचा कि इसके सामने मै पूजा कैसे करूँगी।

यदि मै इससे बोलूँगो नहीं, तो यह आप ही लौटकर चला जायगा। अतः उसने ऐसा ही किया। जब भाई लौटकर चला और वहन पूजा कर चुकी, तब उसने भाई को बुलाकर कहा—"मैंने तुम्हें पहचाना नहीं था, माफ करना।"

वह इस बात का कोई उत्तर न देकर बहन के साथ अंदर चला गया।

भाई को ठहराकर बहन पड़ोस की स्त्रियों से पूछने दौड़ी गई कि अपने सब से प्यारे भाई को क्या खिलाना चाहिये। स्त्रियों ने कह दिया कि घी मे चावल पकाकर खिलाना चाहिये। वह घी में चावल पकाने लगी, पर चावल पके नहीं; जलकर कोयला हो गये। तब उसने दूध मे चावल पकाकर खीर बनाई, पूड़ियाँ बनाईं और भाई को भोजन कराया। भोजन करने के बाद भाई ने कहा—"मेरा विवाह है। इसलिये मैं तुमको लिवाने आया हूँ। तुम मेरे साथ चलो।"

इस पर बहन ने जवाब दिया—"अभी तुम आराम करो। मैं तुम को रास्ते के लिये खाना बना देती हूँ। तुम आगे-आगे चलना, मैं पीछे चली आऊँगी।"

बहन रात्रि को अँधेरे मे आटा पीसने लगी। उसमें धोखे से सर्प की हड्डियों का ढाँचा पीस गई। उसी आटे की पूड़ियाँ बनाकर रख छोड़ीं। सवेरे जब भाई चलने लगा, तो रात की बनाई पूड़ियाँ बहन ने उसे रास्ते के लिये देकर विदा कर दिया। भाई के चले जाने पर उसने एक पूड़ी कुत्ते को डाली, तो वह उसे खाते ही मर गया। तब बहन सब काम छोड़कर भाई के पीछे-पीछे दौड़ी।

कुछ दूर जाकर उसने देखा कि भाई एक वृक्ष के नीचे पड़ा सो रहा है और कलेऊ (खाना) जो उसने दिया था, वृक्ष की डाली से टँगा हुआ है। उसने फ़ौरन उस कलेऊ को ज़मीन में गाड़ दिया। जब भाई[1] सोकर उठा, तो बहन ने अपने पास से खाने को दिया। खाना खाकर भाई ने कहा—"मुझे प्यास लगी है।"

तब बहन उसके लिये पानी लाने चली गई। बहन इधर-उधर जलाशय तलाश करती हुई एक बावली पर पहुँची। वहाँ उसने देखा कि एक बढ़ई साही के काँटे बटोर रहा है। उसने पूछा—"भाई यह क्या कर रहे हो?" बढ़ई ने जवाब दिया—"तुझे क्या प्रयोजन है? तू अपनी राह चली जा। अपना काम कर।"

बहन ने फिर कहा—"यदि कोई हानि न हो, तो बतला दो। मैं तुम्हारा बड़ा एहसान मानूँगी।"

तब बढ़ई बोला—"यह सात बहनों के भाई की अलाय-बलाय है। जो इन काँटो को ले जाकर गालियाँ देते हुए उसके मुख मे दे, तो वह सब बलाओं से बच जायगा, अन्यथा उसकी अकाल मृत्यु हुए बिना नहीं रह सकती। जहाँ वह ब्याहने जायगा, वहाँ का दरवाज़ा फिसलकर उस पर गिर पड़ेगा। यदि कोई बरात आने के दिन दरवाज़े पर सोने की ध्वजा चढ़ा देगा, तो दरवाज़ा नहीं गिरेगा। दूसरी आफत उसकी भाँवरों के समय है—ऐन भाँवरों के समय एक सिंह आयेगा और उसे उठा ले जायगा। यदि कोई हरे जौ का एक

पूला उसके सामने डाल दे और एक काँटा मण्डप में खोंस दे, तो सिंह भाग जायगा।"

तब बहन बोली—"जिस के लिये तुम यह सब कह रहे हो, वह मेरा ही छोटा भाई है। यदि तुम यह काँटे मुझे दे दो, तो मैं स्वयं अपने भाई की रक्षा के लिये उपाय करूँगी।"

बढ़ई ने तीन काँटे उसको दे दिये।

वह उसी क्षण से गालियाँ देती हुई भाई के पास गई और एक काँटा उसने उसके मुँह में छुआ दिया। भाई ने बहुत कुछ पूछा—"यह सब क्या है? मैंने क्या कुसूर किया, जो तू गालियाँ देती है?" पर उसने किसी बात का ठीक जवाब न दिया। पागलों की तरह आँय-बाँय बकने लगी। भाई ने समझा कि बहन पगली हो गई है। वह उसे किसी तरह घर तक लिवा ले गया।

जब लग्न चढ़ने का समय आया तो वह भाई को बुरी तरह कोसने और गालियाँ देने लगी। वह बोली—"माता का पूत मरे, भावज का पति मरे, बहन का बीरन मरे, पहले मेरे हाथ पर लग्न रक्खी जायगी तब इसके हाथ पर लग्न रखना।" पगली की जिदके कारण लोगों को पहले उसीके हाथ पर लग्न रखनी पड़ी। उसने हाथ पर लग्न रखकर उसमें काँटा खोंस दिया। तदनन्तर भाई के हाथ पर लग्न रक्खी गई। इसी तरह ब्याह के प्रत्येक नेग के वक्त बहन आप आगे होकर पहले अपना नेग कराती, पीछे भाई के नेग-चार होते थे।

जब बरात की तैयारी हुइ, तब भी बहन सब से आगे बरात में जाने को तैयार हो गई। भाई की ससुराल मे पहुँचकर उसने तुरन्त ही ससुर के दरवाजे पर सोने की ध्वजा चढ़वाई। जब भाँवरों का समय आया, तो बहन डेरों में सो रही थी। दूल्हा मंडप में गया। वहाँ ज्यों ही भाँवरें पड़ने लगीं, त्यों ही दूल्हा मूर्च्छित हो गया। लोग बहन को बुलाने दौड़े गये। तब वह उधर से गालियाँ देती हुई ब्याह के घर की तरफ दौड़ी। वह मंडप के पास पहुँची थी कि उधर से एक भयानक सिह आ पहुँचा। बहन ने उसके सामने जौ का पूला डाल दिया और मंडप मे काँटा खोंस दिया। शेर चला गया। सकुशल भाँवरें पड़ गईं। विवाह के सब नेग पूरे हो जाने पर भाई अपनी नई दुलहिन को लिवाकर घर आया।

ग्राम देवताओं का पूजन होकर जब सोनारे के नेग का समय आया, तब भी बहन मचल गई कि भाई-भौजाई के साथ मैं भी सोऊँगी। सब लोग मना करने लगे; पर वह कब किसी की सुनती थी। आखिर भाई ने कहा—"कोई हर्ज नहीं; वह जो कुछ भी करती है, उसे करने दो।"

तब वह एक तरफ भाई को और दूसरी ओर भौजाई को लिटाकर बीच मे आप लेट रही। भाई-भावज दोनों सो गये। कोठे के बाहर स्त्रियाँ गाने-बजाने मे लगी हुई थीं। ठीक आधी रात के समय ऊपर से सर्प उतरा। बहन जागती थी। उसने सर्प को मारकर एक कूँड़े के नीचे ढाँक दिया और आप गाती हुई बाहर निकल आई। भाई-भावज दोनों आनन्द से रात भर सोते रहे।

इधर बहन भी सब कामों से निश्चिन्त होकर सो रही। दोपहर तक सोती रही, तब भाई ने उसको जाकर जगाया। पर वह जागती ही न थी। उस समय माता ने कहा—"यह तो जब से आई है, इस ने सभी का नाकों दम कर रक्खा है। अब विवाह हो चुका है, अतः इसको जाकर घर पहुँचा आओ, तब दूसरा काम करो।"

भाई बाजार से जाकर बहन के लिये कपड़े वग़ैरह ले आया। उसी समय बहन जाग उठी। सब को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह बिलकुल पगली नहीं थी। औरतों ने उस से पूछा—"तुझको क्या हो गया था? कुछ ख़बर भी है।"

तब वह उस कोठे में दौड़ी गई, जहाँ भाई और भावज रात में सोई थी, और कूड़े के नीचे ढका हुआ सर्प निकालकर उसने सबको दिखलाया और आद्योपान्त सब वृत्तान्त बतलाकर उसने कहा—"अब मैं पगली नहीं हूँ। भाई की रक्षा के लिये बन गई थी।"

दूज की पूजा तो सनातन से चली आती है, परन्तु भाई को निमंत्रित करने का रिवाज इसी समय से चला है।
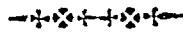
तिसुआ सोमवार

चैत्र मास के चारो सोमवारो को तिसुआ सोमवार कहते है। इन सोमवारों मे श्रीजगदीश के पट और बेतों की पूजा होती है। तिसुआ सोमवार का व्रत और पूजन उसी के यहाँ होता है, जो श्रीजगदीश के दर्शन कर आया हो या जिसके घर मे कोई जगदीश-यात्रा कर चुका हो।

यह पूजा मध्यान्ह के समय होती है। जब तक पूजा नहीं हो जाती, जगदीश का जानेवाला या घर का प्रमुख व्रत रहता है। पूजन के समय जगदीश के पट, पटा पर पधारे जाते है और बेतों को धोकर उसका पानी बरतन मे रख लेते हैं। उसी बरतन मे बेत खड़े करके दीवार से टिका देते है। चन्दन, चावल, धूप, दीप, नैवेद्यादि से विधिवत् पट और बेतो का पूजन किया जाता है। पुष्प-मालादि के साथ जौ की बाल, आम का बौर और तिसुआ (टेसू) के फूल चढ़ाना आवश्यक समझा जाता है। नैवेद्य के अनुपान मे यह विशेषता है कि पहले सोमवार को फूले हुए देवल और गुड़ का भोग लगाया जाता है। दूसरे सोमवार को गुरधानी (भुने हुए गेहूँ और गुड़) का भोग लगता है। तीसरे सोमवार को पँच-मेर और चौथे सोमवार को गंज-भोग अर्थात् कच्चा-पक्का सब तरह का पकवान बनाकर भोग लगाया जाता है। भोग लगाने के बाद

कथा कही जाती है, कथा हो चुकने पर बेतों पर अक्षत छोड़ते हैं, फिर भोग बाँटकर पूजन और विसर्जन होता है। पूजन करने वाले के लिए भोजन की कोई विशेष विधि नहीं है।

कथा

कोई भाट-भाटिन थे। भाट का नाम कुदरती था। वह बहुत गरीब था। माँगना-खाना ही उसका व्यवसाय था। वह ऐसा मंदभाग्य था कि वह एक गाँव से भिक्षा माँगता, तो भी उसे उतना ही अन्न मिलता और सात गाँव में भिक्षा माँगता, तो भी उसे उतना ही मिलता था। एक दिन भाटिन ने कहा—"मेरी बहुत दिन से इच्छा है कि एक दिन लड़की और दामाद को न्योता दूँ।" भाट ने कहा—"आज मैं जाकर कई गाँव से भिक्षा माँगकर लाता हूँ। तू लड़की और दामाद को न्योता दे आ।"

भाट कई गाँव से भिक्षा माँगकर लाया। खूब सामान मिला। भाटिन ने अच्छा-अच्छा भोजन बनाया। भोजन बनाकर वह हाथ-पैर धोने बाहर गई। भाट ने घर में जाकर रसोई देखी, तो वहाँ सिर्फ एक बड़ी और एक छोटी—दो रोटियां थी। भाट-भाटिन यह चरित्र देखकर बहुत दुःखी और लज्जित हुए। आख़िर उन्होंने दामाद को बड़ी रोटी परोसी और लड़की को छोटी रोटी खिलाकर दोनों को विदा किया। भाट ने उसी समय श्रीजगदीश के दर्शनों के लिये यात्रा की।

भाट घर से चलकर रास्ते मे जा रहा था। उसने देखा कि बहुत से आदमी पत्ते तोड़-तोड़ कर दोने-पत्तलें बना रहे हैं। उसने पूछा—"भाइयो! यह क्या कर रहे हो?" लोगों ने जवाब दिया—"राजा के यहाँ जगदीश का भंडारा है, उसी के लिए हम लोग पत्तलें बना रहे है।" तब वह भी उन्हीं लोगो के साथ काम करने लगा। शाम को सब लोगों के साथ भाट भी राजा के महलो को गया। पत्तल वाले पत्तलें देकर भोजन करने बैठ गये। परन्तु भाट ऊँची-नीची जगह तलाश करता फिरता था। परोसने वालो ने पूछा—"तू बैठता क्यो नहीं? इधर से उधर क्यो फिरता है?" वह बोला—"मै बहुत भूखा हूँ।" उन्होंने कहा—"तब तू दो पत्तलें डाल ले। जहाँ तेरी मरजी हो बैठ जा।" भाट एक जगह बैठ गया। उसने एक पत्तल मे भोजन किया और दूसरा पत्तल बाँध लिया।

उस पत्तल को लेकर वह इस विचार से गाँव के बाहर जा बैठा कि यदि कोई मेरे गाँव का जाने वाला मिल जाय, तो यह पत्तल स्त्री के लिए भेज दूँ।

शाम के वक्त छाछ बेचने वाली स्त्रियाँ शहर से गावो को जा रही थीं। उन्हीं मे भाट के गाँव की स्त्रियाँ भी थी। उसने उनसे कहा—"क्या तुम मेरी भेजी हुई चीज़ मेरी भाटिन को दे दोगी?" उन्होंने कहा—"ज़रूर देदेंगी। लाओ दो।" तब भाट ने कहा—"मुझे जो कुछ देना है, तुम्हारी खाली मटकियों में रख देता हूँ। तुम इसको देखना भी नहीं। भाटिन को ऐसी ही बन्द मटकियाँ दे देना। वह अपनी चीज निकालकर तुम्हारी मटकियाँ वापस कर देगी।"

छाछ बेचने वाली भाट को सौगात लेकर थोड़ी ही दूर चली होगी कि उसके सिर का बोझ भारी होने लगा। उसने बोझ को सिर पर से उतारकर भाट को पठौनी देखने की इच्छा-से मटको में हाथ डाला। हाथ मटकी में फँस गये। बहुत उपाय करने पर भी उसके हाथ नहीं निकले। तब उन्होंने जगदीश का स्मरण करके कहा—"भाट की सौगात भाट के यहाँ जाय, हमारा हाथ छूट जाय।" इससे उनके हाथ मटकियों से बाहर निकल आये।

पठौनी ले जानेवाली ने घर जाकर अपनी सास से कहा—"मेरी मटकी में भाटिन की कुछ वस्तु है, उसको देखना नहीं; भाटिन को बुलाकर देदो।" सास ने मटकी उघारकर देखी तो उसमें जवाहरात भरे हुए थे। उसने सोचा कि मटकी भर गेहूँ भाटिन को देदूँ और यह जवाहरात अपने घर मे रखलूँ। परन्तु जब उसने गेहूँ निकालने के लिये कच्ची कोठार का छेद खोला, तो उसमें से गेहूँ के बजाय कीड़े निकलने लगे। तब सास ने कहा—"भाट की सौगात भाट के यहाँ जाय, हमारे गेहूँ के गेहूँ हो जायँ।" कोठार के गेहूँ बदस्तूर गेहूँ हो गये। तब उस अहीरिन ने उस भाटिन को बुलाकर बन्द मटकी देदी। उसने मटकी को घर लेजाकर खोला, तो उसमें बहुमूल्य हीरे-जवाहरात भरे निकले। उसमें से एक अंश पुण्य-कार्यों के लिये संकल्प कर दिया और शेष से वह अपने खाने-पीने का काम चलाने लगी।

भाट जगदीशजी को चला जाता था। रास्ते में उसे साधु के वेश में जगदीशजी मिल गये। साधु ने पूछा—"भाट! कहाँ जाता

है ?" उसने कहा—"महाराज ! जगदीशजी के दर्शन करने जाता हूँ ।" साधु ने कहा—"जगदीशजी का पंथ क्या आसान है ? यदि सचमुच तुझे जगदीशजी की छड़ी लगी है, तो हमारी धूनी मे धॅस जा, शीघ्र ही जगदीशजी को पहुँच जायगा ।" जब भाट धूनी मे धॅसने लगा, तब साधु ने उसे मना करके कहा—"चल, हम तुझे सरल रास्ता बतला देते हैं ।" कुछ आगे चलकर साधु ने एक अन्धकूप बतलाकर कहा—"इसमे कूद जा ।" भाट उसी मे कूदने को तैयार हो गया । तब साधु ने कहा—"यह नही, भड़भूजे के भाड़ मे सर देने से बहुत जल्दी जगदीशजी के दर्शन होंगे ।" भाट भाड़ मे सर देने को तैयार होगया । इस प्रकार उसे सब परीक्षाओं मे उत्तीर्ण पाकर साधु ने कहा—"अब संध्या हो गई है । तुझे अवश्य स्वामीजी के दर्शन होंगे और तेरी इच्छाएँ पूर्ण होंगी ।

भाट स्नान करके आया, तो स्वामीजी ने उसे एक दाल एक चावल और चुटकी भर आटा देकर कहा—"यह जिन्स हम-तुम दोनों मूर्तियो के लिये है ।" यह सुनकर भाट को क्रोध आगया कि इसमे चिड़िया का पेट तो भर नही सकता, दो जने का भोजन कैसे होगा । स्वामीजी ने उसके मनके भावको समझकर कहा—"एक हांडी में अदहन रखकर दाल-चावल के दाने उसमे डाल दे और आटा को गूँधकर ढॉक दे ।" उसने वैसा ही किया । आँच लगते ही खिचड़ी हाँड़ी से ऊपर उबल आई । भाट ने उफान मे आये हुए पानी को पी लिया और उसी से सन्तुष्ट होगया । उसने आटेवाली थाली को उघारकर देखा तो आटा इतना ज्यादा

बढ़ गया कि थाली मे समाता न था। आखिर भाट ने रसोई बनाकर तैयार की। तब अपने साथी (स्वामीजी) के पास जाकर उसने कहा—"भोजन तैयार है, चलकर भोजन करिये।" उन्होंने जवाब दिया—"रे दरिद्र भाट! तूने रसोई को जूठी तो पहले ही कर दिया। अब मुझको बुलाने आया है? मैं अब वह भोजन नही करूँगा। तू चाहे जिसे खिला दे। ध्यान रख! तुझमे यही एक बड़ा दोष है कि तू संतोषी नहीं है। इसीके कारण दरिद्र ने तेरे मन में और घर मे स्थान कर लिया है।" भाट ने मेला के अन्यान्य यात्रियों को खूब भोजन कराया, फिर भी भंडार में बहुत-सा अन्न पड़ा रहा। फिर भाट ने स्वामीजी से पूछा—"अब इस अन्न को क्या करूँ?" उन्होंने कहा—"इसको समेटकर बाँध ले और रास्ते भर इसीको खाता-पीता चला जा।" भाट बोला—"बस, मे समझ गया, तुम्हीं स्वामीजी हो, क्योंकि ऐसी सिद्धि और किसमे हो सकती है? मै इस अन्न को नही बाँधूँगा। मैं तो अपने प्रेम की परीक्षा दे चुका। अतः कृपा करके आप भी अपनी परीक्षा दीजिये, जिससे मुझको निश्चय हो जाय।"

स्वामीजी ने कहा—"तू कच्चा धागा ला, मै उसपर झूलता हूँ; और सात करवे ला, मै उनकी टोंटी मे से निकलता हूँ।" तब भाट ने कहा—"महाराज! क्षमा कीजिये मै आपकी परीक्षा लेने योग्य नहीं हूँ। मै तो अल्पज्ञ हूँ और आप सर्वज्ञ है। जैसे आपने कृपा करके मार्ग मे दर्शन दिये, वैसे ही दर्शन पुरी मे मिलें।" तब स्वामीजी ने कहा—"जहाँ हम है, वहीं पुरी है। तू इस भ्रम मे न पड़। जो

तेरी इच्छा हो सो कह।" वह बोला—"महाराज! मैं बहुत ही दरिद्र हूँ, मुझको भर पेट खाने को नही मिलता। इस कारण मेरी दरिद्रता दूर कीजिये।

पुरी के समीप ही झाड़ी का वन है। श्रीस्वामीजी ने भाट को आज्ञा दी—"बेत की झाड़ी मे से पाँच बेत तोड़ ला।" भाट झाड़ी मे जाकर अच्छे-अच्छे बेत देखकर तोड़ने लगा, तो उसकी आप ही आप मुसकें बँध गईं। स्वामीजी ने पुकारकर बुलाया—"क्या करता है रे भाट!" उसने जवाब दिया—"महाराज! मैं तो यहाँ बन्धन मे पड़ गया।" स्वामीजी ने कहा—"तू बड़ा लोभी है। तुझे तृष्णा भी अधिक है। इसीसे तेरा यह हाल हो रहा है। तू इन बातो के त्यागने का संकल्प करके सिर्फ पाँच बेत लेकर चला आ।" भाट ने वैसा ही किया और वह पाँच बेत लेकर स्वामीजी के पास आगया। तब स्वामीजी ने एक पीतल की बटलोई उसे देकर कहा—"चैत्र मास के प्रति सोमवार को इन बेतों की पूजा किया करना। चौथे सोमवार को हमारे नाम से भंडारा देना। इस बटलोई से छप्पन भोजन तुमको मिला करेंगे।"

भाट वहाँ से घर को वापस आया। रास्ते मे एक जगह पानी पीने लगा तो उसके चुल्लू मे पानी के साथ टेसू का फूल आगया। उस फूल को देखकर उसे स्मरण आया कि आज तो चैत्र का पहला सोमवार है, स्वामीजी की पूजा करनी है और कथा कहनी है। पास ही खेतों मे लोग दाँवर चला रहे थे। उसने उनसे कहा—"भाइयो! ज़रा मेरी कथा सुन लो, तो मैं इसी जगह पूजन

कर लूं ।" उन्होने कहा—"हमको इतना अवकाश नहीं है।" यह सुनकर भाट आगे चला । उनका गल्ला आपसे आप जलने लगा। तब वे लोग दौड़े गये और भाट को वापस बुला लाये और उससे बोले—"हम तुम्हारो कथा सुनेंगे। हमारी गल्ले को आग बुझा दो ।" उसी समय आग बुझ गई । भाट ने खेतों की पूजा की, स्वामीजी को कथा कही, तब वह आगे चला ।

दूसरे सोमवार को भेड़ें चराते हुए गड़ेरिया कुदरती भाट को रास्ते में मिला । उसने कहा—"भाई ! मेरी कथा सुन लो, तो मैं पानी पी लूँ; बहुत प्यासा हूँ ।" गड़ेरिया ने उसकी बात पर ध्यान ही नहीं दिया, तो सहसा उसकी भेड़े बिला गईं । तब उसने भाट को बुलाकर कहा—"मैं तुम्हारी कथा सुनता हूँ, मेरी भेड़ें आ जावें ।" भाट कथा कहने लगा, गड़रिया सुनने लगा । कथा पूरी होते-होते उसकी भेड़ें दुगनी-तिगुनी होकर चरती हुई दिखाई देने लगीं ।

भाट के कई लड़कियाँ थी । पहलो लड़की किसी बड़े अमीर के घर ब्याहो थो और दूसरो उसी गाँव के पास एक निर्धन के यहाँ ब्याही थी। तोसरे सोमवार को भाट पहली लड़की के घर पहुँचा । उसने लड़की से कहा—"मेरा पूजा का सामान लगा दे, मै स्वामीजी को पूजा कर लूँ, और मेरे पास बैठकर जरा मेरी कथा सुन ले ।" लड़की ने उसको इस बात पर जरा भी ध्यान नहीं दिया । तब वह वहाँ से चला आया और गरोब लड़की के घर गया । गरोब लड़की उससे बड़े प्रेम-भाव से मिलो । उसने बाप के कहे अनुसार पूजा के लिये चौका लगा दिया । बाप पूजा

करने लगा, तब तक लड़की घर मे से सन की अंटी लेकर बनिया के यहाँ दौड़ी गई। और उससे बोली—"मेरे इस सन के बदले मे पूजा के लिए घी-गुड़ दे दे।" उसने लड़की को सौदा दिया। घर आकर उसने उसी घी-गुड़ से स्वामीजी के नाम का होम किया और प्रेम से कथा सुनी।

तब बाप ने कहा—"तू जाकर गाँव भर को नेवता दे आ।" लड़की नेवता देने गई। इधर भाट ने स्वामीजी की दी हुई बटलोई मे बेत डालकर खटखटाया तो कच्चे-पक्के सब प्रकार के छप्पन व्यंजनों के ढेर लग गये। गाँव के जो लोग प्रसाद लेने आये, सब को भाट ने खूब भोजन कराया। लड़की और दामाद ने भी खूब भोजन किये। जब बाप चलने लगा तो लड़की ने दुखी होकर कहा—"जितने दिनो तक तुम रहे, हमने भर पेट खाना खाया। अब फिर भूँखों मरेंगे।" तब भाट ने कहा—"श्रीस्वामीजी का स्मरण किया करो, वही तुम्हारा भला करेंगे।" बाप तो चला गया। उसी दिन से लड़की के घर मे भी धन-धान्य की बढ़ती होने लगी।

भाट अपने गाँव के पास पहुँचा। वहाँ उसे कुछ विशेष चमत्कार दिखाई दिया। गाँव के बाहर नये-नये बाग-बगीचे, मंदिर, तालाब आदि देखकर भाट ने पूछा—यह सब किसके हैं ?" लड़कों ने कहा—"कुदरती भाट के हैं।" गाँव मे पहुँचकर उसने देखा कि जहाँ उसकी झोंपड़ी थी, वहाँ बड़े महल खड़े हैं। उसने पूछा—"यह महल किसके हैं ?" लोगों ने कहा—"कुदरती भाट के।" तब तो भाट बड़े

असमंजस मे पड़ गया। उसने लोगों से कहा—"कुदरती भाट तो मैं ही हूँ। मै जगदीश को गया था। तब भाटिन को दरिद्रावस्था में छोड़ गया था। उसने यह सब कहाँ से पाया? क्या मेरे नाम का कोई दूसरा आदमी तो इसमें नहीं रहता?" लोगों ने कहा—"यह तो हम नहीं जानते कि उसने यह धन कहाँ से पाया? किन्तु इतना जरूर जानते है कि यह घर तुम्हारा है।" भाटिन को खबर लगी कि भाट आ गया है। वह छज्जे पर बैठकर पति का मार्ग देखने लगी। जब भाट मकान के पास पहुँचा, तो उसने ऊपर से बुलाया—"यही तुम्हारा मकान है, चले आओ।" भाट भीतर गया। स्त्री ने उसका विधिवत् स्वागत किया।

जिस दिन भाट अपने घर पहुँचा, उस दिन सोमवार था। भाट ने स्त्री से कहा—"गाँव भर का न्यौता करा दो। आज मुझे भंडारा करना है।" स्त्री ने कहा—"इतनी जल्दी भंडारा कैसे हो सकता है? दो चार दिन ठहरो, मैं प्रबन्ध कर लेती हूँ। फिर अच्छी तरह भंडारा करना।" परन्तु भाट ने कहा—"तुमको इससे क्या? मै जो कहता हूँ, सो करो।" तब भाटिन गाँव में न्योता देने चली गई और भाट ने पट और बेतों की पूजा की। पूजा करने के बाद भाट ने बटलोई में बेत खटखटाए और छप्पन व्यंजनो के ढेर लग गये। नाई यह सब चरित्र देखता था। उसने दौड़कर राजा के यहाँ खबर कर दी। गाँव के छोटे-बड़े सभी लोग भाट के यहाँ भोजन करने आये। सब लोग भोजन करके चले गये। भाट ने राजा के यहाँ भी प्रसाद भेजा। वहाँ इस बात

पर सब लोगों को आश्चर्य हुआ कि आज ही तो यह भाट आया और आज ही इसने इतना बड़ा भंडारा कैसे किया।

राजा को नाई से सब हाल पहले मालूम हो चुका था कि भाट की बटलोई में करामात है। राजा ने यह बात मंत्रियों से कहा और यह भी कहा कि किसी युक्ति से भाट के पास से वह बटलोई ले लेनी चाहिये। इस पर मंत्रियों ने सलाह दी कि राजकुमार को भाट के घर भेजना चाहिये। वह ज़िद करके उससे बटलोई माँग लेंगे। यदि वह उनको न दे, तो फिर बल-प्रयोग करके उससे छीन ली जायगी।

दूसरे दिन कुछ लोग राजकुमार को भाट के घर लिवा लाये। राजकुमार ने भाट से बटलोई माँगी, तो उसने खुशी से बटलोई राजकुमार को दे दी। बटलोई पाकर राजा ने नगर-भोज ठान दिया। परन्तु जब बटलोई मे बेत डालकर खटखटाये तो कुछ भी न निकला। जो लोग न्योते हुए आये थे, वे भूखे बैठे थे। राजा ने चाहा कि उनके लिये कोठार से जिन्स मँगाकर भोजन बनवायें, पर वहाँ भी कोई जिन्स न थी; न जाने कहाँ बिला गई थी। इस पर राजा ने असंतुष्ट होकर भाट को पकड़ने के लिये सिपाही भेजे। परन्तु वह तो पहले ही चंपत हो गया था।

कुदरती भाट घबड़ाया हुआ श्रीस्वामीजी की तरफ भागता जाता था। रास्ते मे दो आम के वृक्ष मिले, उन्होंने पूछा—"भाट! कहाँ जाता है?" उसने कहा—"स्वामीजी के यहाँ जाता हूँ।" वे बोले—"हमारा सन्देश स्वामीजी से कहना कि हम फूलते-फलते

सब कुछ हैं, परन्तु कोई हमारे फल नहीं खाता। इसका क्या प्राय-श्चित्त है ?" भाट ने कहा—"बहुत अच्छा।" वह आगे चला, तो दो पोखरी मिलीं। उन्होंने पूछा—"भाट ! तुम कहाँ जाते हो ?" उसने कहा—"स्वामीजी के यहाँ।" पोखरियों ने कहा—"हमारा सन्देशा स्वामीजी से कहना कि हममें ऐसा स्वच्छ जल भरा हुआ है; परन्तु न तो कोई जल पीता है, न नहाता है।" उसने कहा—"बहुत अच्छा।" वह और आगे चला, तो दो स्त्रियाँ ऐसी मिलीं जो सिर पर लकड़ियों का बोझ रखे फिरती थीं। उन्होंने कहा—"भाट ! हमारा सन्देशा स्वामीजी से कहना कि हमको इसी तरह फिरते मुद्दत हो गई। हमारे सिर से बोझ नहीं उतरता।" वह और भी आगे चला तो एक स्त्री ऐसी मिली जो सिर पर तवा चिपकाये फिरती थी। उसने कहा—"भाई ! मेरा सन्देशा भी स्वामीजी से कहना कि यह तवा हमेशा मेरे सिर पर चिपका रहता है।" वह और आगे चला तो एक स्त्री चूतड़में पीढ़ा चिपकाये दिखाई पड़ी। उसे जब मालूम हुआ कि भाट स्वामीजी के यहाँ जा रहा है, तो उसने कहा—"मेरा सन्देशा स्वामीजी से कहना कि यह पीढ़ा मेरे चूतड़ों में चिपका रहता है। इसका प्रायश्चित्त क्या है ?" भाट उससे "अच्छा" कहकर आगे चला तो एक साँप आधा बाँबी मे और आधा बाहर मिला। उसने भाट से कहा—"भाई ! मेरा सन्देशा स्वामीजी से कहना कि न तो मैं बाँबी मे भीतर जा सकता हूँ न बाहर आ सकता हूँ। ऐसा मैंने कौनसा पाप किया है ?" वह और भी आगे चला तो एक बिना सवार का घोड़ा मिला। उसने कहा—"भाई ! मेरा

सन्देशा भी स्वामीजी से कहना कि मै मुद्दत से सजा-सजाया फिर रहा हूँ। कोई मुझ पर सवारी नहीं करता।" वह और भी आगे चला तो एक नदी मिली। उसके एक पार बछड़ा था और दूसरे पार गाय थी। गाय ने भाट से कहा—"भाई भाट! मेरा सन्देशा स्वामीजी से कहना कि हमारी माँ-बेटे की जुदाई का क्या प्रायश्चित्त है?" वह और आगे चला तो एक अधबना मकान मिला। मकान के मालिक ने भाट से पूछा—"कहाँ जाते हो?" भाट ने कहा—"मै तो जगदीशपुरी जाता हूँ।" तब वह बोला—"भाई! मेरा संदेश भी स्वामीजी से कहना कि मेरा यह महल पूरा नही होता; रोज़ उठता है और रोज़ गिरता है। भाट ने कहा—"बहुत अच्छा।"

सब के सन्देशे लेता हुआ भाट जगदीशपुरी के समीप पहुँचा तो पुनः स्वामीजी ने उसे साक्षात् दर्शन देकर कहा—"क्यो रे भाट! मैंने तुझको इतना दिया, परन्तु फिर भी तुझे सन्तोष नही होता। तू ने रास्ता देख पाया तो बार-बार यहीं आ जाता है।" उसने हाथ जोड़कर सविनय प्रार्थना की–"हे प्रभो! आपने जो बटलोई दी थी, उसे राजा-रानी ने ले लिया। उससे उनको कुछ प्राप्ति नहीं हुई, तो अब वे मेरे प्राण लेने पर तुले बैठे हैं। इसी प्रकार मेरे धनवान दामाद की स्थिति एकदम बिगड़ गई; वह भूखों मरने लगा है। तब स्वामीजी ने कहा—"तू वापस जाकर राजा-रानी से अपनी बटलोई ले ले और बेटी और दामाद को तू कथा सुनादे, तो वे पुनः पूर्ववत् अच्छी हालत मे हो जायँगे।

भाट स्वामीजी को दण्डवत् करके घर की तरफ भागा। जितने क़दम वह घर की तरफ़ देता था, उतना ही बहरा होता जाता था। तब वह घबड़ाकर स्वामीजी ओर को चला। स्वामीजो तो अन्तर्यामी हैं। उन्होंने उसो जगह प्रकट होकर पूछा—"अरे मूर्ख! यह तू क्या करता है? बार-बार जाता है, बार-बार आता है।" भाट ने कहा—"महाराज! मैं क्या करूँ, आपकी इच्छा ही ऐसी है। मै घर को ओर जाता हुआ बहरा होता जाता था। इसो कारण वापस दौड़ा आया हूँ।" स्वामीजी ने पूछा—"तू किसो के सन्देशे कहने को तो नहो भूल गया?" भाट ने कहा—"हाँ महाराज! यह बात तो अवश्य है। अब मैं कहता हूँ सो सुनिये।" स्वामीजी ने कहा—"एक-एक कर के सब के सन्देशे कह डाल; हम सब का जवाब देंगे।" इस पर भाट ने क्रमशः सब के सन्देशे कह सुनाये। तब श्री स्वामीजी ने कहा—"वे दोनों आम के वृक्ष उस जन्म के मामा-भानजे है। मामा ने भानजे को थाती (धरोहर) खाई थी, इस पाप से उनकी यह दशा हुई। तुम पाँच-पाँच आम दोनों पेड़ों मे से खाना, तब सब उनके फल खाने लगेंगे। दोनों पोखरो उस जन्म को देवरानी-जेठानी है। वे हमेशा कलह करतो रही हैं; कभी मिलकर नहीं रहीं। कभी उन्होने आपस मे बायना भी नहीं लिया-दिया। इसी कारण उनका कोई जल नहीं पीता। तुम पाँच-पाँच चुल्लू जल दोनो पोखरियों मे से पी लोगे, तो सब लोग उनका जल बरतने लगेंगे। बोझवाली स्त्री स्वार्थिन है। उसने उस जन्म

मे दूसरों से अपने बोझ तो उतरवाये; परन्तु उनके बोझ नहीं उतारे। इसी कारण उसको यह दण्ड मिला है। तुम उसके बोझ को छू दोगे, तो वह सिर पर से उतर जायगा। सिर पर बड़ा तवा लिये फिरने वाली ऐसो स्त्री है, जिसने सास-ननद की ओट करके चूल्हे पर तवा चढ़ाया और खाने बैठ गई। तुम उसके तवे को छू दोगे तो उसका पाप दूर हो जायगा। चूतड़ पर पोढ़ा लिये फिरने वाली अभिमानिनी स्त्री है। उसकी सास-ननद ज़मीन पर बैठो होतीं, तब भी वह पीढ़ा पर बैठती थी। इसी कारण अब वह पीढ़ा उसके चूतड़ों से चिपका फिरता है। तुम उसे छू दोगे तो वह गिर जायगा। आधा बाँबी मे और आधा बाहर जो सर्प है, वह उस जन्म का प्रधान है। उसने औरों को विद्या तो ली; परन्तु अपनी विद्या किसो को नहीं दो। तुम्हारे छूने से वह भी चलने लगेगा। वह जो गाय है, उस जन्म की स्त्री है। उसने अपनो सौत और उसके पुत्र में झगड़ा लगाया था। इस कारण अब उसको माँ-बेटे का त्रियोग हुआ है। तुम उनको इकट्ठा कर देना। वह जो घोड़ा है, वह अपने स्वामी को रण मे जुझाकर भाग आया था। तुम उस पर सवार होकर पाँच कदम चलना. तब सब उस पर सवारी करेंगे। महल को बाबत साहूकार से कहना कि उसके नगर मे कोई कन्या क्वाँरी है। उसके माँ-बाप गराब हैं। उसको तलाश करके साहूकार उसका ब्याह करा दे, तो उसका महल उठ जायगा और उसको सब इच्छाएँ पूरी होंगी।"

सब के संदेशे भुगतान करता हुआ भाट अपने घर गया, तो राजा ने बुलाकर उसका बड़ा आदर किया और उसकी बटलोई उसे वापस दे दो। तब उसने फिर से स्वामीजी की पूजा की और लड़को तथा दामाद को बुलाकर कथा सुनाई। तब उनको सम्पत्ति जैसी की वैसी हो गई।

कहा जाता है कि तिसुआ सोमवार को पूजा इसो कुदरती भाट की यात्रा के समय से चलो है। टेसू के फूल से प्रथम पूजन भी तभी से आरम्भ हुआ, इसो कारण यह तिसुआ सोमवार कहलाया।

शीतला-अष्टमी

चैत्र बदी अष्टमी को शीतला-अष्टमी कहते हैं। इस तिथि में स्त्रियाँ भगवती का पूजन करके उनकी मढ़ी या देवालय मे जाती है। पूजन की विधि मे कोई विशेषता नहीं है। किन्तु इस पूजन के बाद सम्पूर्ण ठंढी वस्तुओं का भोग लगाया जाता है। उस दिन जो पकवान चढ़ाया जाता है, वह सब सप्तमी का बना हुआ होता है। एक दिन पहले के बने हुये कच्चे-पक्के सब प्रकार के व्यंजन पूजा मे रक्खे जाते हैं। घर की अधिष्ठात्री या पूजा करनेवाली उस दिन बासी अन्न खाती है।

स्त्री हो या पुरुष, जो शीतला-अष्टमी का व्रत करता है, वह मध्यान्ह मे भगवती का पूजन करके बासी अन्न केवल एक बार भोजन करता है। मढ़ी मे पूजा हो चुकने के बाद कथा कही जाती है, जो इस प्रकार है :—

कथा

किसी एक राजा के पुत्र को शीतला (चेचक) निकली थी। उसी शहर मे एक काछी के लड़के को भी शीतला निकली थी। काछी बहुत गरीब था, परन्तु भगवती का उपासक था। वह शीतला-सम्बन्धी उन सब नियमों को भली भाँति मानता था, जो

धार्मिक दृष्टि से आवश्यक समझे जाते हैं—जैसे शीतला वाले के पास खूब सफ़ाई रखना, वहाँ की ज़मीन को रोज़ ही लीपना। शुद्ध अवस्था ही में छूना, भगवती की मानता करना, अर्थात् जब शीतला हों, तब नमक न खाना, घर में तरकारी न बघारना, न कोई चीज़ भूनना, कड़ाही नहीं चढ़ाना, और कोई गरम चीज़ न आप खाना, न शीतला वाले को खिलाना, सदैव शीतल वस्तुओं का व्यवहार करना इत्यादि।

काछी तन-मन से भगवती की मानता करता था और लड़के को साग और रोटी के सिवा और कोई चीज़ खाने को नहीं देता था। अस्तु, वह लड़का शीघ्र ही चंगा होगया।

राजा के यहाँ राजकुमार को शीतला निकलने के कारण भगवती के मण्डप में शतचंडी का पाठ बैठा था। नित्य हवन और बलिदान होते थे। राज-पुरोहित भगवती की मानता करता था। परन्तु राजघर में नित्य कड़ाही चढ़ती थी, अनेक प्रकार के गरम पुष्ट और स्वादिष्ट व्यञ्जन बनते थे। हर तरह की तरकारियाँ और मांस भी पकता था। उन व्यञ्जनों की गंध पाकर राजकुमार मनमानी चीजें खाने को माँगता था और सब चीजें उसे खाने को दी जाती थी। सारांश यह कि राजा की ओर से हजारों रुपये ख़र्च होते थे। बहुत बड़ा आडम्बर था। इस कारण राजकुमार पर शीतला का अधिकाधिक प्रकोप होता जाता था, उसके शरीर में बड़े-बड़े फोड़े पड़े थे, खुजली होती थी और सर्वाङ्ग में जलन

पैदा हो रही थी। राजा-रानी ज्यों-ज्यों शीतला की शान्ति के उपाय करते थे, त्यों त्यों उनका कोप अधिक होता जाता था।

जब राजा को यह समाचार मिला कि राजकुमार के साथ ही एक काछी के लड़के को भी शीतला निकली थीं और वह बिलकुल अच्छा होगया है। तब राजा को एक प्रकार की ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह अपने मन मे सोचने लगा कि भगवती क्यो ऐसा अन्याय कर रही हैं कि मैं हजारो रुपये रोज़ाना खर्च करता हूँ, मेरा लड़का तो दिन-दिन विशेष व्यथित होता जाता है और गरीब काछी जो किसी तरह भी भगवती की सेवा-पूजा मेरे मुकाबिले मे नहीं कर सकता, उसका लड़का विना प्रयास चंगा हो गया है।

इन्हीं बातों पर तर्क-वितर्क करते हुए राजा को नींद आगई। तब शुक्लाम्बर-धारिणी भगवती ने राजा को स्वप्न मे दर्शन देकर कहा—"मै तुम्हारो सेवा से प्रसन्न हूँ। यही कारण है कि अब तक तुम्हारा पुत्र जीवित है। वास्तव में तुम स्वयं तो उन नियमों का पालन नहीं करते, जो शोतला के समय ज़रूरी हैं और मुझको दोष देते हो। ऐसी दशा मे सदा ठंढी वस्तुओ का प्रयोग होना चाहिये। नमक खाना इसलिए मना है कि उससे खुजली पैदा होती है। घर मे बघार लगाना इस कारण मना है कि उसको गंध पाकर बीमार आदमी को उसपर तबीयत आना और उसे खालेना सम्भव है। किसी के पास जाना-आना और मिलना-मिलाना इस कारण मना है कि जिसमे यह रोग दूसरे को न लग जाय। दूसरों की कुशल चाहने से अपनी कुशल होती है। तब राजा ने हाथ जोड़-

कर विनती की—"हे माता! अब मुझे जो आज्ञा हो सो करूँ, परन्तु पुत्र की रक्षा कीजिये।"

इस पर भगवती ने कहा—"आज से तुम राजा-रानी अटाले में कड़ाही न चढ़ने दो, शीतल पदार्थ राजकुमार को खिलाओ और इसी प्रकार शीतल पदार्थ मुझे भोग लगाओ।" यह कहकर देवी अंतर्द्धान होगई। राजा ने सवेरे ही से विधिवत् मानता करनी शुरू की, तो दैवयोग से उसी समय से राजकुमार की तबीयत अच्छी होने लगी। कुछ दिनो के बाद राजकुमार बिलकुल अच्छा होगया।

जिस दिन भगवती ने राजा को स्वप्न में दर्शन दिये थे, उस दिन चैत्र बदी सप्तमी थी। राजा ने शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया था कि अष्टमी को सब लोग बासी अन्न का और शीतल पदार्थों का भोग लगाकर भगवती की पूजा करे और इस अष्टमी को शीतला-अष्टमी कहा जाय।

उसी समय से सर्वसाधारण मे शीतला-अष्टमी की पूजा का प्रचार हुआ है।

अधिकांश देखा गया है कि चैत्र और वैशाख ही के महीनों मे ही शीतला का प्रकोप अधिक होता है। अस्तु, शीतला-अष्टमी की पूजा आम तौर से यह शिक्षा देती है कि शीतला के रोग के समय किस विधि से रहना चाहिये और कैसे भगवती की पूजा करनी चाहिये। सारांश यह कि सफ़ाई रखना और ठंढी चीज़ों का व्यवहार करना ये दोनों वस्तुएँ शीतला के सम्बन्ध मे मुख्यतः अनुकरणीय हैं।

———

एकादशियों के व्रत

हिन्दू जाति मे कदाचित् सबसे अधिक प्रचलित एकादशी-व्रत माना जाता है। प्रत्येक पक्ष की एकादशी को यह व्रत रक्खा जाता है। इस प्रकार साल मे २४ दिन यह व्रत आता है।

इन चौबीसों एकादशियो मे ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष की एकादशी सर्वश्रेष्ठ फलदायक समझी जाती है, क्योंकि इस एक एकादशी का व्रत रखने से साल भर की एकादशियो के व्रत का फल प्राप्त होता है। इसकी कथा इस प्रकार है कि विशालकाय भीमसेन ने व्यासजी से प्रार्थना की—"हे भगवन्, मेरे भाई—अर्जुन आदि तो सब एकादशियों का व्रत रखते है, किन्तु मुझसे भूखा नहीं रहा जाता, इसलिये मुझे तो कृपाकर एक ऐसा व्रत बतला दीजिये, जिस से मै एक ही दिन मे पूरा फल पाऊँ।" व्यासजी ने कहा—"अच्छा तुम ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष की एकादशी का व्रत रक्खो। इससे तुम्हारा सब एकादशियों को अन्न खाने का पाप दूर हो जायगा और साथ ही पूरे वर्ष की एकादशियों के व्रत का पुण्य-लाभ भी होता है। किन्तु इस व्रत मे कठिनाई यह है कि इसमे एकादशी के सूर्योदय से द्वादशी के सूर्योदय पर्यन्त जल तक ग्रहण करने की मनाही है। इसीलिये इसे निर्जला या भीमसेनी एकादशी भी कहते हैं।

निर्जला एकादशी के बाद आषाढ़ कृष्ण पक्ष मे योगिनी एकादशी पड़ती है। इसके सम्बन्ध मे यह कथा प्रसिद्ध है कि

कुबेरपुरी में हेममाली नामक एक सेवक कुबेर को पूजा के लिये फूल दिया करता था, किन्तु एक दिन अपनी स्त्री के प्रेम-वश होकर वह फूल लेकर नहीं गया, जिससे कुबेर ने शाप दिया—"तू ने देव-पूजा में बाधा डाली है, इसलिये कोढ़ी हो जा।" हेममाली कोढ़ी होगया और व्याकुल होकर चारों ओर फिरने लगा। घूमते-घूमते वह मार्कण्डेय मुनि के आश्रम मे पहुँचा। मुनि ने उसे आषाढ़ के कृष्ण पक्ष की एकादशी का व्रत करने का उपदेश दिया। मुनि के आदेशानुसार व्रत रखने से हेममाली का शरीर पुनः पूर्ववत् हो गया।

आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम पद्मनाभा है। कहा जाता है कि पानी न बरसने पर यदि यह व्रत व्यापक रूप मे किया जाय तो वृष्टि होती है। इसके विषय मे ब्रह्माण्ड पुराण को यह कथा प्रचलित है—किसी राजा के राज्य मे तीन वर्ष तक पानी नही बरसा, जिसके कारण प्रजा को असह्य कष्ट होने लगा। राजा ने प्रजा की दुर्दशा देख ऋषि-मुनियों के पास जाकर युक्ति पूछनी आरम्भ की। संयोगवश वे अङ्गिरस ऋषि के आश्रम मे जा पहुँचे। उन्होने राजा को पद्मनाभा एकादशी का व्रत रखने का परामर्श दिया, जिससे राजा के राज्य मे खूब वृष्टि हुई और प्रजा कष्ट-मुक्त होगई।

श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम पुत्रदा है। कथा प्रसिद्ध है कि द्वापर युग मे महिष्मती नगरी के राजा महिजीत के पुत्र नहीं होता था; किन्तु लोमश मुनि

के आदेश से कामदा एकादशी का व्रत रखने से उनके एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ था।

श्रावण के शुक्ल पक्ष की एकादशी को कामदा कहते है। इस व्रत का भी बड़ा फल बतलाया गया है।

भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम अजा है। इस एकादशी का सम्बन्ध सत्यव्रती राजा हरिश्चन्द्र से जोड़ा जाता है। कहा जाता है कि जब अपनी सत्यनिष्ठा के कारण राजा हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र और स्त्री को बेचने के बाद एक डोम के हाथ अपने आपको भी बेच दिया था, तो उन्हे चिन्तित देख एक दिन एक मुनि ने उन्हे अजा एकादशी का व्रत रखने को अनुमति दी। इसी एकादशी के व्रत के प्रभाव से वे फिर से अपना राजपाट और स्त्री-पुत्र प्राप्त करके अन्त मे स्वर्ग-लोक-वासी हुए।

भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की एकादशी वामन या जयन्ती एकादशी कहलाती है। कथा प्रसिद्ध है कि उस दिन क्षीर-सागर-शायी भगवान् करवट बदलते है। उस दिन भगवान् वामनावतार की पूजा होती है।

आश्विन मास के कृष्ण पक्ष मे इन्दिरा एकादशी पड़ती है। यह व्रत पितरों की सद्गति के लिये रक्खा जाता है। इसके सम्बन्ध मे ब्रह्मवैवर्त पुराण मे एक कथा आयी है कि सत्युग मे माहिष्मतीपुरी मे इन्द्रसेन नामक राजा का राज्य था। नारद मुनि ने उससे बताया कि मै यमलोक गया था, वहाँ तुम्हारे पिता दुखी

हैं—उन्होंने सन्देश भेजा है कि इन्दिरा व्रत करके मुझे स्वर्गलोक पहुँचाओ। इन्द्रसेन ने इन्दिरा व्रत से अपनी अनभिज्ञता प्रकट की, तब नारदजी ने उन्हे व्रत की विधि बतलायी। पितृ-भक्त इन्द्रसेन ने यथाविधि व्रत रक्खा और उनके पिता स्वर्गलोक चले गये।

आश्विन शुक्ल पक्ष की एकादशी पापाङ्कुशा कहलाती है। इस व्रत से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है। इसकी कथा ब्रह्माण्ड पुराण मे आती है। इस दिन भगवान् पद्मनाभ की पूजा की जाती है।

कार्तिक कृष्ण पक्ष मे रमा एकादशी पड़ती है। यह व्रत पातिव्रत-धर्मानुरागिनी स्त्रियों का है। इससे स्त्रियों का पातिव्रत दृढ़ होता है और अगले जन्म मे भी वही पति प्राप्त होता है, जो इस जन्म मे होता है। इस एकादशी को तुलसी-विवाह एकादशी भी कहते हैं। इस दिन तुलसी और कृष्ण का विवाह-दिन भी मनाया जाता है। इसकी विस्तृत कथा पद्मपुराण मे मिलती है।

कार्तिक शुक्ल पक्ष की एकादशी को भीष्मा एकादशी कहते हैं। इसी दिन राजर्षि भीष्म पितामह पाण्डवों के बाण से घायल होकर बाण-शय्या पर लेटे थे और बाण-शय्या ही से पाण्डवों को उपदेश दिया था, जो महाभारत के शान्ति-पर्व में आया है। इस दिन के व्रत मे भीष्म के उक्त उपदेश पढ़े जाते हैं।

अगहन कृष्ण पक्ष की एकादशी का आविर्भाव देवताओं के परम शत्रु मुर नामक दैत्य का नाश करने के लिये हुआ था। यह एक शक्ति थी, जो भगवान् विष्णु के शरीर से मुर का बध

करने के लिये निकली थी। दैत्य का वध कर डालने पर उसे भगवान ने वरदान दिया कि लोक मे तेरी पूजा एकादशी व्रत के रूप मे होगी।

अगहन शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम मोक्षदा है। इसकी कथा का सम्बन्ध गोकुल के राजा वैखानस से माना जाता है, जिनके पिता स्त्री के शाप से नरकगामी हुये थे। राजा वैखानस ने एक ऋषि के आदेश से मोक्षदा एकादशी का व्रत किया, जिसके फल से उनके पिता स्वर्गवासी हुये।

पौष मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी सफला कही जाती है। कहा जाता है कि जिस प्रकार नागो मे शेष, पक्षियों मे गरुड़, यज्ञों मे अश्वमेध, नदियों मे गङ्गा और मनुष्यो मे ब्राह्मण है, वैसी ही एकादशियो मे सफला एकादशी है। नारियल, आँवला, सुपारी, अगर, लौंग और अनार से उस दिन नारायण देव की पूजा की जाती है—रात्रि को दीप-दान और जागरण भी होता है।

पौष शुक्ल पक्ष की एकादशी पुत्रदा कहलाती है। इसके विषय मे यह कथा प्रचलित है कि प्राचीन काल मे भद्रावती नगरी मे एक राजा राज्य करता था, जिसका नाम था सुकेतु। उसकी स्त्री का नाम शैव्या था। राजा बड़ा प्रजाप्रिय तथा न्यायी था। किन्तु कोई पुत्र न होने के कारण राजा-रानी दोनों दुःखी रहते थे। धीरे-धीरे राजा को अपने पुत्रहीन होने पर इतना खेद हुआ कि वह आत्मघात करने का विचार करने लगा। संयोगवश एक दिन राजा जङ्गल मे शिकार खेलते-खेलते दूर निकल गया और भूख-प्यास से व्याकुल

हो गया। कुछ दूर और आगे बढ़ने पर उसने एक विस्तृत सरोवर देखा, जिसके चारों ओर मुनि लोग वेद-पाठ कर रहे थे। राजा के पूछने पर मुनियों ने बतलाया कि आज पुत्रदा एकादशी का व्रत है। राजा ने मुनियों से अपने पुत्रहीन होने की बात बतलाई, तो इन्होंने उसे उक्त व्रत रखने का परामर्श दिया। राजा ने तदनुसार व्रत रक्खा और उसके एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आगे चलकर बड़ा यशस्वी हुआ।

माघ कृष्ण पक्ष की एकादशी को षट्तिला एकादशी कहते हैं। पौष मास के किसी शुभ नक्षत्र मे गोबर लेकर उसमें तिल तथा कपास मिलाकर गोले बना लिये जाते है और उन्हे सुखाकर होम के लिये तैयार रक्खा जाता है। षट्तिला एकादशी को उन गोलों का हवन करते है। दिन भर निराहार रहकर रात्रि को जागरण किया जाता है। इस व्रत मे काली गाय या काले तिलों का दान बहुत शुभ माना गया है। इस एकादशी को तिल का तेल लगाकर स्नान करते, तिलों ही का होम करते, तिल ही डालकर जल पीते और तिल ही का भोजन और दान करते हैं।

माघ शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम जया है। इसके सम्बन्ध मे पौराणिक कथा है कि इन्द्र की सभा मे माल्यवान् नामक गन्धर्व और पुष्पवती नामक अप्सरा नाच-गान के लिये रहती थीं। दोनों में गुप्त प्रेम हो गया। इसकी ख़बर इन्द्र को लगी, तो उन्होंने शाप दे दिया और दोनों इन्द्रलोक से पतित होकर हिमालय पर जा पड़े। वहाँ कष्ट भोगते-भोगते अकस्मात् जया एकादशी आई। उस

दिन अनजान में दोनों को कुछ खाने-पीने को नहीं मिला और शीत के कारण रात को नींद भी नहीं आई। इस अनजाने व्रत के पुण्य से ये दोनों पुनः इन्द्रलोक को पहुँच गये। इस व्रत के पुण्य-प्रभाव से करोड़ कल्प पर्यन्त वैकुण्ठ-वास मिलता है, ऐसी कथा पुराणों मे आई है।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष को एकादशी विजया कहलाती है। इसका बड़ा माहात्म्य माना जाता है। स्कन्ध पुराण मे आया है कि जिस समय श्रीरामचन्द्रजी ने लङ्का पर चढ़ाई की तैयारी की, तो सेना-सहित समुद्र पार करने के सम्बन्ध मे उनके मन मे शङ्का उत्पन्न हुई कि हम इस अपार समुद्र रामेश्वरम् को कैसे पार करेंगे? एक निकटवर्ती ऋषि ने उन्हे परामर्श दिया कि फाल्गुन कृष्णा एकादशी का व्रत रक्खो, इस से विजय होगी। श्रीरामचन्द्रजी ने ऐसा ही किया और ससैन्य सागर-पार उतरकर रावण को मार सीताजी को वापस लाये। इस व्रत का विधान इस प्रकार है कि फाल्गुन कृष्णा दशमी को सोने, चाँदी, ताँबें या मिट्टी के घड़े मे जल भर-कर उसके ऊपर पीपल, वट, गूलर, आम, पाकर के पल्लव रख देने चाहिये। इस कलश के नीचे सातो धान्य और ऊपर जौ रख-कर उसके ऊपर श्रीलक्ष्मीनारायण को सोने की मूर्ति रखनी चाहिए। एकादशी को प्रातःकाल स्नान करके कलश-युक्त श्रीलक्ष्मी-नारायण की पूजा करनी चाहिए और रात भर जागरण कर द्वादशी को प्रातःकाल उस कलश को जलाशय मे सिरा देना चाहिये तथा मूर्ति को किसी वेदपाठी ब्राह्मण को दान देना चाहिये।

फाल्गुन के शुक्लपक्ष की एकादशी को आमलकी कहते हैं। इसके माहात्म्य की कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है कि वैदिश नामक नगर में चैत्ररथ राजा रहता था। उसने आँवले के नीचे बैठकर फाल्गुन शुक्ला एकादशी को परशुराम की मूर्ति स्थापित कर उसकी पूजा की। संयोग-वश आँवले के नीचे एक व्याध भी आगया और रातभर वहीं बैठकर कथा सुनता रहा। इस पुण्य के प्रभाव से व्याध को अगले जन्म में राज-शरीर मिला और वह बड़े न्याय और धर्म के साथ राज्य करने लगा। एक दिन वह वन में शिकार खेलते-खेलते श्रमित हो एक जगह सो गया। उसे सोता देख डाकुओं के झुण्ड ने उसपर आक्रमण किया, किन्तु राजा के शरीरसे एक ऐसी भयङ्कर शक्ति स्त्री का रूप धारण करके निकली, जिसने उन डाकुओं को मार डाला। जागने पर राजा ने शत्रुओं का मरा हुआ देखकर आश्चर्य किया। इस पर आकाश-वाणी हुई कि पूर्वजन्म के एकादशी-व्रत के प्रभाव से तुम्हारी इस प्रकार रक्षा हुई है।

चैत्र मास के कृष्ण पक्ष में पाप-मोचनी एकादशी पड़ती है। भविष्योत्तर पुराण में इसके सम्बन्ध में यह कथा आई है कि एक बार वसन्त ऋतु में चैत्ररथ नामक एक वन में इन्द्र अपनी अप्सराओं और गन्धर्वों के साथ विहार कर रहे थे। उसी वन में मेधावी नामक एक मुनि-कुमार भी तपस्या करते थे। मुज-घोषा नामक एक अप्सरा ने मुनि को देखा और उनके पास जाकर उन्हें अपने ऊपर आसक्त कर लिया। मुनि अपनी तपस्या भूलकर

ऐसे कामासक्त हुये कि ७५ वर्ष तक उस अप्सरा को अपने पास से जाने नहीं दिया। पीछे जब उन्हे अपने पतन का ध्यान आया, तो उन्होंने अप्सरा को शाप दिया कि तू पिचाशिनी हो जा। अप्सरा के अनुनय-विनय करने पर उन्होंने उसे पाप-मोचनी एकादशी का व्रत करके उक्त शाप से मुक्त होने की युक्ति बताई। इधर मुनि को जब अपने पुत्र के पतन की कथा मालूम हुई, तो उन्होंने मेधावी मुनि को बहुत धिक्कारा, किन्तु अन्त मे उसी पाप-मोचनी एकादशी के व्रत करने का विधान बतलाया।

चैत्र के शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम फलदा है। बाराह-पुराण मे इसके माहात्म्य की कथा इस प्रकार आई है कि नाग-लोक के राजा पुण्डरीक के दरबार मे ललित नामक गन्धर्व को गाते-गाते एक बार श्रृङ्गार रस मे ऐसी तल्लीनता आगई कि उसका स्वर ही बिगड़ गया। एक नाग ने जब यह बात राजा पुण्डरीक से कह दी, तो राजा ने उसे शाप दिया कि तू राक्षस हो जा। इस शाप से ललित चारो ओर राक्षस होकर फिरने लगा। अन्त मे वह घूमते-घामते विन्ध्याचल पर्वत पर पहुँचा। वहाँ ऋष्य-मूक ऋषि ने उसे शाप-मुक्त होने के लिए फलदा एकादशी का व्रत-विधान बतलाया। व्रत के प्रभाव से ललित पुनः अपने गन्धर्व-रूप को प्राप्त हुआ।

वैशाख कृष्ण पक्ष की एकादशी बरूथिनी कहलाती है। इस व्रत से भी अभिमत फल-प्राप्ति का माहात्म्य बतलाया गया है।

वैशाख शुक्ल पक्ष की एकादशी का नाम है मोहनी। इसके सम्बन्ध मे कूर्मपुराण मे एक कथा आई है, जिसमे बतलाया गया है कि सरस्वती नदी के किनारे भद्रावती नगरी में किसी समय द्युतिमान नामक राजकुमार बड़ा व्यभिचारी, जुवाड़ी और अत्याचारी था। उसकी बुराइयों को देखकर उसके पिता ने उसे घर से निकाल दिया और वह वन मे रहने लगा। वहाँ भी वह पशु-वध और चोरी से गुजर करने लगा। पूर्वजन्म के किसी पुण्य से वह शाण्डिल्य मुनि के आश्रम में जा पहुँचा। उन महामुनि के स्पर्शमात्र से उसका पाप जाता रहा और ऋषि ने उसे मोहनी एकादशी का व्रत करने का आदेश दिया। तदनुसार व्रत रखकर राजकुमार पापमुक्त होकर अपने पिता के पास जा पहुँचा।

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की एकादशी को अपरा कहते हैं। इस व्रत के प्रभाव से ब्रह्म-हत्या जैसे भीषण पाप से भी मुक्ति मिलती है।
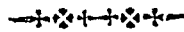
श्रीसत्यनारायण की कथा

श्रीसत्यनारायण की कथा में नीचे लिखी सामग्री आवश्यक होती है---भगवान् का मण्डप बनाने के लिये केले के वृक्ष या पत्तो के खंभ, आम के पत्तो के बंदनवार, पंच-पल्लव, सुवर्ण-मूर्ति (भगवान् की प्रतिमा---खासकर शालिग्राम-शिला) कलश, यज्ञा-पवीत, पंचरत्न (मोती, मूँगा, सोना, चाँदी, ताँबा) वस्त्र (गृहो की स्थापना के लिये लाल कपड़ा, खारुआँ या भगवान् के आसन के लिये श्वेत वस्त्र), चावल, चंदन, केशर, अबीर, गुलाल, धूप, पुष्प, तुलसी-दल, नारियल, सुपारी, अनेक प्रकार के फल, माला पञ्चामृत (दूध, दही, घी, शहद और शक्कर) पुण्याह-वाचन, कलश, भगवदर्थ पीठम् (पीढ़ा), दक्षिणा के लिये द्रव्य, नैवेद्य, प्रसाद के लिये पँजीरी, अठवाई, केला या ऋतु के जो फल मिल सकें ॥

श्रीसत्यदेव के पूजन का व्रत करनेवाला जिस दिन कथा सुनना चाहे, उस दिन सवेरे स्नान करके श्रीसूर्य भगवान् को हाथ जोड़े और लाल रंगवाले स्वर्ण के रथ में बैठे हुए लोक को प्रकाश देनेवाले श्रीसूर्य भगवान् के अंतर्यामी श्रीकृष्ण भगवान् को जान-कर उनको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करे और चंदन, चावल, धूप, दीपादि से सूर्यदेव की पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे---"हे सब गृहो के स्वामी, तेज के अधिष्ठाता, महान् तेजवान ! राजाओ के निमित्त,

चड़ों के निमित्त, इन्द्र की इन्द्रियों के निमित्त और संपूर्ण ग्रहोंको शान्ति के निमित्त मै श्रीसत्यदेव का पूजन किया चाहता हूँ, अतः मैं आपके द्वारा सबको पत्र-पुष्प जो कुछ है, श्रद्धापूर्वक अर्पण करता हूँ, स्वीकार कीजिये।

पुनः चंद्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु आदि सब ग्रहों का अन्तर्यामी श्री सत्यदेव को जानकर उन सबको एक-एक करके नमस्कार करे। तदनंतर सर्व भूतों के स्वामी, काल के भी महाकाल, सदैव कल्याणकारी शिवजी की आत्मा मे विष्णु भगवान् को स्थित जानकर नमस्कार और प्रार्थना करे कि श्रीदेवी, लीलादेवी और भूदेवी आप की पत्नी है, दिन-रात दोनों पसवाड़े है, नक्षत्र तुम्हारे स्वरूप हैं, अश्विनो कुमार तुम्हारे तेज करके प्रकाशित है, सो हे विष्णुदेव! कृपा करके मुझको वैकुण्ठ-लोक का वास दो, मुझे दुःखो से मुक्त करो। हे लक्ष्मी के अन्तर्यामी श्री सत्यनारायण! मै आप को नमस्कार करता हूँ।

सवेरे इस प्रकार व्रत का संकल्प करके व्रत करनेवाला पुरुष सारे दिन निराहार रहकर विष्णु भगवान् का ध्यान या गुणगान करता रहे। सायंकाल को पूजन का विधान करे। वस्तुतः संक्रांति, पूर्णमासी, अमावस्या या एकादशी मे से किसी दिन सत्यदेव का पूजन अति उत्तम माना गया है। वैसे जिस दिन का संकल्प किया हो, उसी दिन कर सकता है। दिन भर व्रत करने के बाद व्रत करने वाला सायंकाल के समय स्नान करके पूजन के स्थान

मे आकर और आसन पर बैठकर आचमन करे तथा पवित्रो धारण करे। तब श्रीगणेशजी के अन्र्यामी श्रोमन्ननारायण, गौरी के अन्तर्यामी श्रीहर, वरुण के अन्तर्यामी श्रोविष्णु आदि देवताओ की प्रतिष्ठा और आह्वान करके संकल्प करे—"आज इस गात्र और इस नाम वाला मै (जो नाम हो) सब पापो के नाश के लिये, जो आपत्तियो की शांति के लिये और सब मनोर्थ-सिद्धि के लिये सब सामग्री उपस्थित है, इससे आप का पूजन करता हूँ।" पुनः गौरी, गणेश, वरुण देवता आदि पाँचों लोकपालो और नवग्रह आदि का षोडशोपचार-पूजन करके प्रार्थना करे—"मै श्री सत्यदेव का पूजन और कथा श्रवण करता हूँ, सो आप सिद्धि प्रदान करे।" तदनंतर अर्घपाद्य, आचमन, स्नान, चदन, चावल, धूप, दोप, नैवेद्य, आचमनोय, जल, सुगंधि, ताम्बूल, फल, दक्षिणा आदि युक्त विधिवत् मत्रो सहित पूजन के पूर्व पुष्प हाथ मे लेकर श्रीसत्य-नारायण का ध्यान करे। इस प्रकार सत्यदेव का पूजन करके हाथो मे पुष्प लेकर प्रार्थना करे। प्रार्थना करके श्रीसत्यदेव पर पुष्प छोड़े। फिर ध्यानपूर्वक कथा श्रवण करे।

कथा

नैमिषारण्य मे एक समय सौनकादि ऋषियो ने श्रीसूतजी पौराणिक से पूछा—"किस व्रत या तप के प्रभाव से मनुष्य मनो-वांछित फल पा सकता है? सो कथा कृपा करके विधिवत् वर्णन कीजिये।" श्रीसूतजी बोले कि एक बार इसो प्रकार नारदजी के

प्रश्न करने पर श्रीविष्णु भगवान् ने उनको जो व्रत बतलाया था, उसी को मैं तुम से कहता हूँ, सावधान होकर सुनो :—

एक समय नारदजी सम्पूर्ण लोकों में घूमते-फिरते मर्त्य-लोक में पधारे। वहाँ अपने कर्मों से अति दुःखी, अनेक योनियों के जन्म-मरण से पीड़ित लोगों को देखकर नारदजी को बड़ी दया आई। उन्होंने अपने मन में विचार किया कि ऐसा कौन-सा उपाय है, जिसके द्वारा इन दुःखी जीवों का दुःख नाश हो। नारदजी स्वयं कुछ भी निश्चित न कर सके, तब वह वैकुण्ठ-लोक को गये। वहाँ सब में व्यापक शुक्लवर्ण, चतुर्भुज, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला को धारण किये हुए, सब के स्वामी श्रीमन्नारायण को नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगे।

नारद जी बोले—"हे प्रभो! वाणी और मन से न जानने योग्य, अनन्त शक्ति-धारी श्रीहरि! आप को नमस्कार है। आप का आदि, मध्य और अन्त नहीं है। माया-गुण आप में नहीं है। आप सब गुणों के आत्मा है, आदि कारण है, और भक्तो की पीड़ा के नाश करने वाले हैं।" नारदजी की स्तुति से प्रसन्न होकर षड्गुण ऐश्वर्य-वान् भगवान् बोले—"हे नारदजी! आप के मन में क्या है ? सो कहिये!" भगवान् से पूछे जाने पर नारदजी बोले—"मनुष्य लोक में सब जीव नाना प्रकार के दुःख पारहे है, नाना योनियों में उत्पन्न होते है और अपने ही पाप-कर्मों से दुःखी होरहे है। सो हे नाथ! कोई ऐसा लघु उपाय बतलाइये, जिससे उनका दुःख दूर हो सके।" तब श्रीमन्नाराराण बोले—"हे पुत्र! तुमने लोको के

अनुग्रह की इच्छा से मुझसे जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर मैं तुम को देता हूँ, सो सावधान होकर सुनो। महा पुण्यदाता एक व्रत है, जो मनुष्य-लोक से क्या स्वर्ग में भी दुर्लभ है। परन्तु तुम्हारे स्नेह के कारण मैं उसे तुमसे कहता हूँ। सत्यनारायण के व्रत को विधान-पूर्वक जो मनुष्य करेगा, सो सम्पूर्ण दुःखों से छुटकारा पाकर अत्यन्त सुखी हो अन्त समय में मोक्ष को प्राप्त होगा।" विष्णु भगवान् के ऐसे वचन सुनकर नारदजी बोले—"सत्य-नारायण के व्रत की जो आपने इतनी महिमा बखान की है, उसका क्या फल है? क्या विधान है? और कब किसने यह व्रत किया है? यह सब विस्तार-पूर्वक कहिये। कृपा करके यह भी बताइये कि यह व्रत कब किया जाता है?"

तब श्री भगवान् बोले—"सत्यनारायण का व्रत दुःख और शोक का नाश करने वाला है, धन-धान्य को बढ़ाने वाला है, सौभाग्यदाता है, संतानदाता है और सब जगह विजय कराने वाला है। जिस किसी दिन चाहे, इस व्रत को किया जा सकता है। व्रत करनेवाला मनुष्य सायकाल के समय श्रद्धा और भक्ति-पूर्वक सत्यनारायण का पूजन करे। सपरिवार धर्म म तत्पर रहे। सवा सेर या सवा मन का सुन्दर प्रसाद बनावे। केला के फल, घी, दूध, गेहूँ का आटा, जौ-गेहूँ का आटा न मिले, तो धान का आटा लेकर शक्कर अथवा गुड़ उसमें मिलावे। सवा मन, सवा पांच सेर अथवा सवा सेर की पंजीरी बनाकर प्रसाद सब श्रोताओं को बाँटे। सब हित-व्यवहारी भाई-बन्धुओ को बुलाकर कथा सुने। ब्राह्मणो को

दक्षिणा देवे। भाई-बन्धुओं-सहित ब्राह्मणों को भोजन कराये, तब व्रतवाला आप प्रसाद पावे, नृत्य करे गीत गावे और सत्यदेव का स्मरण करता हुआ विश्राम करे। इस प्रकार जो मनुष्य व्रत करेगा, उसकी सब इच्छाएँ पूरी होंगी। इस लघु उपाय से संसारी मनुष्य सरलता से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ पा सकेंगे। यह प्रथम अध्याय का वर्णन है।

सूतजी बोले—हे शौनकादि ऋषीश्वरो! अब हम यह वृत्तान्त वर्णन करते हैं कि सर्वप्रथम किसने इस व्रत को किया और फिर किस तरह लोक में इस का आदर और प्रचार हुआ—

किसी समय काशीपुरी मे शतानन्द नामक एक अति दरिद्र ब्राह्मण रहता था। वह भूख-प्यास से व्याकुल हो पृथ्वीतल पर भीख माँगता फिरता था। एक दिन श्रीविष्णु देवता ने वृद्ध ब्राह्मण के रूप मे प्रकट होकर शतानन्द से पूछा—"हे ब्राह्मण तुम क्यों इस दशा मे इधर-उधर फिरा करते हो?" तब वह बोला—"मैं अति दरिद्र हूँ; अन्न-वस्त्र से दुःखी हूँ। यदि आप कोई ऐसा उपाय बतलायें जिससे मेरा यह दुःख दूर हो सके तो बड़ी कृपा होगी।" यह सुनकर वृद्ध-वेश-धारी श्रीविष्णु भगवान् बोले—"सत्यनारायण जो विष्णु भगवान् है, उनका व्रत करने से मनुष्य सब प्रकार के सांसारिक कष्टों से छुटकारा पा सकता है। व्रत का सविस्तर विधान बतलाकर भगवान् अन्तर्द्धान हो गये।

शतानन्द अपने मन में सत्यनारायण का व्रत करना निश्चय करके घर गया। इसी चिंता मे उसे सारी रात्रि नींद न आई।

सवेरा होते ही वह सत्यनारायण के व्रत का अनुष्ठान करके भिक्षा के लिये गया, तो उस दिन उसे बहुत धन-धान्य भिक्षा मे मिला। संध्या को घर पहुँचकर उसने विधि-पूर्वक सत्यदेव का पूजना किया। सत्यनारायण की कृपा से वह थोड़े ही दिनों में सब प्रकार से सम्पन्न और ऐश्वर्य्यवान् होगया। वह जब तक जीवित रहा, प्रतिमास सत्यदेव का पूजन-व्रत करता रहा। अन्त में वह विष्णुलोक को गया। जो मनुष्य श्रद्धा-पूर्वक श्रीसत्यनारायण का व्रत करेंगे, वे शतानन्द ब्राह्मण की तरह दरिद्रता के दुःख से छुटकारा पाकर अन्त मे मोक्ष-लाभ करेंगे।

तब ऋषिलोग बोले—"शतानन्द के बाद फिर किसने यह व्रत किया ? और कैसे इसका लोक मे प्रचार हुआ ? सो भी कृपा करके कहिये।" सूतजी बोले—शतानन्द वैभववान् होकर एक समय बन्धु-बान्धव समेत कथा सुन रहा था। उसी समय एक लकड़हारा भूखा-प्यासा वहाँ जा पहुँचा। वह द्वार पर लकड़ियों का बोझ रखकर भीतर गया और उसने पूछा—"हे प्रियवर! यह क्या हो रहा है? इससे क्या फल मिलता है?" तब ब्राह्मण बोला—"भाई! यह सत्यनारायण का व्रत मनोवांछित फल का देने वाला है। मै पहले बहुत दरिद्र था। इसी व्रत के करने से मुझे यह सब ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है।" यह सुनकर लकड़ी बेचनेवाला बहुत प्रसन्न हुआ। वह प्रसाद पाकर और जल पीकर चला गया।

श्रीसत्यदेव का मन में स्मरण करता हुआ वह लकड़ी बेचने बाजार में गया, तो उस दिन उसे लकड़ियों का दुगना मूल्य मिला। उसने उन्हीं पैसों से केले दूध, दही, घी, शक्कर आदि पूजन की सामग्री मोल ली और घर चला गया। घर मे उसने अपने भाई-बन्धु और पास-पड़ोस के लोगों को एकत्रित करके विधि-पूर्वक सत्यनारायण का पूजन किया और श्रीसत्यदेव की कृपा से बड़ा धनवान् और ऐश्वर्यवान् हो गया। उसने यावज्जीवन इस लोक मे सब तरह के सुख पाये और मरने पर सत्यलोक में वास पाया। यह वृत्तान्त दूसरे अध्याय का है।

सूतजी बोले—"सत्यदेव के व्रत के सम्बन्ध में मै एक कथा और भी कहता हूँ, सो सुनो। प्राचीन समय में उल्कामुख नाम का एक राजा था। वह बड़ा ही सत्यवादी और जितेन्द्रिय था। प्रतिदिन देव-दर्शन करने जाता और ब्राह्मणों को मुँह-माँगी भिक्षा देकर संतुष्ट करता था। उस राजा की रानी बड़ी सुन्दरी, सुशीला और पति की तरह धर्मनिष्ठा थी। एक समय राजा रानी-समेत भद्रशीला नदी के किनारे श्रीसत्यनारायण की कथा सुन रहा था। उसी समय एक बनिया वहाँ पहुँचा। बनिये की नौका मे असंख्य रत्न और अनेक प्रकार के मूल्यवान पदार्थ भरे थे। नदी के किनारे नाव लगाकर वह पूजा की जगह पर गया। वहाँ का चमत्कार देखकर उसने राजा से पूछा—"हे राजन्! आप यह बड़ी भक्ति और श्रद्धा से क्या कर रहे है? कृपा करके मुझे भी बताइये। इसके जानने की मेरी बड़ी अभिलाषा है।" राजा ने

उत्तर दिया—"हे महाजन्! हम अतुल तेजवान् विष्णु भगवान् का पूजन कर रहे हैं। यह व्रत मनुष्य को मनोवांछित फल देने वाला है।" राजा की ऐसी वाणी सुनकर वनिये ने पूछा—"आप कृपा करके इसकी विधि सविस्तर बतलाइये, तो मैं भी व्रत करूँगा, क्योंकि मेरे कोई सन्तान नहीं है।" राजा ने उसे विधि बतला दी।

वनिये ने घर जाकर अपनी स्त्री से उक्त व्रत का सारा हाल कहा और यह भी संकल्प किया कि जब मेरे सन्तान होगी, तब मैं यह व्रत करूँगा। उसकी स्त्री का नाम लीलावती था। वह कुछ दिनों बाद गर्भवती हुई। दस महीने पूरे होने पर एक कन्या पैदा हुई। वह कन्या चन्द्रमा की कलाओं की भाँति दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। इस कारण उसका नाम कलावती रक्खा गया। एक दिन लीलावती ने पति से कहा—"पहले जिस व्रत का संकल्प किया था, वह अब तक आपने नहीं किया, इसका क्या कारण है?" तब वनिया बोला—"कन्या के विवाह के समय व्रत करूँगा।" यह कहकर वनिया अपने काम-धन्धे मे लग गया और कन्या दिन-प्रतिदिन बड़ी होने लगी। कन्या को वयःप्राप्त देखकर बनिये ने उत्तम वरकी खोज मे जहाँ-तहाँ दूत भेजे। उसके दूतो ने कंचनपुर नामक नगर मे एक वनिये का अति सुन्दर सुशील और गुणवान बालक देखा। उसी के साथ सगाई पक्की करदी। फिर विधिपूर्वक बड़े उत्सव के साथ विवाह भी हो गया; परन्तु फिर भी वनिये ने संकल्प किये हुए सत्यदेव के व्रत को नहीं किया, जिससे सत्यदेव उस पर अप्रसन्न हो गये।

कुछ दिनों बाद बनिया व्यापार के लिये बाहर चला गया। ससुर-दामाद दोनों समुद्र के किनारे रत्नसारपुर में व्यापार करने लगे। इसी बीच में सत्यदेव ने कोप करके उनको शाप दिया।

रत्नसारपुर के राजा का नाम चन्द्रकेतु था। दैवात् उसके खज़ाने में चोर घुसे और बहुत-सा धन-रत्न चुरा ले गये। राज के सिपाहियों ने चोरों का पीछा किया। चोरों ने जब देखा कि अब सिपाहियों से बचना कठिन है, तब उन्होंने राजकोष का सब धन उस जगह डाल दिया, जहाँ उपरोक्त बनियों का डेरा था और आप भाग गये। राजदूत चोरों को खोजते हुए उसी जगह जा पहुँचे और बनियों को चोर समझकर उन्होंने पकड़ लिया। जब राजा के पास खबर पहुँची कि दो चोर पकड़े गये हैं, तब उसने हुक्म दिया कि दोनों चोर कारागार में डाल दिये जायें। बनियों ने अपनी सफाई पेश करने के लिये बहुत कुछ कहा, पर सत्यदेव के कोप के कारण किसी ने कुछ नहीं सुना। राजा ने उनका सब धन अपने खज़ाने में रखवा लिया।

इधर लीलावती और कलावती माँ-बेटी दोनों पर भी बड़ी विपत्ति पड़ी। चोरों ने उनका सब धन-धान्य चुरा लिया और वे दोनों भूखी-प्यासी मारी-मारी द्वार-द्वार भिखारिणी-सी फिरने लगीं। एक दिन कलावती अत्यंत भूख-प्यास से व्याकुल एक देव-मंदिर में चली गई, जहाँ सत्यनारायण की कथा हो रही थी। वहाँ बैठकर वह कथा सुनने लगा। प्रसाद लेकर जब वह घर आई तब कुछ रात्रि हो गई थी। इस पर माता ने अति दुखी होकर

कन्या से पूछा—"तू इतनी रात्रि तक कहाँ रही ? तेरे मन में क्या है ? सो तो बता !" तब कलावती बोली—"मैं एक ब्राह्मण के घर मनोवांछित फल देनेवाले व्रत की कथा सुनती रही हूँ ।" उसकी बात सुनकर लीलावती स्वयं व्रत करने के लिये तैयार हुई । उसने बन्धु-बान्धव समेत श्रद्धापूर्वक कथा सुनी और विनीत-भाव से प्रार्थना की—"हे सत्यदेव ! मेरे पति ने सङ्कल्प करके जो व्रत नहीं किया, उसी से आप अप्रसन्न हुए थे । अब कृपा करके उनका अपराध क्षमा कीजिए ।" लीलावती की इस विनम्र प्रार्थना पर सत्यनारायण प्रसन्न हो गये ।

सत्यदेव ने स्वप्न मे राजा चन्द्रकेतु को दर्शन देकर कहा—"हे राजन् ! सवेरा होते ही दोनों बनियों को कारागार से छोड़ दो और उनका सब धन देदो, नही तो पुत्र-पौत्र-समेत तुम्हारा सारा राज नष्ट करदूँगा ।" इतना कहकर सत्यदेव अंतर्द्धान हो गये । सवेरे राजा ने राजसभा मे बैठकर सब से स्वप्न का हाल कहा और आज्ञा दी कि दोनो बनिये अभी छोड़ दिये जायँ । राजा की आज्ञा पाकर दूत दौड़े गये और तुरन्त ही बनियों को कारागार से छुड़ाकर राजा के सामने ले आये । भय से काँपते हुए दोनों बनियों ने राजा को प्रणाम किया । तब राजा ने उनको आश्वासन देते हुए कहा—"तुमको तो दैवयोग से यह दण्ड मिला है । अब कोई डर की बात नहीं है ।" राजा की आज्ञा से उसी क्षण उनकी बेड़ियाँ काट दी गईं, क्षौर कराकर स्नान कराया गया और फिर उत्तम वस्त्र और अलङ्कार पहिनाकर

सभा में लाये गये। उनका जो धन-रत्न राजा ने ले लिया था, वह दूना करके उनको दिया और सादर विदा किया। दोनों बनिये राजा को जय बोलते हुए अपने घर को चले। यह तीसरे अध्याय की कथा है।

सूतजी बोले कि राजा से विदा होकर दोना बनिये ब्राह्मणों को धन बाँटते हुए आनन्द-पूर्वक घर की तरफ चले। वे लोग थोड़ी ही दूर गये होंगे कि सत्यनारायण संन्यासी के रूप में उनके पास आकर बोले—"हे बनिये! तुम्हारी नौकाओं में क्या है?" इसके उत्तर मे बनिये ने हँसते हुए कहा—"हे दण्डी! ऐसा क्यों पूछते हो? क्या तुम हमारा माल चुराना चाहते हो? इन नौकाओं मे तो लता-पत्रों के सिवाय और कुछ भी नहीं है।" यह सुनकर संन्यासी ने कहा—"तुम्हारा वचन सत्य हो।" इतना कहकर संन्यासी वहाँ से चला गया और थोड़ी दूर पर जाकर ठहर गया। दंडी के चले जाने पर बनिये शौचादि क्रिया के लिये नावों पर से उतरे। तब उन्होंने देखा कि दोनों नौकाएँ हलकी होकर ऊपर को उठ रही हैं। यह देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने नौकाओं में जाकर जो देखा, तो वहाँ लता-पत्र भरे हुए थे। यह देखकर बनिया तो बेहोश होकर गिर पड़ा; परन्तु उसके दामाद ने दृढ़ता-पूर्वक कहा—"इस प्रकार घबड़ाने की कोई बात नही है। यह सब दण्डी स्वामी की करामात है। चलकर उनसे प्रार्थना कीजिये तो उनकी कृपा से फिर सब जैसे का तैसा हो जायगा।" दामाद की बात मानकर बनिया दण्डी स्वामी के पास दौड़ा गया और उनके चरणों मे गिरकर भक्ति-

पूर्वक बोला—"हे स्वामी! मेरा अपराध क्षमा किया जाय।" तब दण्डी स्वामी बोले—"अरे मूर्ख! रोता क्यों है? मेरी बात सुन। तूने संकल्प करके भी मेरा पूजन नहीं किया। इसी कारण मेरी इच्छा से तूने महान दुख पाया है।"

भगवान् के ऐसे वचन सुनकर बनिया स्तुति करने लगा। वह बोला—"प्रभु! ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त सब जीव आप की माया मे मोहित है। कोई आपके स्वरूप और गुणों को नहीं जान सकता, यही आश्चर्य है। मै भी एक मूढ़ जीव हूँ। मै अपार माया को क्या जानूँ। मोह-वश मुझसे जो अपराध बन बड़ा, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। मै अब अवश्य आपका व्रत करूँगा। कृपा करके मेरा रत्न-धन पहले ही की तरह कर दीजिये।"

उसकी विनीत और भक्ति-मय स्तुति सुनकर भगवान् प्रसन्न हो गये और इच्छित वरदान देकर वे उसी जगह अंतर्द्धान हो गये। बनियें ने नावों के पास आकर देखा, तो वे धन-रत्नों से परिपूर्ण थी। तब उसने कहा कि भगवान् सत्यदेव ने कृपा करके मुझे मनोवांछित वरदान दिया है। अब मैं अवश्य भगवान् का पूजन करूँगा। तदनन्तर उसने उसी जगह पूजन किया और कथा सुनी। तब वह घर की तरफ चला।

अपने शहर के पास पहुँचकर उसने दामाद से कहा—"यह देखो, मेरा ग्राम रत्नपुर दिखाई दे रहा है। अब घर मे खबर करने के लिये आदमी भेज दो।" बनिये के दूतों ने उ के घर जाकर सती लीलावती से कहा—"सेठजी परदेश से सकुशल

वापस आ गये हैं। साथ में दामादजी भी हैं। सभी प्रसन्न हैं और बहुत-सा धन-रत्न भी कमाकर लाये हैं।" यह सुनकर लीलावती को बड़ी प्रसन्नता हुई। उस समय वह श्रीसत्यनारायण की कथा सुन रही थी। उसने पुत्री कलावती से कहा—"तुम्हारे पिता आ गये। शीघ्र ही कथा पूरी करके उनके स्वागत के लिये चलो।" माता की ऐसी वाणी सुनकर कलावती तो इतनी प्रसन्न हुई कि वह कथा का प्रसाद लेना भी भूल गई और कथा पूरी होते ही पिता और पति के स्वागत के लिये दौड़ गई। परन्तु ज्यों ही नदी के किनारे पहुँची, त्यों ही बनिये के दामाद की नौका जल में डूब गई। यह देखते ही बनिया हाय-हाय करके छाती पीटने और रोने लगा। उसके सब साथी रोने और विलाप करने लगे। लीलावती भी दामाद के शोक में विलाप करने लगी। कलावती तो डूबे हुए पति के खड़ाऊँ लेकर सती होने को उद्यत हुई। उस समय बनिये ने सब लोगों से कहा—"इस घटना से कुछ दैवी कोप का सम्बन्ध मालूम पड़ता है। मुझे पूर्ण आशा है कि यदि सत्यदेव कृपा करेंगे, तो सब जैसे का तैसा हो जायगा। यदि सत्यदेव की कृपा से मेरा दामाद पूर्ववत जल के ऊपर आ जाय, तो मैं सत्यनारायण का व्रत करूँगा।"

उसी समय आकाशवाणी हुई—"हे वणिक! तेरी कन्या सत्यदेव के प्रसाद का अनादर करके पति से मिलने के लिये दौड़ी आई है। यदि यह घर जाकर प्रसाद ले और फिर आवे, तो संभव है कि उसका पति जी उठे।" यह सुनते ही कलावती घर को दौड़ी

गई और सत्यदेव का प्रसाद लेकर जब नदी के किनारे आई, तो देखती क्या है कि उसके पति की नौका नदी के जल पर तैर रही है।

तब बड़े समारोह और उत्सव के साथ बनिया बन्धु-बान्धव समेत अपने घर गया। जब तक बनिया जीवित रहा, प्रति पूर्णमासी, अमावस्या या संक्रान्ति को श्रीसत्यनारायण की कथा सुनता रहा। वह इस लोक मे आजन्म सुखी रहा। अन्त मे उसने सत्य-लोक का वास पाया। यह चौथे अध्याय की कथा है।

श्रीसूतजी बोले--एक दृष्टांत और भी कहते है, सो हे मुनीश्वरो! सुनिये। कोई एक तुङ्गध्वज नामक राजा था। वह प्रजा-पालन मे तत्पर एवं महान् प्रतिभाशाली था। उसने श्रीसत्य-नारायण के प्रसाद का अनादर करके बड़ा दुःख पाया। एक बार वह वन में शिकार खेलने गया हुआ था। बहुत से जङ्गली जान-वरो का मारकर वह महलों को जा रहा था। उसने देखा कि एक बरगद के पेड़ के नीचे बहुत से गोप-ग्वाल इकट्ठे होकर सत्यनारा-यण की कथा सुन रहे है। राजा ने न तो सत्यदेव को नमस्कार किया, न पूजन के पास गया। परन्तु गोपगण राजा को देखकर स्वयं प्रसाद लेकर दौड़े गये और राजा के सामने प्रसाद रख दिया। राजा प्रसाद की कुछ भी परवाह न करके महलों को चला गया। राजद्वार पर पहुँचते ही उसे मालूम हुआ कि उसके पुत्र-पौत्र, धन-धान्यादि सब नष्ट हो गये है। तब उसे ध्यान आया कि मैंने सत्यनारायण के प्रसाद का अनादर किया है,

उसी के कारण इस दुःख को प्राप्त हुआ हूँ। सम्भव है कि मैं उसी जगह जाकर सत्यदेव से क्षमा-प्रार्थना करूँ, तो मेरा दुःख दूर हो जाय। निदान राजा वहाँ दौड़ा गया, जहाँ गोपगण पूजन कर रहे थे। उसने उन सब के साथ मिलकर श्रद्धा और भक्ति के साथ सत्यदेव का पूजन कराकर प्रसाद पाया। फिर जो घर आया तो देखता क्या है कि उसको नष्ट हुई सम्पत्ति पुनः पूर्ववत् सम्पन्न है और मृत पुत्र-पौत्रादि भी जी उठे हैं। तब से वह राजा सदैव समय-समय पर श्रीसत्यनारायण का व्रत करता रहा। वह यावज्जीवन सुखी रहा और अन्त में सत्यधाम को गया।

जो कोई भी परम दुलभ सत्यनारायण के व्रत को करता है और श्रद्धा और भक्ति-पूर्वक कथा सुनता है, उसे अवश्य शुभ फल प्राप्त होता है। श्रीसत्यनारायण की कृपा से उसे धन-धान्यादि सम्पूर्ण पदार्थ प्राप्त होते हैं। दरिद्र धन पाता है, वन्दी का बन्धन छूटता है, भयभीत का भय दूर होता है, इसमें संदेह नहीं। वह इच्छानुसार फल पाकर अन्त मे सत्यलोक को जाता है, इस प्रकार जो सत्यनारायण का माहात्म्य वर्णन किया गया है, सो सत्य ही है। इस व्रत के करने से मनुष्य सब दुःखों से मुक्त हो जाता है। कलियुग मे सत्यदेव का व्रत विशेष फलदायक है। सत्य-नारायण को कोई काल कहता है, कोई सत्य कहता है तो कोई ईश कहता है। कोई सत्यदेव कहता है, कोई सत्यनारायण कहता है। यह सत्य भगवान् अनेक रूप और अनेक नामों से मनुष्यमात्र को

अनेक फल देनेवाले है। कलियुग मे श्रीविष्णु भगवान् सत्यनाम और सत्यरूप से इच्छानुसार फल देनेवाले हैं।

हे मुनिश्रेष्ठ ! जो इस कथा को नित्य पढ़ता है या सुनता है, सत्यदेव की कृपा से उसके सब पाप नष्ट होते है। जिन लोगों का वर्णन सत्यदेव के व्रत के सम्बन्ध मे पहले किया जा चुका है, अब हम उनके दूसरे जन्म का हाल कहते हैं—शतानन्द ब्राह्मण दूसरे जन्म मे सुदामा हुआ, जो श्रीकृष्णजी का बालसखा होकर अनन्य मुक्ति को प्राप्त हुआ। लकड़हारा भील-राजा गुह हुआ, जिसने श्रीरामचन्द्रजी की सेवा की और अन्त मे मुनि-दुर्लभ गति पाई। राजा उल्कामुख दूसरे जन्म मे दशरथ नाम से प्रसिद्ध हुए, जो श्रीभगवान् रामचन्द्र के पिता थे। धार्मिक सत्यसंध बनिया राजा मोरध्वज हुआ, जिसने अपना आधा शरीर दान किया। राजा तुङ्गध्वज स्वयम्भू मनु का अवतार हुआ, जो आजन्म महत् कार्य करता हुआ अन्त मे सदेह वैकुण्ठ को गया। यह पाँचवे अध्याय की कथा है।
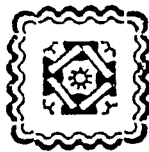
दशारानी का व्रत

हमारे महर्षियों ने अपने अनुभव से यह सिद्ध किया है कि मनुष्य अथवा किसी भी वस्तु की स्थिति का सहसा परिवर्तन किसी अलौकिक शक्ति के द्वारा होता है। उसी शक्ति का नाम दशा है। जब मनुष्य की दशा अनुकूल होती है, तब उसका कल्याण होता है; जब प्रतिकूल दशा होती है, अच्छा काम करने से भी बुरा प्रभाव पैदा होता है।

इसी दशा को दशा भगवती या दशारानी के नाम से संबोधन करके हमारे देश की स्त्रियाँ इसकी अनुकूलता के लिये इसका व्रत और पूजन करती हैं तथा इसके प्रति श्रद्धा बढ़ाने के लिये कथा भी कहती हैं।

जब तुलसी के ऐसे वृक्षो मे, जो एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाया हुआ न हो, वरन् जहाँ उगे वहीं हो, बाल निकले; कलोरि गाय बछड़ा जने; पहलौठी घोड़ी के बछेड़ा हो; स्त्री के प्रथम गर्भ से बालक जन्मे; तो इन बातों का समाचार पाकर दशारानी के व्रत का संकल्प किया जाता है। किन्तु यह शर्त आवश्यक है कि बच्चे जो पैदा हुए हों, अच्छी घड़ी मे हुए हों। ऐसी स्थिति मे दशा रानी का गंडा लिया जाता है।

नौ सूत कच्चे धागे के और एक सूत व्रत रहने वाली के अंचल के, इस प्रकार दस सूत का एक गंडा बनाकर उसमें गाँठ लगाई

जाती है। दिन भर व्रत रहने के बाद शाम को गंडे की पूजा होती है। नौ व्रत तक तो शाम को पूजा होती है, परन्तु दसवें व्रत मे जब पूजा होती है, तो मध्याह्न के पूर्व ही होती है। जिस दिन दशा रानी का व्रत हो, उस दिन जब तक पूजा न हो जाय, किसी को कोई वस्तु, यहाँ तक कि आग भी, नही दी जाती। पूजा के पहले उस दिन किसी का स्वागत भी नहीं किया जाता।

एक नोक वाले पान पर चन्दन से दशा रानी की प्रतिमा का आभास अङ्कित किया जाता है। ज़मीन मे चौक पूरकर उस पर पटा रखकर उस पर पान रक्खा जाता है। पान के ऊपर गंडे को दूध मे बोरकर रख दिया जाता है। उसी की हल्दी और अक्षत से पूजा होती है और घी, गुड़, बताशा आदि का भोग लगता है। हवन के अन्त मे कथा कही जाती है। कथा हो चुकने पर पूजा की सामग्री को गीली मिट्टी के पिंड में रखकर मौन होकर उसे व्रतवाली भेंटती है, फिर आप ही उसे कुवाँ या ताल आदि जलाशय मे सिराकर तब पारण करती है। पारण करते समय किसी से बोलना वर्जित है। जितना पारण सामने परोस ले, उसमे से कुछ छोड़ना भी नही चाहिये। थाली धोकर पी लेना चाहिये।

पहली कथा

एक घर में कोई सास-बहू थीं। सास का लड़का—बहू का पति विदेश गया हुआ था। एक दिन सास ने बहू से कहा—"जा गाँव

मे से आग ला और भोजन बनाकर तैयार करले।" वह गाँव में आग लेने गई, तो किसी ने उसको आग न दी, और कहा—"जब तक दशारानी की पूजा न हो जायगी, आग न मिलेगी।" बहू बेचारी खाली हाथ घर आई। सास ने पूछा—"क्यों? आग नहीं लाई?" तब बहू ने कण्डा उसके सामने पटक दिया और कहा—"गाँव भर मे पूजन-व्रत सब कुछ होता है; तुमको इसकी खबर भी नहीं होती। आज गाँव भर मे दशारानी की पूजा है, कोई आग-वाग तो दे क्यों, किसी ने यह भी नहीं पूछा कि कौन है? कहाँ से आई है?" सास बोली—"अच्छा, शाम को मैं देखूँगी, कैसी पूजा है, क्या बात है।"

शाम को सास आग लेने के लिये गाँव में गई, तब स्त्रियों ने उसे स्वागत-पूर्वक बिठाया और कहा—"सवेरे वह आई थी; परंतु हमारे यहाँ पूजा नही हुई थी, इसी कारण आग नही दे सकी, क्षमा करना। उसने आग के अतिरिक्त जिससे जो चीज़ चाही, सभी ने खुशी से दी।"

सास आग लेकर अपने घर के दरवाजे तक पहुँची थी कि एक व्यक्ति बछवा लिये आया और उसके पीछे ब्याई कलोरी गाय आती दिखाई दी। उस स्त्री ने उससे पूछा—"क्या यह गाय पहलौठी ब्याई है?" आदमी ने कहा—"हाँ।" उसने फिर पूछा—"बछवा है या बछिया?" उसने जवाब दिया—"बछवा है।" सास ने घर में जाकर बहू से कहा—"आओ हम-तुम भी दशा रानी के गंडे लेवें और व्रत रहे।" दोनों ने गंडे लिये। सवेरे से व्रत

आरम्भ किया। नौ व्रत पूरे हो चुकने के बाद दसवें दिन गंडे की पूजा होनी थी। सास-बहू दोनों ने मिलकर गोल-गोल बेले हुये, दस-दस अर्थात् कुल बीस फरे बनाये। इक्कीसवाँ एक बड़ा फरा गाय को दिया। पूजन करने के बाद सास-बहू दोनों पारण करने बैठीं।

उसी समय बुढ़िया का लड़का विदेश से आ गया। उसने दरवाज़े से आवाज़ लगाई। सुनकर माँ ने मन मे कहा—"क्या हरज है, उसे ज़रा देर बाहर ठहरने दो, मैं पारण कर चुकूँगी, तब किवाड़ खोल दूँगी। परन्तु बहू को रुकने का साहस नही हुआ। अपनी थाली का अन्न इधर-उधर करके झट से पानी पीकर उठ खड़ी हुई। उसने जाकर किवाड़ खोले। पति ने उससे पूछा—"माता कहाँ है?" स्त्री ने कहा—"वह तो अभी पारण कर रही हैं।" तब पति बोला—"मैं तेरे हाथ का जल अभी नही पिऊँगा, मै बारह बरस मे आया हूँ, इतने दिनों तक न जाने तू कैसी रही होगी। माता आयेगी, वह जल लायेगी, तब जल पिऊँगा।" यह सुनकर स्त्री चुपचाप बैठ रही।

माता पारण करने के बाद जब अपनी थाली धोकर पी चुकी, तब वह लड़के के पास गई। लड़के ने सादर पैर छुए। माता उसे आशीर्वाद देती हुई भीतर घर मे लिवा ले गई। माता ने थाली परोसकर रक्खी। बेटा भोजन करने बैठ गया। उसने हाथ में प्रथम ग्रास लिया और फरों के वे टुकड़े जो बहू ने अपनी थाली से फेंक दिये थे, आपसे आप उचककर उसके सामने आने लगे। उस ने माँ से पूछा—"यह सब क्या तमाशा है?" माँ बोली—"मैं

क्या जानूँ, बहू जाने।" यह सुनते ही लड़का आग-बबूला हो गया। वह बोला—"ऐसी बहू मेरे किस काम की, जिसके चरित्र को तू साक्षी नहीं है। इसको अभी निकाल बाहर करो। यदि यह घर मे रहेगी, तो मैं घरमें न रहूँगा।"

माता ने पुत्र को व्रत-पारण का सब हाल बतलाकर हर तरह से समझाया; परन्तु उसने एक बात न मानी। वह यही कहता रहा कि इसे निकाल बाहर करो, तभी मै घरमे रहूँगा। माँ ने सोचा, बहू को थोड़ी देर के लिये बाहर कर देती हूँ, इतने मे लड़के का गुस्सा शान्त पड़ जायगा। इसकी बात रह जायगी, तब फिर इसे घरमे डाल लूँगी। उसने बहू से कहा—"देहरी के बाहर जाकर उसारे के नीचे खड़ी होना।" जब बहू ओरी के नीचे खड़ी हुई, तो उसारा बोला—"मुझे इतना भार छानी-छप्पर का नहीं है, जितना तेरा है; दशारानी के विरोधी को मै छाया नही दे सकता।" तब वह वहाँ से चलकर घिरौची के पास गई। घिरौची बोली—"मुझसे हटकर खड़ी हो, मुझे इतना भार घड़ों का नहीं है, जितना तेरा है।" वह वहाँ से भी हटकर घूरे पर जाकर खड़ी हुई। तब घूरा बोला—"मुझे इतना भार सब कूड़े का नहीं है, जितना तेरा है; चल हटकर खड़ी हो।" इसी तरह वह जहाँ कहीं जाती, वही से हटाई जाती थी। इस कारण वह अपने जी में अत्यन्त दुखी होकर जङ्गल को भाग गई। जङ्गल मे भूखी-प्यासी फिरती-फिरती एक अन्धकूप मे गिर पड़ी। गिरी सही, पर उसे कुछ चोट न आई। वह नीचे जाकर बैठ गई।

उसी समय राजा नल उस जङ्गल मे शिकार खेलने गये थे। उनके साथ के सब लोग बिछुड़ गये थे। वह प्यास के मारे भटकते हुए उसी कुएँ पर आये, जिसमे उपरोक्त स्त्री गिरी हुई थी। राजा नल के भाई ने कुएँ में लोटा डाला, तो स्त्री ने उस लोटे को पकड़ लिया। तब भाई ने राजा से कहा—"इस कुएँ मे तो किसी ने लोटा पकड़ रक्खा है।" तब राजा ने कुएँ की जगत पर जाकर कहा—"भाई! पुरुष है तो मेरा धर्म का भाई है, और। यदि स्त्री है तो धर्म की बहन है। तुम जो कोई भी हो, बोलो। हम तुमको ऊपर निकाल लेंगे।" स्त्री ने आवाज दी। इसपर राजा ने उसे कुएँ से बाहर निकलवा लिया और वे उसे हाथी पर बिठाकर अपनी राजधानी मे ले आये।

महाराजा शिकार से लौटकर महलों को ओर आ रहे थे, तब तक धावनो ने महारानी के पास जाकर खबर दी कि महाराज आरहे हैं और एक रानी भी साथ ला रहे हैं। रानी अपने मनमे बड़ी दुखी हुई। वह सोच ही रही थी कि अब सौत से कैसे निभेगी। इसी सोच मे महाराज सामने आ पहुँचे। तब रानी ने हाथ जोड़कर विनय की—"महाराज! मुझसे ऐसी क्या बात न बन पड़ी, जो आप मेरे रहते दूसरा विवाह कर लाये हैं।" इसपर राजा ने हँसकर उत्तर दिया—"वह जो आई है, तुम्हारी सौत नहीं, ननद है; मेरी बहिन है। तुमको उसके साथ मेरी सगी बहिन-जैसो बर्ताव करना चाहिये।" यह सुनते ही रानी का मुँह प्रसन्नता से कमल की तरह खिल उठा। उसने स्वगत कहा—अब-

तक मै ननद का सुख न जानती थी, अच्छा हुआ जो भाग्य से ननद आगई। राजा ने उसका नाम मुँहबोली बहन रक्खा और उस के लिये एक अलग महल बनवा दिया। उसी मे वह आनन्द से रहने लगी। इसी प्रकार बहुत दिन बीत गये।

एक दिन राजा की एक घोड़ी ब्याई। तब राजमहल की स्त्रियाँ बधाई गाने लगीं। मुँहबोली बहन ने अपनी दासियों से कहा—"बाहर जाकर देखो तो सही, किस बात की बधाई बज रही है।" उन्होंने बाहर से आकर कहा—"महाराज की घोड़ी अच्छी घड़ी मे एक उत्तम बछेड़ा ब्याई है, उसी की बधाई गाई जारही है।" उसने पूछा—"पहलौठी ब्याई है या दूसरी-तीसरी बार?" उन्होंने जवाब दिया—"ब्याई तो पहले ही है।" तब उसने रानी के पास जाकर कहा—"आओ भावज! हम तुम दोनों दशारानी के गंडे लेवें।" रानी ने पूछा—"किसके गंडे और कैसे गंडे हैं, सो मुझे समझाओ।" तब वह बोली—"भाई की एक घोड़ी पहले-पहल बछेड़ा ब्याई है। दशारानी के व्रत का नियम भी यही है कि पहले-पहल जब गाय या घोड़ी या स्त्री का प्रसव सुने, तब गण्डा लेकर व्रत आरम्भ करे।।नौ व्रत करने के बाद दसवें दिन गण्डे का पूजन करके विसर्जन करे। इसी के साथ उसने पारण के पदार्थ और नियम बतलाये। तब रानी बोली—"ननद! तुम्हारा व्रत तुमको फले। मै पूड़ी और दूध की साढ़ी खानेवाली रानी-महारानी भला पनफरा, गोले की पपड़ी खाकर कैसे रह सकती हूँ? ऐसा खाना खाय मेरी बला।"

स्त्री बोली—"भाभी ! मुझे जो चाहो सो कह लो, परन्तु व्रत के सम्बन्ध मे कुछ भी मत कहो। मै इसी व्रत के कारण मारी-मारी फिरी और तुम्हारे देश मे आई हूँ।" तब रानी ने उदासीनता के साथ कहा—"मुझे क्या पड़ी है। तुमको रुचे सो करो। मै मना तो नही करती।" स्त्री ने श्रद्धा-पूर्वक गण्डा लिया। नौ दिन तक नौ व्रत किये, नौ कथाएँ कहीं। दसवें दिन विधिवत् पूजन किया, गोला-फरा बनाये और शाम को पारण करने बैठी। उसी समय उसके पति को कुछ अनायास प्रेरणा-सी हुई। वह अपनी माता से बोला—"माँ ! आज तो मै तुम्हारी बहू को खोजने जाता हूँ।" तब माता ने पूछा—"उस दिन क्या समझकर निकाल दिया था और आज क्या समझकर उसकी खोज मे जा रहे हो ? अब उस का पता कहाँ लगेगा ? न जाने किस जंगली जानवर ने उसे खा लिया होगा या किसी ने अकेली पाकर घर मे डाल लिया होगा।" इस पर लड़का बोला—"यह कुछ भी नही हुआ है। मेरा तो जी गवाही देता है कि वह कहीं न कहीं कुशल से है। मै जाता हूँ और उसे बहुत जल्द लिवाये लाता हूँ।" यह कहकर वह लड़का घर से चला गया।

वह घूमता-फिरता राजा नल की राजधानी में जा पहुँचा। वहाँ वह हाट-बाजार मे कुओं के पनघट पर घूमता हुआ अपनी स्त्री का पता लगाने लगा। एक कुएँ पर उसने औरतों को बाते करते सुना। एक बोली—"राजा हाल मे मुँहबोली बहन लाये हैं। बड़ी ही सुन्दर स्त्री है। आजकल उसी का किया हुआ सब कुछ

होता है।" दूसरी बोली—"वह जैसी सुन्दरी है, वैसी ही धर्मात्मा भी है। जब से आई है, तभी से उसने सदाव्रत खोल रक्खा है। जो उसके दरवाज़े पर जाता है, सादर इच्छा-भर भिक्षा पाता है।" तीसरी बोली—"वह जैसी धर्मात्मा है, वैसे ही सदाचारिणी भी है।" चौथी बोली—"वह जैसी सदाचारिणी है, वैसी ही सर्व-प्रिय भी है ; भीतर-बाहर के सभी लोग उससे खुश हैं।" पांचवीं बोली—"यह तो सब है, परन्तु अब तक यह पता न चला कि वह कौन है, और कहाँ की है ?"

स्त्रियों की बातें सुनकर वह साधु के वेश में राजा नल की मुँहबोली बहन के महलों के द्वार पर जा पहुँचा। वहाँ जो उसने आवाज़ लगाई, तो क्षेत्र के प्रबन्धकर्ता उसे भिक्षा देने लगे।। उसने भिक्षा लेने से इन्कार कर दिया और कहा—"जब क्षेत्र देनेवाली खुद आकर भिक्षा देगी, तो लूँगा; नहीं तो नहीं लूँगा।" तब लोगों ने उससे कहा—"इस समय वह दशारानी का व्रत करके पारण कर रही हैं। जब निश्चित हो जायँगी, तब तुमको भिक्षा देंगी। तब तक ठहरे रहो।" वह चुपचाप बैठा रहा। पारण कर लेने के बाद वह मुट्ठी में मोती भरकर आई, परन्तु सामने अपने पति को पल्ला फैलाये देखकर वह मुस्कराती हुई लौट गई। दोनों ने एक दूसरे को अच्छी तरह पहचान लिया।

रानी ने ननद को मुस्कराते देखकर पूछा—"जिस दिन से तुम आई हो, आज तक मैंने तुमको कभी हँसते नहीं देखा। आज इस विदेशी को देखकर हँसी हो। इसका क्या कारण है ?" उस

ने उत्तर दिया—"वह विदेशी तुम्हारे ही घर का तो है।" रानी ने पूछा—"तब वह ऐसे क्यों आये?" उसने कहा—"अभी तो वह मेरा पता लगाने चले आये हैं।" रानी ने राजा से कहा—"तुम्हारी मुँहबोली बहन के घर के लोग आये है।" राजा ने कहा—"उनसे कह दिया जाय कि अभी यहाँ से घर जाकर वहाँ से अपनी हैसियत से आयें, तब मैं बहन की विदाई करूँगा।"

तब वह घर को वापस चला गया। उसने माता से कहा—"तुम्हारी बहू राजा नल के यहाँ उसकी बहन होकर रहती है। नित्य सदाव्रत देती है और नियम-धर्म से दिन बिताती है।" तब माता ने आज्ञा दी कि तुम जाओ, उसे लिवा लाओ। वह डोली-पीनस, बाजे-कहार आदि यथोचित लवाज़मे के साथ फिर से राजा नल के नगर मे गया। राजा ने सम्बन्धी की हैसियत से उसका स्वागत किया और कुछ दिन उसे मेहमानी मे रखकर विधि-पूर्वक बहन की विदाई की। जब वह महल से बाहर निकलकर चलने लगी, तो महल भी उसके पीछे-पीछे चलने लगे। तब रानी बोली—"ननद-जी! तुम चलीं और मेरा महल भी ले चलीं। ज़रा लौटकर पीछे की ओर तो देखती जाओ।" ज्यों ही उसने लौटकर देखा, त्यों ही राजा का संपूर्ण राजसी वैभव सहसा लुप्त हो गया।

वह स्त्री तो अपने पति के साथ जाकर आनन्द से रहने लगी। यहाँ राजा नल का यह हाल हो गया कि वे राजा-रानी दोनो कमरी-कथरी ओढ़े फिरने लगे। उनके रूपकार पत्थर के हो गये और अटाले (भोजनालय) मे पत्ते खड़-खड़ाने लगे।

तब राजा नल बोले—"रानी! जहाँ राज किया, वहाँ इस दशा में नहीं रहा जाता। इसलिये यहाँ से भाग चलना उचित है।" रानी पतिव्रता स्त्री थी। उसने राजा की आज्ञा सिर पर रखकर उसकी विपत्ति में साथ देना सहर्ष स्वीकार किया। राजा-रानी दोनों महलों से निकलकर चल दिये। वे चलते-चलते एक गाँव के पास पहुँचे। वहाँ बेर के वृक्षों मे अच्छे-अच्छे बेर लगे हुए थे। राजा-रानी दोनों भूखे थे। इसलिये वे बेरों के नीचे जाकर बेर बीनने लगे कि आज इन्हीं को खाकर दिन काटेंगे, परन्तु वह बेर लोहे के होते जाते थे। राजा-रानी बेरों को उसी जगह फेंककर आगे बढ़े, तो किसान खेत काट रहे थे। राजा ने उन लोगों से कहा—"यदि आज्ञा दो, तो हम भी तुम्हारे साथ खेत काटें।" उन्होंने जवाब दिया—"तुम लोग क्या काटोगे; दो मुट्ठी बाले ले लो और भूनते-खाते अपने रास्ते चले जाओ।" राजा ने बालें ले लीं। उनको भूनकर तैयार किया तो उनमे से अन्न के दानों के बजाय कंकड़ झड़ने लगे। और आगे चले तो एक कहार तरबूज़ बेच रहा था। उसने एक तरबूज़ राजा को दिया। वह राजा के हाथ में जाते ही काठ का हो गया। और भी आगे चले तो एक जगह सुरा गाय राह चलते यात्रियों को इच्छानुसार दूध देती थी। राजा ने जाकर गाय से दूध मागा, तो गऊ ने चाँदी का पात्र भर दिया। परन्तु रानी के हाथ मे पात्र जाते ही वह काठ का हो गया और उसमे का दूध रक्त हो गया। राजा-रानी गऊ के पैर पड़कर आगे चले :

उधर से एक बनिया बनीजी करके चला आता था। उसने राजा नल को पहचान लिया। तब उसने राजा-रानी के भोजन-भर को सेर-भर आटा नज़र किया। वे लोग उस आटे को लेकर एक नदी के किनारे गये। वहाँ रानी भोजन बनाने लगी और राजा स्नान करने लगा। उसी नदी में मछुआरे मछलियाँ पकड़ते थे। उन लोगों ने राजा को चार मछलियाँ भेंट कीं। रानी ने रोटियाँ सेककर और मछलियाँ भूनकर रक्खीं, तब तक राजा आये। रानी ने परोसने को हाथ बढ़ाया तो देखती क्या है कि रोटियाँ ईंटें हो गईं और मछलियाँ उछलकर नदी में चली गईं।

राजा ने रानी को संकुचित देखकर और रोटियों की जगह ईंटें रक्खी देखकर पूछा—"क्या हुआ, कहती क्यों नहीं?" रानी बोली—"मैं अधिक भूखी थी, इस कारण मैंने जो भोजन बनाया था, वह मैंने ही खा लिया है; आप के लिये कुछ नहीं बचा।" राजा बोले—"यह तो संभव नहीं कि तुम मुझ से पहले भोजन करलो; किन्तु अब मैं यही बातें मान लेता हूँ, जो तुमने कही हैं।" वहाँ से चलकर वे अपनी मुँहबोली बहन के यहाँ गये। बहन ने सुना कि उसके भाई-भौजाई आये हैं। उसने पूछा—"कैसे आये?" औरतों ने कहा—"लटकें चीथड़ा, भूके कूकरा। ऐसे आये और कैसे आये?" यह सुनकर उसे बड़ी शर्म लगी। वह बोली—"होंगे कोई नाते-गोते के, उनका डेरा कुम्हार के यहाँ दे दो।" दिन-भर व्यतीत हो गया। शाम को थाल सजाकर बहन खुद भावज से मिलने कुम्हार के घर गई। उसने सामने थाल रक्खा तो

भावज ने कहा—"इस थाल में जो कुछ भी हो, कुम्हार के चक्के के नीचे रख दो और चली जाओ।" वह थाल का सामान चक्के के नीचे रखकर चली गई। थोड़ी देर मे राजा ने आकर रानी से पूछा—"कहो, बहन आई थी, कुछ लाई थी?" रानी ने कहा—"आई तो थी, पर जो कुछ वह लाई थी, मैंने इसी चक्के के नीचे रखवा दिया है।" राजा ने जो वहाँ देखा, तो कंकड़-पत्थरों के सिवा और कुछ भी नहीं था। राजा समझ गया कि यह सब कुदशा का कारण है। यह सम्भव नहीं कि जिस बहन को मैंने अन्धकूप में से निकाला; सब कुछ दिया, वह मेरे लिये कंकड़-पत्थर लाये।

तब वे लोग वहाँ से भी चलकर मित्र के घर गये। मित्र ने सुना कि मित्र आये हैं, तो उसने भी पूछा—"कैसे आये?" लोगों ने कहा—"कमरी ओढ़ें कथरी बिछावें, माँग-माँगकर खावें। ऐसे आये और कैसे आये!" मित्र ने ऊर्द्ध श्वास लेकर कहा—"कोई हानि नहीं। जैसे आये, वैसे अच्छे आये, आख़िर मित्र है। उनको महलों में लिवा लाओ।" राजा-रानी दोनों मित्र के महलों मे जाकर ठहर गये। मित्र ने बड़े आदर-भाव से उनका स्वागत किया, भोजन कराया और एक कमरे मे उनके सोने के लिये पलँग बिछवा दिये। उस कमरे मे खूँटी पर नौलखा हार टँगा हुआ था और पलँग की पाटी पर बिजुरिया खाँड़ा रक्खा था। आधी रात के समय राजा सो गये थे। रानी उनके पैर दबा रही थी। उसने देखा कि हारवाली खूँटी के पास दीवार मे एक मोर का चित्र बना है। वह हार को धीरे-धीरे निगल रहा है

और खाँड़ा पलँग की पाटी में समाता जाता है। रानी ने राजा को जगाकर दिखलाया। तब राजा ने कहा—"यहाँ से भी चुपचाप भाग चलना चाहिये, नहीं तो सवेरे चोरी का कलंक लगेगा। तब मित्र को क्या मुख दिखावेंगे?" निदान राजा-रानी दोनों रात ही को उठकर भाग चले।

राज-दम्पति चलते हुए एक अन्य राजा की राजधानी में पहुँचे। वहाँ अतिथि और भिक्षुकों को सदाव्रत दिया जाता था। राजा-रानी भी सदाव्रत लेने गये। उस समय सदाव्रत बन्द हो चुका था। वहाँ के अधिकारियों ने कहा—"यह लोग न जाने कहाँ के अभागे आये हैं कि इनकी बार को कुछ भी नहीं बचा है। खैर, फिर भी मुट्ठी-मुट्ठी चने दे दो।" इस प्रकार अनादर और कुवाच्य-सहित दान लेना अस्वीकार करते हुए राजा-रानी वहाँ के दानाध्यक्ष की निन्दा करते हुए बोले--ऐसा कंजूसपन है, तब सदाव्रत देने का नाम क्यों करते हैं?" इस पर दानाध्यक्ष ने कहा—"ये भिक्षुक बड़े घमण्डी मालूम होते हैं। भीख माँगते हैं और गालियाँ भी देते हैं। इनको हवालात में बन्द कर दो।" इस तरह राजा-रानी दोनों एक कोठरी में बन्द कर दिये गये। मुट्ठी-मुट्ठी चने दोनों को खाने को लिये मिलने लगे।

जिस कोठरी में राजा-रानी कैद थे, उसी के सामने से आम रास्ता था। एक मेहतरानी राजा की घुड़सार को पारकर उसी रास्ते से निकला करती थी। एक दिन वह बहुत देर से निकली। तब रानी ने उससे पूछा—"आज तुमने इतनी देर कहाँ लगाई?" वह

बोली—"आज राजा की घोड़ी ब्याई थी। उसी की टहल में ज़्यादा देर होगई।" रानी ने पूछा—"घोड़ी पहली बार ब्याई है या दूसरी बार?" मेहतरानी ने कहा—"पहली बार।" फिर रानी ने पूछा—"बछेड़ा हुआ या बछेड़ी?" उसने जवाब दिया—"बछेड़ा हुआ है और अच्छी साइत में हुआ है।" तब रानी ने राजा से कहा—"एक बार मैंने तुम्हारी मुँहबोली बहन के गण्डे का अनादर किया था। उसी दिन से अपनी दशा बदल गई है, इसलिये आज मैं दशारानी का गंडा लेती हूँ।" राजा ने कहा—"सो तो ठीक है; परन्तु यहाँ पूजा की सामग्री कहाँ से आयेगी? कैसे नियम-धर्म निबहेगा?" रानी ने कहा—"वही दशारानी सब कुछ करेंगी। मैं तो उन्हीं का नाम लेकर गण्डा लेती हूँ। फिर जो होगा, देखा जायगा।"

तब नौ तार राजा की पाग के और एक तार अपने अञ्चल का लेकर रानी ने गण्डा बनाया और उसी समय से व्रत ठान लिया। थोड़ी देर में राजा खुद घोड़ी का बछेड़ा देखने के लिये उसी रास्ते से निकला। राजा ने नल-दमयन्ती को कोठरी में बंद देखकर पूछा—"ये लोग कौन हैं? और किस अपराध के कारण यहाँ बन्द हैं?" पहरेदारों ने कहा—"ये लोग भिक्षा लेने आये थे। आप को आशीर्वाद के बदले गालियाँ देते थे। इसी कारण दानाध्यक्ष ने इन लोगों को क़ैद करा दिया था।" राजा ने कहा—"यह तो इनका कोई अपराध नहीं है। इनको मनोनीत भिक्षा न मिली होगी, इसी से गालियाँ देते होंगे। इनको सन्तुष्ट करना चाहिये या क़ैद कर देना चाहिये। इनको अभी कोठरी से निकाल बाहर करो।" राजा

की आज्ञानुसार उसी समय नल-दमयन्ती दानों कोठरी से बाहर निकाले गये। राजा उनके पाँव मे पद्म और माथे मे चन्द्रमा का चिन्ह देखकर पहचान गया कि यह तो राजा नल और रानी दमयन्ती हैं। तब उसने विनीत भाव से क्षमा-प्रार्थना की और उनको हाथी पर बिठाकर वह महलों को लिवा ले गया।

कुछ दिनों तक उस राजा का आतिथ्य-सत्कार स्वीकार करके राजा नल पूरे लवाज़मे से अपनी राजधानी को चले। पहले वे मित्र के यहाँ गये। मित्र ने राजा नल के आने की खबर सुनकर पूछा—"मित्र आये तो कैसे आये ?" लोगो ने कहा—"अबकी बार तो बड़े ठाट-बाट से, हाथी-घोड़े से, डंका-निशान से, पालकी-पीनस से और फौज भी साथ लेकर आये हैं।" मित्र ने कहा—"अच्छी बात है, आने दो। मेरे तो जैसे तब थे, वैसे अब हैं। आख़िर मित्र तो है!" राजा-रानी दोनो मित्र के महलो मे गये। उसने सादर उनका स्वागत करके उसी स्थान मे फिर से उनका डेरा दिया, जहाँ वे पहले टिके थे। आधी रात के समय राजा सो रहे थे, रानी पैर दबा रही थी। तब उसने देखा कि मोर का चित्र जो हार लील गया था, उसे उगल रहा है और खाँडा खाट की पाटी से बाहर निकल रहा है। रानी ने राजा को जगाकर दिखाया। राजा ने अपने मित्र को बुलाकर वह चरित्र दिखाया। तब मित्र बोला—"मैंने न तब तुमको चोरी लगाई थी, न अब लगाता हूँ। यह सब कुदशा का कारण था। आप निश्चय रखिये मेरे मन मे कोई मैल नही है।"

मित्र के यहाँ से चलकर राजा मुँहबोली बहन के यहाँ गये। उसने जब सुना कि राजा भैया आये, तब उसने पूछा—"कैसे आये?" लोगों ने कहा—"जैसे राजाओं को आना चाहिये, वैसे आये, और कैसे आये?" उसने कहा—"उनको सीधा मेरे महलों मे आने दो।" जब राजा नल का हाथी बहन के महलों को तरफ़ बढ़ा, तब रानी बोली—"आप बहन के घर जाइये, मै तो उसी कुम्हार के घर जाकर ठहरूँगी, जिसके यहाँ पहले टिकी थी।" राजा ने कहा—"जिसके कारण इतने दुःख उठाये, तुम उसी से फिर झगड़ा मोल लेती हो। यह तो अच्छा नहीं करतीं।" परन्तु रानो न मानो। वह कुम्हार के यहाँ ठहरो। राजा बहन के घर चलेगये। शाम को ननद्-भावज के लिये थाल लगाकर चली। उसने भावज के सामने जाकर थाल रख दिया। तब भावज (रानी) सोने-चाँदी के गहने उतार-उतारकर रखने लगी और कहने लगी—"खाओ रे! मेरे सोने-रूपे के गहनो! खाओ। हम नंगे-भूखे क्या खायँगे।" यह देखकर ननद बोली—"यह उपालंभ और बोली-ठठोली किस पर कसती हो? मुझसे तो जो कुछ हो सका, सो तब लाई थी, वही अब भी लाई हूँ। विश्वास न हो तो चक्का के नीचे अब भी देख लो।" सचमुच चक्का उठाकर देखा तो उसके नीचे मणि-माणिकों का ढेर लगा था। रानी देखकर सन्न रह गई। बोली—"ननद! तुम्हारा कोई दोष नहीं है; यह सब मेरी कुदशा का कारण था।"

रानी ने ननद का लाया हुआ सब सामान वापस कर दिया। कुछ अपनी तरफ़ से भी दिया; परन्तु पूजा का न्योता न दिया।

वहाँ से चलकर सुरा गाय के पास आये, तो उसने सब सेना-समेत राजा को यथेच्छ दूध पिलाया। राजा ने गऊ के चरण छूकर कहा—"गो माता! बढ़ती रहो, सदा सुखी रहो।" वहाँ से आगे चले, तब तरबूजों वाला कहार मिला। उसने सब फ़ौज को अच्छे-अच्छे तरबूज़ खिलाये। राजा-रानी ने उसे भी आशीर्वाद दिया—"बढ़ते रहो, सदा सुखी रहो।" आगे चलकर राजा नदी के तीर पर पहुँचे तो वहाँ पड़ाव पड़ गया। राजा का अटाला चेताया गया। जब भोजन तैयार होगया, तो राजा भोजन करने बैठे। तब नदी में उछलकर गिरी हुई भुनी-भुनाई मछलियाँ आप से आप थाल में आकर गिर पड़ीं।" वे रोटियाँ, जो ईंटे हो गई थीं, फिर से रोटियाँ हो गईं। तब रानी से राजा ने पूछा—"यह सब क्या कौतुक है? कुछ समझ में नहीं आता।" रानी बोली—"ये वही मछलियाँ और रोटियाँ हैं, जो उस दिन अपने काम न आई थीं। मैं यदि आप से कहती कि मछलियाँ जल में उछल गईं और रोटियाँ ईंटे हो गईं तो आप न मानते। इसी कारण मुझको झूठा बहाना करना पड़ा था।" वहाँ से आगे चले, तो किसान लोग बोझ बाँधे हुए होरहा लिये रास्ते में खड़े थे। राजा की सब फ़ौज ने भूनकर बाले चबाईं। दो एक राजा ने भी खाईं। और भी आगे चले, तो वहाँ बेर के पेड़ों से बेर टपकने लगे। राजा की सब सेना ने ख़ूब बेर खाये।

जब राजा नल की फौज अपनी राजधानी के पास पहुँची तो वहाँ के लोग घबड़ा उठे। उन्होंने कहा—"अपने राजा पर तो

विपत्ति पड़ी है, वह बाहर भटकते फिरते हैं। यह कोई शत्रु चढ़ आया है। इसको नजराना देकर मिलना चाहिये। अस्तु; वे लोग हीरा-मोती थालों में भर-भरकर राजा से मिलने गाँव के बाहर आये। अपने राजा को पहचानकर उनको बड़ा आनन्द हुआ। वे बड़ी श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक महाराज के आगे होकर उन्हें महलों को लिवा ले चले।

राजा-रानी ने महलों में प्रवेश करके तुरन्त ही दशारानी की पूजा का प्रबन्ध किया। उस नगर की सब सौभाग्यवती स्त्रियों को निमन्त्रित किया गया। भगवती के भोग को सब तरह पकवान बनाया गया। आटे की बटी हुई दस बत्तियाँ, दस गुड़ या शक्कर की गुझियाँ और दस-दस 'अठवाइयाँ सुहागिनों के आँचल में डाली गयीं। सुहागिनों का शृङ्गारादि करके श्रीदशा-रानी की पूजा आरम्भ हुई। कलश स्थापित होकर जो माणिक (दिया) जलाया गया तो बत्ती ही न जली। तब पण्डितों ने विचार करके कहा—"यदि कोई न्योता पानेवाला न्योतने को रह गया हो, तो स्मरण किया जाय। उसके आ जाने पर दीपक जल जायगा।" रानी ने कहा—"मैंने और तो सभी को न्योता दिलवा दिया है; सिर्फ मुँहबोली बहन को न्योता नहीं दिया है।" पण्डितों ने कहा—"उसे शीघ्र बुलाइये।" राजा ने अपना द्रुतगामी रथ भेजकर मुँहबोली बहन को बुला लिया। उसने कलश का माणिक प्रज्वलित किया। बड़ी धूम-धाम से पूजा हुई। अन्त में सुहागिनों को भोजन कराके विदा किया गया। उसी समय राजा ने राज में हुक्म

जारी किया कि अबसे मेरी प्रजा के सभी लोग दशारानी का व्रत किया करे।

भगवती दशारानी ने जैसे राजा नल के दिन फेरे, ऐसे ही वह सबके दिन फेरें।

दूसरी कथा

एक राजा थे। उनकी दो रानियाँ थी। जेठी रानी को कोई सन्तान नहीं थी; किन्तु छोटी रानी के एक पुत्र था। राजा छोटी रानी और उसके पुत्र को बहुत प्यार करते थे। यह देखकर बड़ी रानी को डाह और ईर्ष्या होती थी। वह सौतिया डाह के कारण नाबालिग़ राजकुमार के प्राणों की प्यासी होगई थी। एक दिन राजकुमार खेलता हुआ अपनी विमाता के चौक मे चला गया। विमाता ने उसके गले मे एक काला साँप डाल दिया। राजकुमार की माता दशारानी का व्रत करती थी। वह लड़का दशारानी का दिया हुआ था। अस्तु; दशारानी की कृपा से लड़के के गले मे पड़ा हुआ साँप आप ही सरककर भाग गया।

दूसरे दिन राजकुमार की विमाता ने उसे विष के लड्डू खाने को दिये। वह लड्डू लेकर ज्यों ही खाने लगा, त्यों ही दशारानी ने किसी दासी के वेश मे प्रकट होकर लड्डू छीन लिये। विष देने पर भी लड़का नहीं मरा, तब रानी को बड़ी चिंता हुई कि किसी न किसी तरह इसको मारना चाहिये। तीसरे दिन जब राजकुमार पुनः उसके आँगन मे खेलने गया, तो रानी ने उसे पकड़कर गहरे कुएँ मे डाल

दिया। यह कुआँ उसके आँगन में था, इस कारण किसी को कुछ पता भी न चला कि राजकुमार कहाँ गया; क्या हुआ।

उत्तम जलाशय, शुद्ध-स्वच्छ मकान तथा ऐसी ही दिव्य वस्तुओं मे सदैव दशारानी का वास रहता है। विमाता ने राजकुमार को कुएँ मे डाला और दशारानी ने उसे बीच ही मे लोक लिया। जब दोपहर का समय हुआ, और कुँवर कहीं नहीं दिखाई दिया, तब राजा-रानी को बड़ी चिंता उत्पन्न हुई। जहाँ-तहाँ लोग उसे तलाश करने लगे। इधर दशारानी को भी इस बात की चिन्ता हुई कि राजकुमार के माता-पिता इसके लिये व्याकुल हो रहे हैं। इसको उनके पास पहुँचाना चाहिये; परन्तु पहुँचावें तो किस प्रकार ?

राजकुमार को तलाश करने वाले लोग हताश होकर बैठ रहे। राजा-रानी दोनों दुःखी होकर पुत्र-शोक मे बैठकर रोने लगे। तब दशारानी एक भिखारिणी के वेश मे कुँवर को गले से लगाये हुए राजद्वार पर जा पहुँची। राजकुमार को एक वस्त्र मे छिपाये हुए भिखारिणी ने भिक्षा के लिये सवाल किया। तब सिपाहियों ने उसे दुत्कारकर कहा—"कहाँ तो राजा का कुँवर खो गया है; सभी लोग दुःख और चिंता से व्याकुल हो रहे है। ऐसे मे तुझे भिक्षा की पड़ी है? चल हट जा यहाँ से!" तब दशारानी बोली—"भाइयो! पुण्य का बड़ा प्रभाव होता है। यदि मुझे भिक्षा मिल जाय, तो सम्भव है कि खोया हुआ राजकुमार मिल जाय।" यह कहकर वह देहरी के भीतर पैर रखने लगी। तब सिपाहियों

ने उसे आगे बढ़ने से रोका। उसी समय दशारानी ने वस्त्र में से बालक का एक पैर उघार दिया। सिपाहियों ने समझा कि अभी कुँवर, इसके हाथ में है, इसे जाने दो; कुँवर को भीतर छोड़ आने दो। उधर से बाहर जाने लगेगी, तब पकड़कर बिठा लेंगे।

दशारानी कुँवर को लिये हुए भीतर चली गई। उसने राजकुमार को चौक में छोड़ दिया और आप वहाँ से वापस होकर चल दी; परन्तु रानी ने उसे देख लिया था। उसने डाटकर कहा—"खड़ी रह, तू कौन है? तूने तीन दिन से मेरे लड़के को छिपाकर रख छोड़ा था। तूने ऐसा क्यों किया? ठहर जा इसका जवाब तो देती जा।" दशारानी उसी क्षण ठहर गई। उसने कहा—"रानी! मैं तुम्हारे पुत्र को चुराने-छिपाने वाली नहीं हूँ। मैं ही तेरी आराध्य देवी दशारानी हूँ। तुझे सचेत करने आई हूँ कि तेरी सौत तुझसे ईर्ष्या-द्वेष रखती है। वही तेरे पुत्र का घात करने की चिन्ता में रहती है। तुझको उचित है कि अपने पुत्र को कभी उसके पास न जाने दे। एक बार उसने कुँवर के गले में सर्प डाल दिया था। उसे मैंने भगाया। दूसरी बार उसने विष के लड्डू उसे खाने को दिये थे; उनको मैंने इसके हाथ से छीना। अबकी उसने इसे कुएँ में डाल दिया था, सो इस बार भी मैंने रक्षा की। इस समय भिखारिन बनकर तुमको चेतावनी देने आई हूँ।"

तब रानी भगवती के पैरों में गिर पड़ी। उसने विनीत भाव से प्रार्थना की—"जैसे कृपा करके आपने साक्षात् दर्शन दिये हैं। वैसे ही अब इसी महल में सदैव रहिये। मुझसे जो सेवा-पूजा

बनेगो, सो करूँगी।" तब दशारानी ने उत्तर दिया—"मैं किसी के घर मे नहीं रहती; जो श्रद्धा-पूर्वक मेरा ध्यान-स्मरण करता है, उसीके हृदय मे रहती हूँ। मैंने तुझे साक्षात् दर्शन दिये, इसके उपलक्ष्य मे तुम सुहागिनों को न्योंतकर उनको यथाविधि आदर-सत्कार से भोजन कराओ और अपने नगर में तथा राज मे ढिढारा पिटवा दो कि सभी लोग मेरा गंडा लिया करें और व्रत किया करे।"

यह कहकर दशारानी अन्तर्द्धान हो गई। रानी ने शहर भर को सौभाग्यवती स्त्रियों को निमन्त्रण देकर बुलाया। उबटन से लेकर शिरोभूषण-शृंगार तक उनकी यथाविधि शुश्रूषा करके गहने आदि देकर आँचल भरे और भोजन कराकर विदा किया। शहर और राज में भो ढिढोरा पिटवा दिया कि अब सब लोग दशारानी के गंडे लिया करें।

तीसरी कथा

एक साहूकार था। उसका बड़ा परिवार था—पाँच बेटे, उनको पांच बहुएँ तथा एक लड़की थो। लड़की का विवाह हो चुका था, किन्तु द्विरागमन की बिदा नहीं हुई थो। इस कारण लड़की माता पिता ही के घर मे थो।

एक दिन साहूकारिन दशारानो के गंडे लेने लगो। उसकी बहुओं ने भी गंडे लिये। उसी समय उन्होंने सास से पूछा—"क्या ननदजी का भी गंडा लिया जायगा?" सास ने कहा—"अवश्य

लिया जायगा। वह क्यों ऐसे शुभ काम से वंचित रक्खी जाय।" तब वे बोलीं—"उनकी तो विदाई होने वाली है। यदि व्रत के पहले ही विदा हो गई तब ?" सास ने कहा—"मैं पूजा का सब सामान साथ मे दे दूँगी, वह अपने घर जाकर पूजा कर लेगी।"

लड़की ने दशारानी का गंडा तो ले लिया, परन्तु पूजन के पहले ही उसकी ससुराल से लिवाने वाले आगये। माता ने विधि-पूर्वक लड़की की विदाई की और उसकी पालकी मे पूजा के सब सामान रख दिये। जब वह अपने घर पहुँची, तो वहाँ घर के आँगन में गलीचा बिछ गया। उसी पर वह जाकर बैठ गई। पास-पड़ोस की स्त्रियाँ नई बहू को देखने जुट आईं। सब लोग उसकी सुंदरता और गहने-कपड़े की तारीफ करने लगीं। किसी की नजर सब छोड़कर उसके गले के गंडे पर जा पड़ी। वह बोली—"बहू की माँ बड़ी टुटकाइन (टोटकही) है। इतना जेवर होते हुये भी दो ताग सूत के उसके गले मे क्यों पहना दिये हैं; सो समझ मे नहीं आता। जहाँ एक न यह बात कही, वहाँ सभी की नजर गंडे पर पड़ी। सभी स्त्रियों ने गंडे के सम्बन्ध मे कुछ न कुछ राय प्रकट की।

संध्या को सास-ननद, देवरानी-जेठानी, घर की सभी स्त्रियाँ जुटकर बैठीं, तो उसी गंडे की चरचा करने लगीं। किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। सारांश यह कि सभी ने सूत के गंडे की निन्दा की। सुनते-सुनते नई बहू का भी जी ऊब गया। तब उसने गंडे को तोड़कर जलती हुई बोरसी मे डाल दिया। गंडे मे आग लगते ही

उनके घर में आग लग गई। धन-धान्य सब जल गया। सब आदमी अपने-अपने प्राण लेकर भागे। उस जले घर मे यही स्त्री-पुरुष दोनो आदमी रह गये; बाकी सब तीन-तेरह होगये।

घर का सब सामान जल चुका था, न खाने को अन्न था न पहिनने को वस्त्र। इस कारण ये दोनों आदमी भी गाँव छोड़कर चल दिये। गाँव के बाहर जाकर पुरुष ने कहा—"अब वेपते कहाँ जायँ? कुछ समझ मे नहीं आता।" तब स्त्री-बोली—"इस समय मेरे नैहर चले चलो।" पति ने उसकी बात मान ली। आगे स्त्री, पीछे उसका पति दोनों चलते-चलते उस गाँव मे पहुँचे, जहाँ की वह लड़की थी। उसने पति से कहा—"जब तक कोई जीविका नहीं है, तब तक तुम भाड़ झोंककर पेट भरो। मैं भी किसी मजदूरी की फिकर करती हूँ।" पति भाड़ झोंकने लगा और स्त्री एक कुएँ की जगत पर जा बैठी।

उस कुएँ पर सारे गाँव की स्त्रियाँ पानी भरने आती थीं। उस लड़की की भावजें भी आईं और उसे वहाँ बैठी देख कर बोलीं—"बहन! तुम तो किसी भले घर की लड़की मालूम होती हो। कैसी बेकार बैठी हो? कहो किसी के यहाँ रहोगी तो नहीं?" लड़की बोली—"अवश्य रहूँगी, परन्तु न तो नीच टहल करूँगी; न खराब खाना खाऊँगी।" बड़ी भावज बोली—"हमारे घर मे तुम्हारे लिये नीच काम है हो नही, जब से हमारी ननद ससुराल चली गई है, तब से हमारे बच्चे हैरान होते हैं। तुम उन्हीं को खिलाती रहना और हमारे घर से सीधा लेकर अपना भोजन बनाकर खाया करना।"

उसके राजी होने पर स्त्रियाँ अपने घर गई और सास से बोलीं—"माताजी, कुएँ की जगत पर एक अनाथ दु:खिनी लड़की बैठी है, वह हमारे यहाँ रहने और तुम्हारे नाती खिलाने पर राजी है। आप की आज्ञा हो, तो उसे रख लें।" सास ने कहा—"खुशी से रख लो, परन्तु इतना कह देती हूँ कि पीछे से कलह न करना।" सब बहुओं ने कहा—"नहीं करेंगी।" तब सास ने आज्ञा दे दी।

वे दूसरी बार पानी को गईं और दु:खिनी को अपने घर लिवा लाईं। वह अपनी भावजों के लड़के-बच्चे खिलाती और बना-खाकर निर्वाह करती हुई रहने लगी। दैवात् फिर से दशारानी के गंडे लेने का अवसर पड़ा। सास ने कहा—"बहुओ! आओ सब बैठकर गंडे लेवें।" बहुओं ने पूछा—"क्या दु:खिनी का गंडा भी लिया जायगा?" सास ने कहा—"जब वह घर में रहती है, तब उसको क्यों बाहर किया जाय, उसे भी गंडा लेना चाहिये।" तब बहुओं ने कहा—"इसी तरह रोकते-रोकते तुमने ननदजी का गंडा लिया था। आखिर पूजा न हो पाई और उसकी विदा हो गई। अब दु:खिनी को गंडा लिवाती हो, यदि पूजा होने के पहले यह भी चली गई तब?" सास बोली—"तब क्या हानि है। तुम्हारी ननद ने अपने घर जाकर पूजा की होगी। दु:खिनी पूजा होने तक यहाँ रहेगी, तो अपनी पूजा में शामिल हो जायगी; न होगा, चली जायगी। जहाँ जायगी वहाँ पूजा कर लेगी।"

सर्वसम्मति से दु:खिनी ने भी दशारानी का गंडा लिया। नौ दिन तक कथा-कहानी होती रही। व्रत-पूजन यथाविधि

हुआ। दसवें दिन साहूकार की पाँचों बहुओं ने और उनकी सास ने सिर से स्नान किये, घर में गोबर से चौका लगाया, चौक पूरा और पूजा की तैयारी करने लगीं। तब दुःखिनी बोली—"भाभी! मुझे भी फटा-पुराना कपड़ा मिल जाय, तो मैं भी स्नान कर आऊँ।" तब बहुओं ने सास से पूछा—"हमारे पास ननदजी की साड़ी रखी है, कहो तो इसे दे दें।" जब ननदजी आयेंगी तो उनके लिये दूसरी साड़ी आ जायगी।" सास ने कहा—"दे दो, मुझे क्या? तुम्हारी ननद झगड़ा न करे। तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।"

अपनी पुरानी साड़ी लेकर दुःखिनी स्नान करने गई। उसने सिर से स्नान करके साड़ी पहनी और गीले बाल बिखराये हुये घर आई। यहाँ पूजा होनी आरम्भ हो गई थी। वह ज्यों ही पूजा के पास आकर बैठी, त्योंही एक भावज ने कहा—"यह दुःखिनी तो साक्षात् ननदजी की उनहार है।" इस पर सास ने नाराज़ होकर कहा—"तुम लोग बड़ी चञ्चल हो। पूजा के समय भी बक-बक लगा रक्खी है। चुप रहो, मुझे कथा कह लेने दो। तुम्हारी बातों में मैं कथा का सिलसिला भूली जाती हूँ।" बहुएँ चुप होगईं।

दुःखिनी समेत घर की सब स्त्रियों ने पारण किया। फिर सब इकट्ठी बैठकर एक दूसरी का सिर गूँथने लगी। एक ने दुःखिनी से कहा—"आ, मैं तेरा सर गूँथ दूँ।" वह दुःखिनी का सर गूँथते हुए बोली—"जैसी गूँथ इसके सर में है, अनुमान वैसी ही गूँथ हमारी ननदजी के सर में थी।" इस पर साहूकारिन क्रुध होकर

बोली—"मेरी लड़की अपने ससुराल मे सुख देख रही होगी। उसकी तुम कहाँ इस दुःखिनी से उनहार देती हो।" बहू ने कहा—"क्षमा कीजिये; मुझसे भूल हुई।"

सास ने बहू को दुत्कार तो दिया; परन्तु उसकी बात मनमे लग गई। उसने दुःखिनी से कहा—"आज रात तुम मेरे पास लेटना।" उसने बुढ़िया की आज्ञा अंगीकार की। रात को जब बहुएँ सो गई, तब बुढ़िया ने पूछा—"क्यों दुःखिनी तेरे नैहर मे भी कोई कभी था?" उसने जवाब दिया—"ऐसे ही पाँच भाई, पाँच भौजाई, तुम-जैसी माँ और पिता-से पिता थे।" पुनः बुढ़िया ने पूछा—"फिर क्या हुआ?" वह बोली—"मैंने अपने नैहर मे दशारानी का गंडा लिया था। उसका पूजन नही हो पाया, मेरी विदा ससुराल को हो गई। वहाँ स्त्रियों ने मेरे गले मे गंडा देखकर हँसी उड़ानी शुरू की। तब मैंने उस गंडे को आग मे डाल दिया। उसी गंडे के साथ-साथ सारा घर जलकर भस्म हो गया। सब लोग तीन-तेरह होगये। हम दोनो जने भागकर यहाँ चले आये।" माता ने पूछा—"और तेरा पति कहाँ है?" दुःखिनी ने जवाब दिया—"वह तो भड़भूजों के यहाँ भाड़ झोंकते हैं।"

साहूकारिन अपनी लड़की को पहचानकर उसे गले से लगाकर रोने लगी। उसके रोने का शब्द सुनकर पाँचों लड़के दौड़े उसके पास आये। तब बुढ़िया ने कहा—"यह दुःखिनी कोई और नही, तुम्हारी सगी बहन है। तुम्हारा बहनोई भूज के यहाँ भाड़ झोंकता है। दशारानी के कोप से इसकी ऐसी गति हुई है।"

सवेरा होते ही पाँचों भाई भूज के घर गये। उन्होंने बहनोई से कहा—"अब तक छिपे रहे सो रहे, अब अपने घर चलो।" उसने पूछा—"तुम कौन हो?" वे बोले—"हम लोग तुम्हारे साले हैं।" वह उनके साथ आने को राजी नहीं होता था, परन्तु वे लोग उसे जैसे-तैसे पकड़कर घर लाये। उसका चौर कराकर स्नान कराया, उत्तम वस्त्र पहनाये। तब तो वह सुन्दर साहूकार दिखाई देने लगा। कुछ दिनों ससुराल में रहकर उसने इच्छा की कि अब तो मैं अपने घर जाऊँगा। तब उसके सालों ने समझाया—"पहले तुम वहाँ जाकर देख भी तो आओ कि तुम्हारे घर की क्या हालत है, तब बहन को लिवा जाना। वह घर गया तो उसने देखा कि घर के सब लोग पहले की तरह सुख से हैं। वह डोली-कहार लिवाकर फिर ससुराल आया। तब उसके सास-ससुर ने दुःखिनी को बिदा कर दिया।

दुःखिनी अपनी दशा पर विचार करती हुई ससुराल को चली जाती थी। रास्ते में एक नदी मिली। उस नदी में स्नान करके अप्सराएँ दशारानी का गण्डा ले रही थीं। उनका एक गण्डा अधिक था। उनमें से एक बोली—"यदि इस डोली में कोई उच्च वर्ण की स्त्री हो, तो इसी को गण्डा दे देना चाहिये।" उन्होंने डोली के पास जाकर कहारों से पूछा—"इस डोली में कौन है?" वे बोले—"साहूकार की बहू है।" तब उन्होंने परदा उघारकर दुःखिनी से कहा—"हमारा एक गडा अधिक हो गया है, इसे तुम ले लो।" वह बोली—"मुझे गण्डा लेने से इन्कार नहीं है, परन्तु

एक बार गंडा लिया था, सो अब तक दुःख भोग रही हूँ। अब फिर से गंडा लूगी तो न जाने क्या होगा?" उन्होने कहा—"इस मे गंडे का कोई दोष नही, तुम्हारा ही अपराध था। अब की गंडा लेकर प्रेम से पूजन करना तो वही दशारानी तुम्हारी दशा फेर देगी। इस पर दुःखिनी ने पैर पड़कर गडा ले लिया।"

जब वह घर पहुँचा तो उसको सास सूप सजाये, ननद कलश लिये और देवरानी-जेठानी अन्य मांगलिक वस्तुएँ लिये उसका स्वागत करने को खड़ी थी। नेग-दस्तूर हो चुकने के बाद दुःखिनी ने आसन पर बैठते ही कहा—"तुम लोगों ने तबकी बार दशा-रानी के गंडे की निन्दा की थी, तो यह दशा हुई कि सब का बिछोह हुआ, घर का धन-धान्य स्वाहा हो गया। राम राम करके ठिकाने लगे है। अब की कोई भी मेरे गंडे की चरचा न करना। जब मेरा व्रत हो, तब श्रद्धा-पूर्वक पूजा करना।" सब ने खुशी से उसकी बात मान ली और कहा—"तुमने ऐसा पहले ही कह दिया होता, तो क्यो ऐसी आपत्ति आती। तुम ने बताया नहीं, इसमे किसो का क्या, तुम्हारा ही अपराध था।"

नौ दिन कथा-कहानियाँ हुई। दसवे दिन विधि से गडे को पूजा हुई। सात सुहागिनें न्योती गईं। महावर आदि से उनका श्रृङ्गार कराकर आँचल भरे गये। इस प्रकार खुशी से दशारानी का पूजन हुआ।

दशारानी ने जैसे दुःखिनी की दशा फेरी, वैसी ही वह सब पर कृपा करे।

चौथी कहानी

एक राजा था। उसकी रानी बड़ी ही कोमलाङ्गी और सुकुमार थी। वह फूलों की सेज पर सोया करती थी। एक दिन फूलों की सेज में एक कच्ची कली बिछ गई। उस रात्रि को रानी को नींद न आई। राजा ने पूछा—"प्रिये! आज तुमको नींद क्यों नहीं आती? क्या कोई पीड़ा है?" तब रानी बोली—"आज सेज पर एक कच्ची कली रह गई है, वही मेरे शरीर में गड़ती है। इसी से नींद नहीं आती।" उसी समय ज्योति-स्वरूप (दीपक) हँसा। यह देखकर राजा ने हाथ जोड़कर ज्योति-स्वरूप से प्रार्थना की—"स्वामी! आप क्यों हँसे? कृपाकर इसका भेद बताइये।" ज्योति-स्वरूप ने पुनः हँसकर उत्तर दिया—"अभी तो रानी कच्ची कली के कारण उसकती-पुसकती है, कल सवेरा होते ही जब सिर पर बोझा ढोवेगी तब क्या होगा?" राजा ने पूछा—"क्या मेरे देखते, मेरे जीते-जी ऐसा होना संभव है?" तब दीपक ने दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया—"हाँ सम्भव है; तुम्हारे जीते-जी सम्भव है।" ज्योति-स्वरूप की ऐसी भविष्यवाणी सुनकर राजा ने अपने मन में कहा कि देववाणी असत्य नहीं हो सकती। रानी को अवश्य बोझा ढोना पड़ेगा। किन्तु यह हो सकता है कि यदि मैं इसको जीते जी समुद्र में बहा दूँ, तो सम्भव है कि यह बोझा ढोने से बच जाय। क्योंकि जब यह समुद्र में डूब जायगी, तो बोझा कौन ढोयेगा।

राजा ने उसी वक्त रानी से कहा—"चलो हम तुमको नैहर भेज आवे। कुछ दिन तुम वहाँ रहना।" रानी ने कहा—"मेरे नैहर मे तो कोई भी नही है, वहाँ किसके यहाँ रहूँगी?" राजा ने जवाब दिया—"तुमको मालूम नही है, तुम्हारे गोत्रज-सम्बन्धी बहुत अच्छी दशा मे है। मै उन्हीं के पास तुमको भेज देता हूँ।" रानी नैहर के जाने को तैयार हो गई। उसने राजा की आज्ञानुसार बहुमूल्य आभूषणो से अपने को सँवारकर तैयार किया। तब राजा ने उसे सन्दूक मे विठाकर नदी मे बहवा दिया।

वह नदी समुद्र मे ऐसी जगह जाकर मिली थी, जहाँ उस राजा के बहनोई का राज था। समुद्र से मोती की सीपे निकाले जाने का राजा का ठेका था। रानी का सन्दूक बहता हुआ जब उस जगह पहुँचा, तो राजा ने मल्लाहो को हुक्म देकर सन्दूक को पानी से बाहर निकलवा लिया और उसे महलो मे भेजकर हुक्म दिया—"इस सन्दूक को अन्दर मेरे सोने के कमरे मे रक्खा जाय। जब तक मै न आऊँ, इसे कोई छुए भी नही। राजा के शयनागार मे सन्दूक पहुँचते ही रानी ने सुना कि राजा ने उसे समुद्र मे पाया है, तो वह फौरन उसे देखने के लिये चली गई। उस समय पहरेदार वहाँ से हट गया था। रानी ने कौतुक-वश सन्दूक को खुलवा डाला। उसने देखा कि उसके भीतर एक सर्वाङ्ग-सुन्दरी सोलह शृंगार, बारहों आभूषण किये बैठी है। रानी ने अपने जी मे सोचा कि अगर राजा इसको इस दशा मे देखेगा, तो इसी का हो रहेगा, मुझ को त्याग देगा। इसलिये इस स्त्री की हुलिया बिगाड़कर

सन्दूक में बन्द कर देना चाहिये। तदनुसार उसने रानी के जेवर-कपड़े सब उतरवाकर उसे मैले-कुचैले, फटे-पुराने कपड़े पहना दिये और सन्दूक बन्द करवा दिया।

राजा जब बाहर से महलों में आया, तो उसने रानी को अपने सोने के कमरे में बुलाया और पूछा—"क्यों रानी तुमने देखा, इससें क्या है?" रानी ने जवाब दिया—"मैंने कुछ नहीं देखा-सुना कि क्या है क्या नहीं है।" राजा ने रानी के सामने सन्दूक खुलवाया, तो उसमें फटे-पुराने कपड़े पहने एक भिखारिणी-सी देख पड़ी। रानी ने कहा यह तो कोई निर्वासित भिखारणी नीच जाति-सी दिखाई देती है। इसको कारागार में भेजवा दिया जाय। वहाँ लकड़ी ढोती रहेगी और खाना पाती रहेगी। राजा ने रानी के कहे अनुसार उसे कारखाने में भेज दिया।

एक दिन रानी की सहेलियाँ नदी में स्नान करके दशारानी के गण्डे ले रही थीं। एक गण्डा उनका अधिक था। वे इसी विचार से थीं कि यह किसको दिया जाय? दैवयोग से उसी समय लकड़ी-वाली रानी वहाँ जा पहुँची। उन्होंने उससे कहा—"बहन! यदि तुम कोई नीच वर्ण न हो, तो हमारा गंडा ले लो!" रानी ने कहा—"मुझे गंडा लेने से इन्कार नहीं है, परन्तु मुझे तो खाने भर को मिलता नही। इसकी पूजा कैसे करूँगी?" वे बोलीं—"तुम इसकी चिंता मत करो, हम रोज इसी जगह स्नान करने आया करेंगी। नौ दिन तक कथा कहा करेंगी, तुम भी नित्य कथा सुन जाया करो। दसवें दिन पूजा होगी, तब तक दशारानी चाहेंगी, तो अवश्य तुम्हारी दशा बदल

जायगी। रानी ने श्रद्धा-पूर्वक दशारानी का ध्यान करके गण्डा ले लिया।

उसी दिन रानी के पति को यह चिंता उत्पन्न हुई कि रानी को सन्दूक मे रखकर बहा तो दिया था, परन्तु उसका कोई समाचार नही मिला कि क्या हुई ? किसी तरह उसकी टोह लगानी चाहिये। अस्तु; राजा एक नौका पर सवार होकर नदी द्वारा सफर करता हुआ अपने बहनोई के यहाँ पहुँचा। सन्ध्या को ब्यालू करके जब वह लेटने लगा, तो बहन से बोली कि मेरे हाथ-पैरो मे बहुत दर्द है। किसी दवा वाले को बुलवा दो। तब उस रानी ने लकड़ी ढोने वाली भिखारिणी बुलाकर हुक्म दिया कि आज की रात तू मेरे भाई के पैर दबा दे। वह बड़े संकोच मे पड़ गई। अपने जी मे अनेक संकल्प-विकल्प करती थी कि पर-पुरुष का शरीर छुऊॅ तो कैसे छुऊॅ। स्वामिनी रानी बराबर अपनी बात पर दबाव दे रही थी। लाचार दासी रानी को स्वीकार करना पड़ा।

राजा के पैर दबाते-दबाते रानी को उसके पाँव का पद्म देख पड़ा। रानी चुपचाप रोने लगी और उसके आँसू राजा के पैरों पर टपक पड़े। तब उसने पूछा—"क्योरी दासी, तू क्यो रोती है ?" रानी डरकर बोली—"महाराज ! मै तो नही रोती हूँ।" परन्तु राजा ने आश्वासन देकर समझाया—"तू अपना भेद मुझे बता। मेरे कारण तुझे किसी प्रकार की हानि न पहुँचेगी।" तब वह बोली—"जैसा पद्म आप के पैर मे है, वैसा ही मेरे पति के पैर मे था। पहले दिनों की याद आ जाने से मुझे रुलाई आगई है, सो क्षमा कीजिये।"

राजा ने पूछा—"क्या तू किसी राजा की रानी है ?" उसने कहा—"हाँ।" राजा ने उसका सब हाल पूछा। उसने आदि से अन्त तक सारा हाल कह सुनाया।

तब राजा बोला—"मै समझ गया। अब तुम पैर मत दबाओ; आराम से सोओ। तुम्हारे भाग्य मे लिखा था, तो तुमको भोगना ही पड़ा। मैंने उसके टालने के लिये जो उपाय रचा था, उसका उलटा नतीजा हुआ। तुमको मेरे जीते-जी लकड़ी ढोनी ही पड़ी। राजा ने अपनी धोती उतारकर रानी को दे दी। रानी एक कोने में पड़कर सो गयी।

सवेरा हुआ। बहुत दिन चढ़ आया। परन्तु अतिथि राजा सोकर नहीं उठा; न पैर दबाने वाली दासी बाहर निकली। तब तो उसकी बहन को चिंता हुई कि यह क्या हुआ? क्या दासी ने मेरे भाई को मोह लिया, जो दोनों अबतक सो रहे हैं। दासी रानी उस समय जाग उठी थी। वह ननद के उपालम्भ-पूर्ण वचन सुनकर बाहर निकल आई और कारखाने मे काम करने चली गई। रानी ने अपने भाई के पास जाकर उसे जगाया। तब वह बोला—"मेरे माथे मे पीड़ा है, मै अभी नही उठूँगा।" बहन ने कहा—"यह सब थकान का कारण है। उठकर नित्य-क्रिया से निवृत्त हो स्नान-ध्यान करो। ज़रा जी बहले तो अच्छे हो जाओगे।" राजा बोला—"मैं यह कुछ भी नहीं करूँगा। इस समय मेरा जी बहुत व्याकुल हो रहा है। मुझे अधिक मत सताओ।"

रानी ने पूछा—"आखिर बात क्या है? कुछ कहो भी?" राजा ने कहा—"बड़े लज्जा की बात है। मैंने तुम्हारी भावज को जान-बूझकर तुम्हारे पास इसलिये भेजा था कि यहाँ इसे आराम से रक्खा जायगा सो तुम उस से मजदूरों के साथ लकड़ी ढुलवाती हो। क्या मैंने इसीलिये उसे तुम्हारे पास भेजा था।" तब बहन बहुत लाचार होकर बोली—"मुझे अब तक यह खबर नहीं थी कि वह कौन है। मैं समझती थी कि नदी में बहती-बहाती न जाने कौन कहाँ की चली आई है। अब जाना सो माना।" यह कह कर उसने दासियों को भेजा कि उस लकड़ी वाली को चुपचाप मेरे पास बुला लाओ।"

जब दासी रानी आई तो उसकी भावज ने आदर-पूर्वक उस के पैर पड़े और विनीत भाव से माफी माँगी—"जो कुछ किया वह अन-जाने किया। तुमने कभी इस बात की चर्चा नहीं की कि तुम कौन हो, कहाँ की हो? मैंने भ्रम-वश तुम्हारा अनादर किया।" रानी ने कहा—"इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। यह सब मेरी ग्रह-दशा का खेल था, जो हो गया, सो हो गया। आप उसके लिये कोई संकोच न करें।"

कुछ दिनों बहन के पास रहकर राजा अपनी रानी साथ लिवाकर अपनी राजधानी को चला गया। रानी ने चलते समय भावज से कहा—"मैंने यहाँ दशा रानी का गंडा लिया था। अब मैं उसकी पूजा घर जाकर करूँगी। आप भी न्योते आइयेगा।" राजा-रानी ने अपने महलों में पहुँचकर सुहागिनें न्योतीं, धूम-धाम

से दशारानी के गंडे की पूजा की और गाँव-भर में ढिंढोरा फेर दिया कि आज से अमीर-गरीब सब दशारानी के गंडे लिया करें और श्रद्धा-पूर्वक पूजा किया करें। जिस किसी के पास पूजन-पारण की सामग्री की कमी हो, वह राजा के कोठार से ले जाया करे।

जिस प्रकार दशारानी ने सुकुमारी रानी के दिन फेरे, वैसे ही वह अपने सब भक्तों के दिन फेरे। श्रोता-वक्ता सभी का कल्याण हो।

पाँचवीं कहानी

कोई सास-बहू थीं। सास ने एक दिन बड़े सवेरे बहू से कहा—"जाओ आग लाकर भोजन बनाओ, बड़ी भूख लगी है।" बहू हाथ में कंडी लेकर आग लेने गाँव में गई। उस दिन गाँव भर में घर-घर दशारानी की पूजा थी, इस कारण किसी ने उसको आग नहीं दी। औरतों ने व्यंग-पूर्वक उससे कहा—"तुम भली हो। तुम्हारे घर न पूजा, न धर्म-कर्म। बड़े फजर चूल्हे पै नजर। सवेरा हुआ नहीं, आग लेने आ गई। आज पूजा हुए बिना आग नहीं दी जायगी।" तब बहू अपने मन में लज्जित और क्रोधित होती हुई घर आई। उसने सास से कहा—"सवेरे से कोई आग नहीं देती—जब कोई देगी तब लाऊँगी।

संध्या-समय वह पड़ोसिनों के पास गई और उनसे बोली—"मेरी सास तो गंडा लेती नहीं है, परन्तु अब की बार जब गंडे पड़ें, तब मुझको बताना और पूजन की विधि बतला

देना, तो मैं गंडा लूँगी।" फिर जब गंडे पड़े, तो बहू ने सास की चोरी से दशा रानी का गंडा लिया। नौ दिन तक उसने किसी न किसी बहाने पड़ोसिनों के पास जा-जाकर कथा-कहानियाँ सुनीं। दसवें दिन उसे चिन्ता हुई कि अब पूजा कैसे करूँगी। तब वह मन ही मन दशारानी का ध्यान करके मनाने लगी कि यदि बुढ़िया आज कहीं बाहर चली जाय, तो मैं शान्ति-पूर्वक पूजा कर लूँ। दशारानी की कृपा से उसी दिन बुढ़िया को खेतों पर जाने की सूझी। उसने बहू से कहा—"तुम भोजन बनाकर तैयार करना, तब तक मैं खेत-खलियान तक होकर वापस आती हूँ। यदि मुझे अधिक देर हो, तो मुझे खेत पर ही खाना दे जाना।" बहू तो यही चाहती थी। उसने सास की आज्ञा को शिरोधार्य करके कहा—"आप जाइये, घर के काम-काज से निश्चित रहिये।"

ज्यों ही बुढ़िया ने पीठ फेरी कि बहू ने पूजा की तदबीर लगाई। उसने शिर-स्नान करके विधिवत् दशारानी की पूजा की। तदनन्तर वह पूजा की सामग्री मिट्टी के गोले में रखकर उसे भेंटकर सिराने के लिये ले जाने वाली थी। उसी समय बुढ़िया आ गई। उस वक्त बहू को और कुछ उपाय न सूझ पड़ा। तब उसने जल्दी से उस गोले को छाछ की मटकी में छिपा दिया। उसने सोचा कि जब बुढ़िया फिर कहीं बाहर जायगी, तब गोला मट्ठे में से निकालकर सिरा आऊँगी।

बुढ़िया ने आते ही बहू की खबर ली। पूछा—"क्यों तू मेरे खाने को क्यों नहीं लाई? अब तक क्या करती रही?" उसने

जवाब दिया—"आज मैंने सिर से नहाया है, इसी कारण रसोई करने में देर हो गई है। मैं थाल परोसती हूँ, भोजन कीजिये।" बुढ़िया का गुस्सा कुछ शान्त हुआ। वह पैर धोकर चौके में बैठो थी, तब तक उसका लड़का भी आ गया। वह भी माता के साथ भोजन करने बैठ गया। बुढ़िया भोजन करके उठना ही चाहती थी कि लड़का बोला—"मुझे तो छाछ चाहिये।" बुढ़िया ने बहू से कहा—"उठ, छाछ दे दे।" उसने कहा—"मैं तो रसोई के भीतर हूँ, आप ही क्यों न दे दें।" बुढ़िया भोजन करके उठी। हाथ धोकर मट्ठा लेने गई, परन्तु ज्यों ही उसने छाछ की मटकी उठाई कि उसे उसमें कुछ खड़खड़ाता हुआ दिखाई दिया। उसने हाथ डालकर देखा तो एक बड़ा सोने का गोला था।

सास ने आश्चर्य मे होकर बहू से पूछा—"अरी, इसमे यह क्या है? इसे तू कहाँ से लाई है? यहाँ क्यों छिपा रक्खा है? मैं समझ गई, इसी से तू छाछ देने न आई थी। इसका भेद बता, नहीं तो अभी तेरी खबर लेती हूँ।" वह बोली—"मैं क्या जानूँ, मेरी दशारानी जाने। मैंने तुम्हारी चोरी से दशारानी का गंडा लिया था। तुम्हारो चोरो से पूजा की थी। तुम आ गई, सो मैं गंडा सिराने न जा सकी। तब मैंने उसे छाछ की मटकी में छिपा रक्खा था। दशारानी ने उसे सोने का कर दिया, तो इस के लिये मैं क्या करूँ।"

बुढ़िया ने बहू को गले से लगा लिया। कहा—"अब मैं भी तेरे साथ गंडा लिया करूँगी और विधिवत् व्रत और पूजन किया

करूँगी। हे दशारानी! जैसे तुमने मुझ को दिया, वैसे ही अपने सब भक्तों को दिया करो।"

छठवीं कहानी

एक घर मे कोई देवरानी-जेठानी थीं। उनके कोई सन्तान नहीं होती थी। वे मेहनत-मजदूरी करके पेट पालती थीं, नेम-धर्म, व्रत-पूजन कुछ भी नही करती थी। एक दिन दोनों सवेरे-सवेर गाँव मे आग लेने गईं, परन्तु किसी ने उनको आग नहीं दी, क्योंकि उस दिन गाँव भर मे दशारानी का पूजन था। दोनों खाली हाथ घर आकर एक दूसरे से कहने लगीं—"आज तो गाँव भर मे दशारानी का पूजन है, कोई आग देती ही नहीं। क्या किया जाय?" आखिर जेठानी बोली—"कुछ हानि नहीं, आज अपने लोगों का भी व्रत सही। शाम को जब आग मिलेगी, तब रसोई बना-खा लेंगी।"

संध्या के समय जेठानी अपनी एक पड़ोसिन के घर आग लेने गई। पड़ोसिन ने उसे स्वागत-पूर्वक बिठाया और कहा—"आज मेरे यहाँ दशारानी की पूजा थी, इस कारण नियम भङ्ग करके आग नहीं दे सकती थी, माफ करना बहन! अब जो चाहो सो ले जाओ।" जेठानी ने पूछा—"दशारानी का पूजन करने से क्या होता है?" उसने जवाब दिया—"जिस बात की इच्छा करके गण्डे लिये जायँ, वह इच्छा पूर्ण होती है।" तब जेठानी बोली—"बहन! अब की बार जब गण्डे पड़ें, तो मैं भी गण्डा लूँगी और पूजन करूँगी।"

वह आग लेकर पड़ोसिन के घर से बाहर निकली थी कि गौवें चरकर आती हुई दिखाई दीं। ग्वाला पीछे-पीछे आ रहा था। उसके कन्धे पर एक बछवा था और एक गाय उसको चाटती हुई उसके पीछे-पीछे आ रही थी। पड़ोसिन ने पूछा—"भैया! तुम्हारी गाय पहला ही है या दोहला-तेहला?" उसने कहा—"पहला ही ब्यान है।" पुनः स्त्री ने पूछा-"बछवा ब्याई है या बछिया?" ग्वाल ने जवाब दिया—"बछवा है।" तब उसने जेठानी से कहा—"लो अब घर जाकर दशारानी का गण्डा ले लो। नौ दिन तक कथा-कहानियाँ सुनना, दसवें दिन सिर से स्नान करके पूजन करना। दशारानी करेंगी तो दस दिन के भीतर ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो जायगी।" उसने अपने घर जाकर देवरानी को सम्बोधन करके कहा—"आज एक पहलौठी गाय बछवा ब्याई है, आओ हम-तुम भी दशारानी के गण्डे ले लेवें।"। देवरानी ने कहा—"बहुत अच्छा! मुझे आप की आज्ञा स्वीकार है।" निदान दोनों ने दशारानी के गण्डे लिये और दशारानी का ध्यान-स्मरण करके यह मनौती मनाई कि यदि हमारे सन्तान पैदा होगी, तो हम सुहागिनें न्योतकर दुरैंयाँ करायेंगी।

दशारानी के गण्डे की पूजा होने के पहले ही देवरानी-जेठानी दोनों गर्भवती हुईं। नौ महीने नौ दिन के बाद दोनों के गर्भ से दो सुन्दर बालक जन्मे। बालकों के जन्म-संस्कार होने के बाद ही देवरानी ने कहा—"बहनजी! लड़के होने पर जो सुहागिने न्योतने की मनौती की थी, उनको न्योता देना चाहिये।" जेठानी ने कहा—"अभी।

ऐसी क्या जल्दी पड़ी है, जब लड़कों की पासनी (अन्न-प्राशन संस्कार) होगी, तब न्योत देंगी।" जब लड़कों की पासनी हुई, तब भी देव-रानी ने दुरैयों की याद दिलायी, परन्तु जेठानी ने फिर भी बात टाल दी और कहा—"जब लड़कों का मूँड़न होगा, तब सुहागिनें न्योती जायँगी।" होते-होते कुछ दिनों बाद लड़कों का मुंडन हुआ, तब भी देवरानी ने जेठानी से कहा—"अब तो सुहागिनें न्योतो।" परन्तु फिर भी जेठानी ने कहा—"जब लड़के बड़े होंगे, इनकी सगाई होगी, उसी दिन सुहागिनें न्योती जायँगी।"

लड़के बड़े हो गये। उनका सगाई-सम्बन्ध भी पक्का हो गया। फिर भी जेठानी ने सुहागिनें नहीं न्योतीं। उसने कहा—"जिस दिन लड़कों की भाँवरें पड़ेंगी, उसी दिन सुहागिनें न्योतकर उत्सव के साथ पूजा की जायगी।" तब देवरानी बोली—"बहन! तुम चाहे जब करना; पर मैं तो मण्डपाच्छादन के दिन ही सुहा-गिनें न्योतूँगी।" देवरानी ने जैसा कहा था, वैसा ही किया। मँड़वा के दिन सुहागिनें न्योत दीं, परन्तु जिठानी ने कुछ भी परवाह न की। मण्डपाच्छादन के बाद मातृका पूजन होकर बरातें सजाकर दोनों दूल्ह ब्याहने चले।

जिस लड़के की माता ने मँड़वा के दिन सुहागिनें न्योती थीं, उसका विवाह बड़ी धूम-धाम से सकुशल पूर्ण हो गया; परन्तु जिसकी माता ने सुहागिनें नहीं न्योती थीं, उसको ठीक भाँवरों के समय दशारानी बीच मण्डप में से हरकर ले गईं। दूल्हा को सहसा ग़ायब होते देख वर-कन्या दोनों पक्ष में हाहाकार मच

गया। गवाई की जगह रुलाई होने लगी। उसकी बरात खाली हाथ घर वापस आई। परन्तु लड़की की माता बड़े सङ्कट मे पड़ गई कि अब यह अधब्याही लड़की किसके सर मढ़ी जायगी? पास-पड़ोस की चतुर स्त्रियों ने लड़की की माता को समझाया-"रोने और घबड़ाने से तो कुछ होता नहीं, उपस्थित उपाधि के लिये कुछ उपाय करना चाहिये।" उसने कहा—"मुझे तो इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं सूझता कि लड़की को लेकर किसी ताल-कुएँ मे डूब मरूँ।" बुढ़ियों ने कहा--"ऐसा न करो, लड़की से भी तो पूछने दो कि वह क्या कहती है? यह जो कुछ हुआ, सो उसके भाग्य से हुआ। अब देखना चाहिये वह क्या चाहती है?" लड़की से पूछा गया तो वह बोली—"मै तो सब तरह से आप लोगों के अधीन हूँ; जो कुछ आप बड़ों की सलाह हो, उसी मे मेरा कल्याण है। मैं खुशी से आप लोगो की आज्ञा मानूँगी।"

तब सब की यह सलाह निश्चय हुई कि ब्याह का जो सोधा-सामान बचा हुआ है, वह उसी लड़की के हवाले कर दिया जाय। वह मँगते-भिखारी लोगों को सदाव्रत दिया करेगी। न जाने किसकी कैसी असीस फल जाय, कहते हैं कि पुण्य की जड पाताल में होती है। लड़की उसी दिन से दरवाजे पर बैठकर आये हुये भिक्षुकों को सदाव्रत देने और तन-मन से उनका आतिथ्य-सत्कार करने मे लग गई। सारे दिन आतिथ्य-सत्कार करने के बाद शाम को भोजन करती और पड़ रहती थी। इसी प्रकार बहुत दिन बीत गये।

एक दिन एक साधु तीर्थयात्रा करता हुआ उसी गॉव की तरफ आ रहा था, जिसमे अधव्याही लड़की सदाव्रत देती थी। गॉव से बहुत दूर घने जंगल मे गाँव के रास्ते मे एक बड़ा भारी पीपल का पेड़ था। लोग उस पेड़ को पारस पीपल कहते थे। उसी पेड़ मे दशारानी का निवास था। साधु चलता-चलता शाम को उसी पेड़ के नीचे ठहर गया। वहॉ ॲधेरा हो गया। दिया पर वत्ती पड़ी कि झाड़ूदार ने आकर उसी पेड़ के पास मैदान मे झाड़ू लगाया, सक्का (भिश्ती) ने आकर ज़मीन छिड़की और माली ने आकर फूल वखेर दिये। तव अनेक देवता अनेक प्रकार की पोशाके पहने हुए वहॉ आ-आकर यथास्थान वैठने लगे। सबसे पीछे स्वर्ग से राजा इन्द्र का सिहासन उतरा। उसीके साथ-अनेक अप्सराएँ साज-सामान समेत वहाँ आई और इन्द्र के सिहासन के सामने नाचने-गाने लगीं।

उसी समय दशारानी अवव्याहे लड़के को गोद मे लिए हुए पीपल के पेड़ पर से उतरी। इन्द्र के साथ-साथ स्वर्ग से एक सुरा गऊ भी आई थी। उसने दो कटोरा दूध दिया। लड़के ने अध-व्याही के भाग का एक कटोरा अलग रख दिया और एक कटोरा दूध पी लिया। जब तक नाच-तमाशा होता रहा। दशारानी लड़के को गोद मे लिये वैठी रही। सवेरा होते ही देवताओं का दरबार भंग हुआ। साधु भी वहॉ से चलकर गॉव मे चला आया।

वह गाँव मे भिक्षा मॉगता फिरता था। उससे लोगों ने कहा—"बाबा! घर-घर भीख मॉगते फिरते हो, साहूकार के दरवाज़े

क्यों नहीं जाते, जहाँ लड़की सदाव्रत देती है। वहाँ तुम्हें इच्छा-भोजन मिल जायगा।" साधु पूछता-पाछता लड़की के पास आया। लड़की ने बाबा से पूछा—"महाराज! आप कच्चा सीधा लेंगे या पका हुआ भोजन करेंगे?" साधु ने कहा—"यदि पका-पकाया भोजन मिल जाय, तो कच्चे को क्या करना है?"

भोजन बनकर तैयार होगया। बाबाजी भोजन करने बैठे। तब लड़की ने तीन पत्तल परोसकर एक को अधब्याहे वर के नाम से अलग खसका दिया, एक पत्तल बाबाजी के सामने परोसा और एक पत्तल उसने अपने सामने रक्खा। बाबाजी ने अपने आप कहा—"वाह! जो बात वहाँ देखने मे आई थी, वही बात यहाँ भी देखने मे आई।" लड़की ने पूछा—"क्या कहा बाबाजी?" बाबा ने बात टालते हुए कहा—"हम बैरागी लोग ऐसी अनेक बाते कहा करते है। तुमको इन बातों से क्या प्रयोजन है? तुम तो भोजन करो और भगवान् का भजन करो।" लड़की हठ कर गई। उसने कहा—"जब तक आप इसका भेद नहीं बतलायेंगे, मै भोजन नहीं करूँगी। आप भोजन कीजिये और जाइये।" फिर भी बाबा चुप रहे। तब लड़की बोली "आप साधु हैं, मैं सती हूँ। आप या तो उस वचन का भेद बताइये, जो आपने कहा है या मेरी श्राप लीजिये।

तब बाबा बोले—"ईश्वर के कोप से बचने का उपाय हो सकता है; परन्तु सती के श्राप से बचने का कोई उपाय नही। मै कहता हूँ, तुम सुनो। मै इसी गाँव को आ रहा था। रास्ते मे एक

पारस पीपल है। उस पर से एक दूल्हा रात्रि को उतरा। सुरा गऊ ने उसे दो कटोरा दूध दिया। उसने एक कटोरे का दूध तो आप पिया और दूसरे कटोरे का दूध अध-व्याही का। नाम लेकर अलग खसका दिया। जैसा कंगन उसके हाथ मे था, वैसा ही कंगन तुम्हारे हाथ मे भी है।"

लड़की ने विनीत भाव से प्रार्थना की—"बाबाजी! आप कृपा-करके मुझे उस जगह तक लिवा चलिये।" बाबा बोले—"तुम को लिवा चलने मे मुझे कोई आपत्ति नही है, परन्तु लोकापवाद का भी तो ख़्याल है। लोग कहेंगे कि साहूकार की अध-व्याही लड़की बाबा के साथ भाग गई। मेरा क्या, मैं तो साधु ठहरा। आज यहाँ तो कल वहाँ। परन्तु समाज मे तुमको और तुम्हारे परिवारवालो को नीचा देखना पड़ेगा।" इसी प्रकार साधु ने अनेक ऊँच-नीच बाते समझाई; परन्तु लड़की के मनमे एक भी बात न आई। उसने कहा—"आप मेरे पिता-तुल्य है। आप तो मुझे वहाँ तक लिवा चलकर छोड़ दीजिये। फिर मेरे भाग्य मे बदा होगा, सो होगा।"

बाबा आगे-आगे चले, लड़की उसके पीछे हो ली। बाबा लड़की को पारस पीपल के पास छोड़कर चले गये। जब संध्या हुई, तो नित्य की तरह झाड़दार ने झाड़ू लगाई। सक्का ने ज़मीन छिड़की, माली ने फूल बिखराये। राजा इन्द्र आये और परियों का नाच-गान होने लगा। उसी समय दशारानी पीपल पर से उतरकर दरबार मे बैठी। लड़के ने सुरा गाय से दूध लिया।

उसने अध-व्याही का कटोरा अलग रखकर ज्यों ही अपना कटोरा मुँह से लगाया, त्योंही लड़की कटोरा हाथ से लेकर वर के सामने आगई। वह बोली—"अपना भाग लेने के लिये मै उपस्थित हूँ और जो आज्ञा दी जाय, सो सेवा करूँ।" तब वह बोला—"ऐसा नही, मैं इस तरह तुमको नहीं मिल सकता। मै दशारानी की सेवा मे रहता हूँ। अभी मुझे दरबार से जाकर उन्हीं की गोद में बैठना होगा। यदि तुम मुझको चाहती हो, तो दशारानी को प्रसन्न करके उनसे मुझको माँग लो। तब मै तुम्हारा हो सकता हूँ।"

लड़का दशारानी की गोद मे जा बैठा। लड़की अप्सराओं के साथ नाचने लगी। अप्सराएँ संख्या मे बहुत थी। थोड़ी-थोड़ी देर के बाद उनकी बदली होती जाती थी। जो नाचते-नाचते थक जातीं, वे अलग हो जाती और उनकी जगह पर दूसरी नाचने लगती थीं। परन्तु यह लड़की लगातार नाचती रही। जब सवेरा हुआ तब दशारानी ने कहा—"यह नई नाचने वाली लड़की बहुत नाची है।" उसे बुलाकर उन्होने कहा—"मै तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ। माँग ले जो कुछ माँगना हो।" लड़की ने दशारानी से वचन हरा लिया कि जो माँगूँ सो पाऊँ। तब उसने दौड़कर अपने पति को पकड़ लिया और कहा—"मुझे यही मिलने चाहिये।" दशारानी ने कहा—"तूने माँगा तो बहुत; परन्तु मैं वचन दे चुकी हूँ, इस कारण तेरा वर तुझे दे देती हूँ।"

राजा इन्द्र ने पूछा—"भगवती! यह सब क्या भेद है, जरा मुझे भी बताइये?" तब दशारानी बोली—"यह लड़का मेरे ही

वरदान से पैदा हुआ था। इसकी माता ने मनौती मानी थी कि जब लड़का होगा तो सुहागिनों को न्योता दूँगी; परन्तु उसने आजतक अपना वचन पूरा नहीं किया। इसी कारण मैं अपने दिये हुये बालक को विवाह-मण्डप मे से हर लाई थी। यह इसकी अध-व्याही स्त्री है, परन्तु पतिव्रता है। इसी कारण यह देव-समाज मे पहुँचकर मुझसे अपने पति को छीने लिये जाती है।" दशारानी के ऐसे वचन सुनकर इन्द्र समेत सब देवताओं ने वर-कन्या के ऊपर फूल बरसाये।

तब तक साधु बाबा भी वहाँ आगये। साधु बाबा, उसके पीछे दूल्हा और उसके पीछे लड़की, इस प्रकार तीनो गाँव की तरफ चले। जब वे लोग गाँव के समीप पहुँचे, तो लोगों ने लड़की के पिता को खबर दी कि तुम्हारी लड़की अपने दूल्हा के साथ आ रही है। जिस दिन से लड़की चली गई थी, प्रथम तो उसी घड़ी से वह लोकापवाद के मारे घर से बाहर नही निकलता था, अब जो और भी नई बात सुनने मे आई तो उसने किवाड़ बन्द कर लिये। उसने समझा, लड़की बाबा के साथ-साथ आ रही होगी, उसी के सम्बन्ध मे लोग मेरा उपहास कर रहे है। किन्तु जब गाँव के गण्यमान्य और प्रतिष्ठित लोगो ने भी उससे वही बात कही, तब वह लजाता-शरमाता घर से बाहर आया, परन्तु उसने जब दरवाज़े पर सचमुच लड़की के साथ दामाद को खड़ा देखा, तो उसकी प्रसन्नता का पार न रहा। उसने इसी खुशी में बहुत दान-पुण्य किया, बधाई बजवाई और फिर से विवाह की

तैयारी की, परन्तु लड़की ने अपनी माता से कहा—"इस तरह ब्याह पूरा नहीं पड़ेगा। वहाँ सुहागिनों को न्योता देकर जब बरात यहाँ आवे, तब विवाह के नेग किये जायँ।" लड़की के बाप ने लड़के के घर खबर भेजी। वहाँ सुहागिनों को न्यौतकर बरात चली। बड़ी धूम-धाम से विवाह हुआ। वर-दुलहिन दोनों अपने घर गये। तब फिर से लड़के की माता ने सुहागिनें न्योतीं।

उसी समय से विवाह मे भाँवरो क दिन वर के घर सुहागिने न्योतने की चाल चली है। दशारानी ने जैसी सती की दशा फेरी वैसी वह कथा के श्रोता-वक्ता सभी का कल्याण करें।

सातवीं कहानी

एक बुढ़िया ब्राह्मणी थी। वह बहुत गरीब थी। उसका एक लड़का भी था। एक दिन वह लड़के से बोली—"बेटा! कुछ ऐसा उद्यम करो, जिस मे चार पैसे की आय हो और अपना निर्वाह हो। अब मेरे तो हाथ पैर नहीं चलते।" तब लड़का गाँव वालों के गोरू चराने लगा। एक दिन लड़का पशुओं को पानी पिलाने नदी के घाट पर गया। वहाँ स्त्रियाँ स्नान करके दशारानी के गण्डे ले रही थी। उनका एक गण्डा अधिक था। उनमे से एक ने कहा—"पूछो तो यह लड़का किसका है? यदि किसी उच्च वर्ण का हो, तो इसी को गण्डा दे दे।" एक स्त्री ने लड़के से पूछा—"तुम्हारे घर में और कौन है?" लड़के ने जवाब

दिया—"मेरी एक बुढ़िया माता है।" फिर स्त्री ने पूछा—"तुम कौन वर्ण हो ?" वह बोला—"हूँ तो ब्राह्मण, पर कोई काम न मिलने के कारण गारू चराता हूँ।"

स्त्रियों ने लड़के को एक गण्डा देकर कहा—"तुम इसे घर ले जाकर अपनी माता को देना और कहना कि इसका पूजन और व्रत करे। हम लोग तुमको सीधा और पूजा की सामग्री भी देते हैं, सो भी लेजाकर माता को दे देना।" लड़के ने गण्डा ले लिया। फिर सब स्त्रियों ने उसे सीधा दिया। लड़का उस सामान को गठरी बाँधकर घर आया। उसने दरवाजे से ही माता को पुकारकर कहा—"गठरी उतार ले, बोझों मरा जाता हूँ।" माता दौड़ी आई। गठरी का सीधा-सामान देखकर बहुत ख़ुश हुई। उसने लड़के से पूछा—"यह सब कहाँ से लाये हो ?" तब लड़के ने बुढ़िया से सब हाल कहकर दशारानी का गण्डा भी उसे दे दिया।

बुढ़िया ने गंडे को प्रेम-पूर्वक लेकर माथे से लगाया। उसी दिन से वह व्रत करने लगी। नौ दिन कथा-कहानी कहती रही। दसवें दिन उसने गंडा के पूजन की तैयारी की। वह देहरी के बाहर लीप रही थी। उसी समय एक अति वृद्धा दरिद्रा स्त्री द्वार पर आकर बोली—"क्या करती हो बहन ?" उसने जवाब दिया—"आज मेरे घर दशारानी का पूजन है, सो लीप रही हूँ।" तब दशारानी ने कहा—"मुझे बहुत प्यास लगी है; थोड़ा पानी पिला दो ?" तब बुढ़िया ने कहा—"मैं तो मिट्टी के

बरतन से पानी पीती हूँ; लोटा-लुटिया मेरे कुछ है ही नहीं, तुम को पानी दूँ तो काहे से दूँ ? एक कटोरी ही मेरे घर मे है, वह भी न जाने कहाँ पड़ी होगी। ज़रा तुम ठहरो, कटोरी उठा लाऊँ, तब तुमको पानी पिलाऊँ।"

बुढ़िया हाथ धोकर कटोरी लेने अन्दर गई। तब तक मैला-कुचैली बुढ़िया, जो स्वयं दशारानी थी, उसकी घिरौंची पर एक सोने का घड़ा रखकर अन्तर्द्धान होगई। बुढ़िया कटोरी लेकर घिरौंची के पास गई। वहाँ सोने का घड़ा रक्खा देखकर वह बहुत घबड़ाई और अपने मन मे सोचने लगी कि यह राँड़ कहा की बला उठाकर रख गई है। मुझे चोरी लगेगी, बुढ़ापे मे इज्जत जायगी। वह इसी चिंता मे बुढ़िया की खोज मे बाहर निकली। तब तक उसका लड़का आ गया। उसने पूछा-"किसे खोजती हो माँ ?" वह बोली—"एक बुढ़िया न जाने कहाँ से आई और यहाँ सोने का घड़ा रखकर भाग गई है।" लड़के ने कहा—"वही तो दशारानी थीं। उन्होने यह घड़ा तुमको दे दिया है। अब की जो फिर कभी आवें तो उनका अच्छी तरह स्वागत करना और सब प्रकार से उनकी आज्ञा-पालन करना। तुम जब नहाने जाओ तो नदी के घाट पर जो चीजें तुमको मिलें; उनको दशारानी का दिया हुआ समझकर अंगीकार करना, किसी से पूछ-ताछ न करना कि यह चीज किसकी है; वहाँ कहाँ से आई है ?

बुढ़िया नदी मे नहाकर खड़ी हुई, तो सामने सोने का गेड़ुआ भरा-भराया रक्खा दिखाई दिया और उत्तम वस्त्र एक किनारे रक्खे

थे। बुढ़िया ने किसी से पूछ-ताछ किये बिना ही उन वस्त्रों को पहन लिया। गेडुआ हाथ में लेकर वह घर चलने को तैयार हुई। तब चार कहार डोली लिये आ पहुँचे और बुढ़िया से बोले—"यह डोली तुम्हारे लिये आई है, इसी में बैठकर घर चलो।" बुढ़िया डोली में बैठकर घर आई, तो देखती क्या है कि जहाँ उसकी टूटी-फूटी झोपड़ी थी, वहाँ कञ्चन के महल खड़े हैं। बुढ़िया ने महलों के भीतर जाकर श्रद्धा और भक्ति-पूर्वक दशारानी के गण्डे की पूजा की और अन्त में हाथ जोड़कर यह वरदान माँगा—"महारानी! जैसे तुमने मुझको यह सम्पत्ति दी है, वैसे ही मेरे लड़के का विवाह हो जाय, तब यह सब शोभा दे।" कुछ दिनों बाद लड़के का विवाह होगया और बहुत ही सुन्दरी सुशीला बहू घर में आ गई। तब बुढ़िया ने दशारानी से यह दूसरा वर माँगा—"जैसे मेरे बहू-बेटा है, वैसे ही नाती पाऊँ।" कुछ दिनों के बाद बुढ़िया के लड़के को भी लड़का हो गया।

एक दिन बुढ़िया ने बहू को समझाया—"मेरी यह सब सम्पत्ति दशारानी की दी हुई है। उन्हीं की कृपा से तुम भी इस घर में आई हो। यदि मैं मर जाऊँ और कभी एक मैली-कुचैली बुढ़िया तुम्हारे घर आवे, तो उसका विनय-पूर्वक स्वागत करना। यदि उसकी नाक बहती हो तो उसे आँचल के छोर से पोछना; घिन नहीं करना। प्रार्थना करना कि हे माता! यह सब आपका ही दिया हुआ है। जब कभी दशारानी के गंडे पड़ें, तब उनको अवश्य लेना और श्रद्धापूर्वक पूजा करना। जब कभी तुम पर

कोई संकट पड़े, तो सुहागिनें न्योतना। दशारानी की कृपा से तुम्हारी सब इच्छाएँ पूरी होंगी।"

कुछ दिनों के बाद बुढ़िया मर गई। तब दशारानी ने सोचा कि अब चलकर देखना चाहिये कि वह सास के वचन को कहाँ तक पालन करती है? अतः वह एक वृद्धा भिखारिणी का वेश धारणकर उसके घर आई। उन्हें देखते ही बहू उठकर खड़ी हो गई, पाँव पड़े, दडवत् की और बालक को उसकी गोद में डाल दिया। दशारानी बोली—"मुझसे दूर ही रह, मेरा मैल लगने से तेरे सफ़ेद वस्त्र मैले हो जायँगे।" इस पर बहू ने लपककर आँचल के छोर से उनकी नाक पोंछ ली और पैरों की धूलि झाड़कर विनती की—"हे माता! धन्य-भाग्य उसके जिसको तुम्हारा मैल छू जाय। यह सब सम्पत्ति आपकी है और मैं भी आपकी हूँ।" उसकी ऐसी श्रद्धा-भक्ति देखकर दशारानी ने आशीर्वाद दिया—"तेरी ऐसी धर्म-बुद्धि है, तो भगवान् सदैव तेरा भला करेगा। भडार भर-पूर रहेगा; कभी किसी बात की चिन्ता तुझे न सतायेगी; जो इच्छा करेगी सो फल पायेगी।"

दशारानी ने जैसी कृपा-दृष्टि बुढ़िया ब्राह्मणी पर की, वैसी ही अपने सब भक्तों पर करें। कथा के श्रोता-वक्ता सभी का कल्याण हो।

आठवीं कथा

एक राजा की दो रानियाँ थीं। राजा की अति प्यारी रानी का नाम था लक्ष्मी देवी। इसी कारण राजा की दूसरी

रानी पटरानी होने पर भी कुलक्ष्मी कहलाती थी। एक दिन लक्ष्मी रानी ने मान किया। वह काठ की पाटी ले, मलिन वस्त्र पहन कोप-भवन में जा लेटी। राजा ने उसकी हर तरह शुश्रूषा करके पूछा—"तुम चाहती क्या हो? जिसे कहो उसे देश-निकाला दे दूँ, जिसे कहो उसे यमपुर पहुँचा दूँ और जिसे कहो रंक से राजा बना दूँ; पर कुछ कहो भी तो।" जब रानी ने राजा से तृवाच हरा लिये, तब बोली—"कुलक्ष्मी रानी को देश-निकाला दे दो।"

राजा की प्यारी न होते हुए भी कुलक्ष्मी रानी पटरानी थी। लोक-लज्जा के कारण उसे सहसा निकाल सकने से लाचार होकर राजा ने एक युक्ति निकाली। उसने रानी से कहा—"चलो, हम तुमको तुम्हारे नैहर पहुँचा आवें। उधर तुम बहुत दिनों से नहीं गई हो।" रानी ने उत्तर दिया—"मेरे नैहर मे तो कोई भी ऐसा नहीं है, जिसके यहाँ मैं जाऊँ?" तब राजा ने समझाया—"तुमको मालूम नही है; तुम्हारा नैहर आबाद है, यह बात हम जानते हैं।" रानी ने प्रसन्न होते हुए कहा—"यदि आप जानते हैं, तो इससे भला क्या होगा। मैं जाने को तैयार हूँ।" राजा ने रानी को एक पीनस में सवार कराया। आप घोड़े पर सवार होकर साथ चले। एक सघन वन मे पहुँचकर राजा ने पीनस रखवा दी और कहारों को वहाँ से हटा दिया। तब आपने रानी से कहा—"तुम ज़रा ठहरो, मै अगले गाँव से तुम्हारे लिये कुछ खाने को ला दूँ।"

तुम कौन हो ?" बुढ़िया ने कहा—"मैं तो तेरी मौसी हूँ।" तब रानी उसके गले से लिपटकर रोने लगी। उसने अपनी विपत्ति की कहानी आद्योपान्त बुढ़िया को कह सुनाई और अन्त में यह प्रार्थना की कि अब मुझे केवल तुम्हारा आश्रय और भरोसा है।

दशारानी की कृपा से उसी जगह माया का शहर बस गया। रानी के भाई-भौजाई आदि सारा नैहर आप ही वहाँ प्रकट हो गया। रानी ने अपने परिवार मे मिलकर नौ दिन तक दशारानी के माहात्म्य की कथा-कहानियाँ कहीं। दसवे दिन गंडे की पूजा न होती थी। उसी दिन सवेरे दशारानी ने कहा—"तुम आज नदी में स्नान करने जाओगी, वहाँ तुमको जो स्वर्ण-कलश मिलें, उनको ले लेना और जो डोली तुमको लेने के लिये जाय, उसमें निस्संकोच सवार हो जाना। किसी प्रकार संकल्प-विकल्प में पड़कर यह पूछना कि डोली किसकी है ?"

रानी नदी मे स्नान करने गई। वह स्नान करके जल से बाहर निकली, तो किनारे दो सोने के कलश रक्खे दिखाई दिये। उन्हीं के पास सुन्दर रेशमी वस्त्र सँवारे हुए रक्खे थे। रानी ने वस्त्र बदल कर घड़े भरे, और ज्योंही अपने स्थान की ओर चलना चाहा त्योंही एक डोला सामने से आता दिखाई दिया। रानी समझ गई कि हो न हो इसी डोली के बारे में मौसी ने मुझे सूचना दी थी। तब वह फौरन डोली मे सवार होकर अपने घर गई। वहाँ माया के परिवार की सब-स्त्रियों समेत रानी ने दशारानी के गंडे की पूजा की, सुहागिनों को भोजन कराये, तब पारण किया। तदनन्तर

रानी अपने नैहर के परिवार में आनन्द-पूर्वक हिल-मिलकर रहने लगी।

कुछ दिनों के बाद सहसा राजा को रानी का स्मरण हुआ। उसके ध्यान में आया कि कुलक्ष्मी रानी को जिस दिन से मैं जङ्गल में छोड़ आया हूँ, उसी दिन से आज तक उसका कोई समाचार नही मिला, चलकर देखना तो चाहिये कि उसकी क्या गति हुई। जब वह रानी को खोजने के लिये चलने लगा, तो मन्त्रियों ने समझाया कि अब रानी का आप से मिलना नहीं हो सकता। राजा ने किसी की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह चलता-चलता उस स्थान पर पहुँचा जहाँ रानी का डोला रख आया था। परन्तु उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जहाँ सघन वन था, वहाँ सुन्दर नगर बसा हुआ है। राजा के प्रश्न करने पर नगर के लोगों ने कहा—"यह कुलक्ष्मी रानी का नगर है।" तब तो राजा और भी आश्चर्य-समुद्र में डूब गया। वह बार-बार यही विचार करता था कि यह जगह तो वही है, जहाँ मैं अपनी रानी को छोड़ गया था। क्या उसी के नाम से यह नगर बसा हुआ है?

राजा ने महलों के पास जाकर इत्तला कराई कि अमुक राजधानी का राजा मिलने आया है। रानी ने राजा को पहचानकर उत्तर दिया—"मैं ऐसे दगाबाज राजा से नहीं मिलना चाहती।" परन्तु उसकी मौसी ने समझाया—"पति परमेश्वर के बराबर होता है। उससे विमुख होकर कभी पीठ न देनी चाहिये। तुमको यही उचित है कि उनका स्वागत करो, यथाशक्ति सत्कार

और विनय-पूर्वक मिलो।" रानी ने राजा को महलों के भीतर बुलवाया और वहीं डेरे पर ठहराया। दोपहर को राजा भोजन करने गये। उनके साथ एक नाई था। वह भी राजा के समीप हो खाने को बैठा। रानी राजा को तथा उस नाई को परोसने लगी।

पहली बार ज्यों ही रानी ने नाई के सामने पत्तल रक्खी, त्यों ही उसने रायते का एक छींटा रानी के पैर पर डाल दिया। रानी ने उसकी इस क्रिया को नहीं जाना। दूसरी बार रानी परोसने आई तब दूसरी पोशाक पहनकर आई। राजा मन में सोचने लगा कि यहाँ तो एक क्या, कई रानियाँ हैं। सभी एक-सी हैं। इन मे यदि मेरी रानी हो, तो मैं उसे पहचान नहीं सकता।

डेरे पर आकर राजा ने नाई से कहा—"यहाँ तो कई रानियाँ हैं। यह कैसे मालूम हो कि अपनी रानी कौन है?" नाई बोला—"महाराज! रानी तो एक ही है, वह पोशाकें बदल-बदलकर परोसने आई, इसी से आप को भ्रम हुआ है।" राजा ने पूछा—"तू ने कैसे जाना कि रानी एक ही है।" वह बोला मैंने पहले ही रानी के पैर पर रायते का छींटा डाल दिया था। जब दूसरी बार वह परोसने आई, तब भी उसके पैर पर वह छींटा पड़ा था और तीसरी बार आई, तब भी छींटा मैंने बदस्तूर देखा।

इसी बीच मे रानी ने राजा को अपने महल में बुलाया। वहाँ सेज लगी हुई थी। उसी पर राजा को बिठाकर उसने पान दिये। राजा लेट गया, रानी पैर दबाने लगी। तब राजा ने कहा—"रानी! बहुत दिन हो गये, अब राजधानी को चलो।" रानी ने जवाब

दिया—"मैं नहीं जाती। उस दिन को याद कीजिये। मैंने ऐसा क्या अपराध किया था? जिसके कारण आपने मुझे बनवास दिया था। आपने जिस सौत की बात मानकर मेरा अनादर किया था, अब उसी को लिये हुए बैठे रहिए। आप तो मेरा सर्वनाश कर चुके थे। यह तो सब मेरी मौसी की बदौलत है कि मैं जीती बच गई।" इस पर राजा ने रानी को बहुत समझाया और अपने किये पर पश्चात्ताप करते हुए माफी माँगी। तब रानी बोली—"मैं केवल एक शर्त पर आपके साथ चल सकती हूँ।" राजा ने पूछा—"वह क्या?" रानी ने कहा—"आप मेरी मौसी से यह वरदान माँगिये कि यह शहर और यह बाग-बगीचे आपकी राजधानी के समीप पहुँच जायँ, जिससे जब मेरा जी चाहे, आपके महलों में रहूँ और जब जी चाहे, तब मौसी के दिये हुए महलों में चली आऊँ। मेरी मौसी बड़ी दयावान् और भोली-भाली है। सम्भव है कि वह आप की बात को न टाले।" राजा ने रानी की मौसी (दशारानी) के पास जाकर निवेदन किया—"यह नगर और बाग-बगीचे मेरे नगर के पास पहुँचा दिये जायँ।" मौसी ने कहा—"तथास्तु।"

उसी समय दोनों शहर पास-पास हो गये; मानों एक दूसरे का एक भाग है। राजा ने दशारानी की कृपा का प्रभाव जानकर शहर भर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि अब से सभी लोग दशारानी की पूजा किया करें।

भगवती दशारानी ने कुलक्ष्मी रानी पर जैसी कृपा की, वैसी वह आपत्ति में पड़ी हुई स्त्रीमात्र पर दया करके उसे ठिकाने लगावें।